सुमित्रानन्दन पंत की कविता - एक अध्ययन

(कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में पी०एच०डी० की उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध)

इन्दिरा देवी पी० के०

विभागाध्यक्ष
डा० एन० ई० विश्वनाथ अय्यर
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

निर्देशक
डा० पी० बी० विजयन
प्राध्यापक

हिन्दी विभाग
कोचिन विश्वविद्यालय
कोचिन - 22

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by P.K. Indira Devi under my supervision for Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi
University of Cochin,
Cochin-22.

Dr. P.V. Vijayan
Supervising Teacher

A C K N O W L E D G E M E N T S

This work was carried out in Department of Hindi, University of Cochin, Cochin-22, during the tenure of Scholarship awarded to me by the University of Cochin. I sincerely express my gratitude to the University of Cochin for this help and encouragements.

(P.K. INDIRA DEVI)

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन 1

अध्याय 1 पन्त काव्य की पृष्ठभूमि 6
(क) राजनीतिक परिस्थिति (ख) धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थिति (ग) सांस्कृतिक परिस्थिति (घ) साहित्यिक परिस्थिति, निष्कर्ष।

2 सुमित्रानन्दन पन्त - जीवन और व्यक्तित्व 45
जन्म-परिवार - शिक्षा - कालाकांकर का निवास - पत्रिका का सम्पादन - लोकायतन की योजना - उदयशंकर संस्कृति केन्द्र से संपर्क - अरविन्द साहित्य का परिचय - रेडियो पर आगमन - साहित्यिक संघर्ष - पंत जी का व्यक्तित्व

3 सुमित्रानन्दन पंत की काव्य - कृतियों का विकास 75
सौन्दर्य चेतना का युग - वीणा, ग्रंथि, पल्लव, गुंजन, ज्योत्सना (नाटिका) समाज चेतना का युग - युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, युगपथ। अध्यात्म चेतना का युग - स्वर्णधूलि, स्वर्णकिरण, उत्तरा, रजतशिखर, शिल्पी, सौवर्ण (काव्य रूपक) अतिमा, वाणी, कला और बूढ़ा चाँद, लोकायतन, शिशु की तरी, शंखध्वनि, समाधिता, आस्था, निष्कर्ष।

अध्याय 4 पंत की कविता का भावपक्ष 139
भावपक्ष का अभिप्राय - पन्तकाव्य का कथ्य - प्रेम और सौन्दर्य - (1) प्रेम निरूपण - स्त्री - पुरुष प्रेम, देश - प्रेम, मानव - प्रेम, प्रकृति - प्रेम, अध्यात्म - प्रेम (2) सौन्दर्य निरूपण - रूप सौन्दर्य, भाव सौन्दर्य, आध्यात्मिक सौन्दर्य, प्रकृति सौन्दर्य ।
पंत काव्य का विचार पक्ष - अरविंद दर्शन की संक्षिप्त रूपरेखा - पंत काव्य और अरविंद - दर्शन, निष्कर्ष ।

5 पंत कविता का शिल्प - पक्ष 173
शिल्प पक्ष का प्रयोजन - शिल्प पक्ष के अन्तर्गत आनेवाले तत्व - (1) काव्य रूप (2) काव्य - भाषा (3) काव्य - प्रसादन अर्थात अप्रस्तुत विधान (4) छन्द, निष्कर्ष ।

6 पंत जी का प्रकृति - काव्य 226
काव्य में प्रकृति का स्थान - हिन्दी काव्य में प्रकृति - छायावादी काव्य में प्रकृति - पंत की प्रकृति की उपासना - आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण - उद्दीपन रूप में प्रकृति - चित्रण - प्रकृति का मानवीकरण - प्रकृति में मानवीय भावनाओं का चित्रण - उपदेश देने के लिए प्रकृति - चित्रण - अलंकार विधान तथा प्रतीक विधान के रूप में प्रकृति - चित्रण, निष्कर्ष ।

7 उपसंहार 250

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची 258

प्राक्कथन

सुधीजनों के सद - असद विवेचन के लिए मैं अपना यह शोध-प्रबन्ध समर्पित कर रही हूँ — '' हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि च'' । सकारण ही मैं ने पंत काव्य पर अपना अध्ययन केन्द्रित किया। हिन्दी काव्य क्षेत्र में पंत जी की जितनी प्रशंसा हुई उससे अधिक उनकी आलोचना हुई । अपनी मनगढ़न्त धारणाओं के बल पर पंत जी को प्रगतिवादी, गांधीवादी, अरविन्दवादी आदि ठहराने की कोशिश आलोचकों के बीच लगातार होती रही । मुझे लगा कि आलोचकों के इन चंचुप्रहारों एवं प्रशंसावचनों के अतिरिक्त पंत काव्य का सही मूल्यांकन अब तक नहीं हुआ है । कृतियों की राह से गुजर कर ही हम किसी कवि का उचित मूल्यांकन कर पायेंगे । पंत जी के विषय में यह एक विडम्बना ही रही है कि उनके आलोचकों ने अपनी पूर्वधारणाओं को पंत जी पर थोपने भर में अपने कार्य की इति मानी है । एक तटस्थ दृष्टि से पंत के कृतित्व को आंकने का प्रयास इस शोध- प्रबन्ध में किया गया है ।

पंत काव्य पर प्रकाशित दो शोध-प्रबन्धों का उल्लेख इस अवसर पर समीचीन होगा । एक प्रेमलता बाफना का 'पंत काव्य' है । लेखिका ने इसमें छायावाद की पृष्ठभूमि में पंत की काव्य कृतियों का अध्ययन प्रस्तुत किया है । मैंने पंत के प्रकृति-काव्यों पर बल देकर यह शोध कार्य किया है इसीलिए मेरी विषय-सीमा प्रेमलता बाफना के शोध-प्रबन्ध से अलग है पंत काव्य पर प्रकाशित दूसरा शोध प्रबन्ध रूसी लेखक चेलिशेव का है इसमें यथार्थवाद, स्वच्छन्दतावाद आदि काव्य प्रवृत्तियों के आधार पर के कृतित्व का अध्ययन किया गया है । अतः इस शोध प्रबन्ध का विषय भी मेरे विषय से भिन्न है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध छः अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय पंत काव्य की साहित्यिक -, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण किया गया है । पंत काव्य युगीन परिस्थितियों से मेरि

त्था प्रभावित है । अतः युगीन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में ही पंत काव्य का विश्लेषण उचित है ।

द्वितीय अध्याय पंत के व्यक्तित्व से सम्बद्ध है । 1954 तक के पंत के जीवन को सारी प्रमुख घटनाओं का उल्लेख इसमें किया गया है । 1954 के बाद की पंत की जीवनी पर प्रकाश डालना अनिवार्य नहीं लगा, क्योंकि उसके बाद पंत का व्यक्तित्व कोई नया मोड़ नहीं लेता ।

तृतीय अध्याय में मैं ने पंत की काव्य कृतियों पर एक विहंगम दृष्टि डाली है। पंत के काव्य-विकास में तीन आयाम प्रकट हैं— उनकी प्रारंभकालीन रचनायें सौन्दर्यबोध से प्रभावित है, मध्यकालीन रचनायें समाजबोध से, एवं उत्तरकालीन रचनायें अध्यात्म बोध से । प्रवृत्तिगत भिन्नता के बावजूद पंत की काव्य कृतियों में आदि से अंत तक एक सूत्रता कायम है ।

चतुर्थ अध्याय पंत काव्य के भावपक्ष एवं विचारपक्ष का विश्लेषण है भावपक्ष के अन्तर्गत पंत जी के प्रेम निरूपण एवं सौन्दर्य निरूपण पर विचार किया गया है । विचारपक्ष के अन्तर्गत पंत जी के दार्शनिक विचारों पर प्रकाश डाला गया है । मार्क्सवाद एवं गांधीवाद के स्वस्थ पक्षों का समन्वय उन्हें अरविन्द दर्शन में दृष्टिगत हुआ । इसी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव उनके परवर्ती काव्यों पर लक्षित है ।

पंचम अध्याय में पंत काव्य के शिल्प पक्ष का निरूपण किया गया है । पंत जी की शिल्पगत उपलब्धियां अन्य छायावादी कवियों की तुलना में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं । काव्य भाषा के रूप में खड़ीबोली की नयी सम्भावनाओं को पंत काव्य ने उजागर किया है । शिल्प पक्ष के अन्तर्गत काव्य रूप, काव्य-भाषा, अलंकार-विधान, छन्द-विधान आदि पर विचार किया गया है ।

षष्ठम अध्याय पंत के प्रकृति काव्यों पर आधारित है । पंत की प्रकृति चेतना का क्रमिक विकास इसमें दिखाया गया है। पंत की सहज प्रतिभा का उन्मेष उनके

प्रकृति काव्यों में ही प्रकट है । अपने काव्य विकास के किसी भी चरण में पंत जी प्रकृति को छोड़ नहीं सके है ।

उपसंहार में पंत जी की उपलब्धियों को आंका गया है । आधुनिक हिन्दी काव्य भाषा को पंत की देन अप्रतिम है । पंत काव्य के अनुशीलन के पश्चात मेरी यह दृढ धारणा रही कि अपने प्रकृति काव्यों के सहारे ही हिन्दी काव्य क्षेत्र में पंत जी का नाम अमर रहेगा ।

मेरे इस शोध कार्य में मुझे कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० विश्वनाथ अय्यर जी का खुला सहयोग मिला है । इस अवसर पर उनके प्रति मेरी अशेष कृतज्ञता ज्ञापित करना मेरा कर्तव्य है ।

कविवर पंत जी के प्रति भी मैं आभारी हूँ । अपने पत्र व्यवहार द्वारा मेरी समस्याओं को सुलझाकर उन्होंने मुझपर बड़ी कृपा की ।

मेरे सपूज्य गुरुवर डा० विजयन जी ने इस शोध प्रबन्ध का निर्देशन कार्य किया । यह उन्हीं की सदभावना एवं अशेष ममता का ही परिणाम है । औपचारिक ढंग से कृतज्ञता ज्ञापित कर उनके ऋण से मुक्त होने का प्रयत्न सबसे बड़ा अविनय ही होगा । अतः उनके प्रति मेरी कृतज्ञता को दिल में ही रखकर आजीवन ऋणी रहने में अपने को धन्य मानती हूँ ।

अपने शोध कार्य में जिन विदवानों की कृतियों से मैंने सहायता ली है, उन सबके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । आगे कोचिन विश्वविद्यालय के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिसने इस शोध कार्य करने की सुविधा देकर मुझ पर बड़ी कृपा दिखा दी । मेरी इस शोध-अवधि में मुझे बम्बई तथा पूना विश्वविद्यालय के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । अपने शोध कार्य में वहां के विभागाध्यक्षों से चर्चा

करके मुझे जो लाभ हुआ वह भी इस अवसर पर अविस्मरणीय है । अन्त में अपने साथी-संगी जनों के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ । जिन्होंने दिल खोल कर मेरी सहायता की है ।

साहित्य का अनुशीलन प्रतिभा एंव परिश्रम दोनों की अपेक्षा रखता है । अपनी व्यक्तिगत परिसीमाओं के भीतर रह कर मैंने पंत - काव्य का अनुशीलन किया है और इस प्रबन्ध को पूरा किया है । अपनी त्रुटियों के लिये क्षमा-प्रार्थना करती हुई मैं प्रस्तुत प्रबन्ध को विद्वानों के समक्ष सादर समर्पित करती हूँ ।

कोचिन
24-4-1975

इन्दिरा देवी पी के.

अध्याय - एक

पन्त काव्य की पृष्ठभूमि

साहित्य-प्रणयन में युगीन परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। अपने परिवेश के प्रति संवेदनशील होना कवि होने की पहली शर्त है। परिस्थितियों के प्रति कवि की सजगता दो रूपों में प्रकट होती है -(1) प्रेरणा के रूप में(2) प्रतिक्रिया के रूप में। साहित्य चाहे किसी भी भाषा का हो उसके पीछे उस युग और जीवन की पृष्ठभूमि अवश्य रहती है जिस युग और जीवन से प्रेरणा पाकर वह लिखा जाता है वस्तुतः जीवन के साथ-साथ चलने वाले साहित्य का वास्तविक महत्व है क्यों कि जीवन की पृष्ठ भूमि ही साहित्य और कविता में प्राण और प्रेरणा का रंग देती है। परिस्थितियाँ ही साहित्यकार के व्यक्तित्व को रूप देती है।

आधुनिक हिन्दी काव्य- जगत में हमारे आलोच्य कवि श्री सुमित्रानन्दन पंत का स्वर, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से युगीन परिस्थितियों से प्रभाव ग्रहण कर मुखरित होता रहा। उनकी रचना के पीछे उस युग और जीवन की, बहुत पृष्ठ भूमि अवश्य रही है। इस दृष्टि से युग संबंधी वि

की भूमिका का परिचय पाने के बाद ही प्रस्तुत काव्य का महत्व तथा मर्म स्पष्ट हो सकता है । इस दृष्टि से इस शोध प्रबंध के प्रारंभ में युगीन परिस्थितियों का विश्लेषण अपेक्षित है ।

राजनीतिक परिस्थिति :

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत की राजनीतिक परिस्थिति ने युगचेता साहित्यकार पर गहरा प्रभाव डाला था । आधुनिक हिन्दी काव्य ठोस रूप से सन 1900 के बाद में ही सशक्त होने लगा था । इस दृष्टि से प्रस्तुत काव्य की राजनीतिक पृष्ठभूमि में भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन, इल्बर्ट बिल, नेशनल कांग्रेस की स्थापना, बंग - भंग, मिन्टो मार्ले सुधार, प्रथम विश्व युद्ध गांधी जी का आगमन और प्रजातांत्रिक चेतना का उदय आदि घटनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है ।

भारत का राजनीतिक क्षेत्र अंग्रेजों की शासन - नीति के कारण अत्यन्त अशांत रहा । लगभग 1757 से लेकर भारत में अंग्रेजों का जमाना शुरू होता है । चूंकि अंग्रेज मन ही मन चाहते थे किसी न किसी तरह भारत पर पूर्ण दासता का जाल बिछा देना चाहिए । इसलिए वे मौका मिलते ही अपनी सत्ता अवश्य प्रकट करते थे । बंगाल उनके अधिकार क्षेत्र का प्रथम राज्य रहा था । धीरे - धीरे आसपास के अनेक प्रदेशों पर उन्होंने अधिकार जमा लिया । उस दिन से लेकर अंग्रेजों ने अपने ढंग की नीति और शासन प्रणाली सब कहीं प्रचलित की । उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ब्रिटेन ने यहां अपना शासन स्थिर कर दिया और जनता के संपूर्ण जीवन में अभूत - पूर्व परिवर्तन हुआ ।

सन 1857 ई० का प्रथम भारतीय स्वाधीनता - संग्राम इस युग की एक

विशेष महत्वपूर्ण घटना है । अंग्रेजों द्वारा भारत पर किए गए अत्याचारों को देखकर भारतीय जनता दुखित तथा स्वराज्य के लिये आतुर हो उठी थी । मुख्य रूप से यहां स्वधर्म रक्षा और परतन्त्रता समाप्ति की पावन इच्छा की पूर्ति के हेतु ही भारतीय स्वाधीनता संग्राम का सूत्रपात हुआ था । देश के चारों ओर यह पुकार गूंजने लगी कि अपने देश को स्वाधीनता मिलनी चाहिये । इस स्वतन्त्रता की लहर लगभग एक वर्ष तक चलती रही । नाना साहब, बांदा का नवाब, अहमदशाह, तात्या तोपे, झांसी की महारानी लक्ष्मी बाई आदि स्वराज्य के लिये तलवारों से खेले थे । अलीगढ़, बुलंदशहर, मैनपुरी, इटावा, रुहेलखण्ड कानपुर, अयोध्या आदि देशों में स्वातन्त्र्य संग्राम की घोषणा की गयी परन्तु 1857 का यह प्रथम संग्राम असफल हो गया ।

भारत में अंग्रेजों के आगमन के आरंभकाल में यहां की जनता उनके प्रति आदर का भाव प्रकट करती थी । इसका ठोस कारण यह था कि वे यह भ्रम पैदा करने लगे कि हम भारत के सुधार के लिये नियामक रूप में आ गये हैं और भारतीय जनता को ऐश्वर्य के राजपथ पर खड़ा कर देना हमारा ध्येय है । विक्टोरिया रानी के घोषणा-पत्र में जनता के प्रति उदारता, दया और धार्मिक सहिष्णुता प्रकट थी, इसने लोगों के मन में विदेशियों के प्रति एक झूठी ममता जगा दी । ब्राह्मणों ने यज्ञोपवीत हाथ में लेकर कहा था - ' महारानी चिरंजीवी हो ।'[1]

विदेशी सत्ता की धाक देशवासियों के लिये प्रिय बात नहीं हो सकती थी । सजग भारत वासी मन ही मन जानते थे कि इन विदेशियों पर शत-प्रतिशत भरोसा रखना ठीक नहीं । ब्रिटिश शासन के विरुद्ध खड़े होने के लिये अनुकूल परिस्थितियाँ अवश्य पैदा हुईं । आर्थिक विषमता भीषण रूप से जनता को पीड़ित करने लगी। जनता पर नये नये कर लगाये गये । अपनी आर्थिक नीति में वे जरा भी

1- आधुनिक हिन्दी साहित्य - डा0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय- पृ0 57

सहिष्णु नहीं थी। विषम परिस्थितियों से मुक्त रहने में जनता असमर्थ हुई। अंग्रेजों के शासन के विरुद्ध असंतोष की आंधी चलने लगी। अंग्रेजों की सच्चाई पर विश्वास नष्ट हो गया।

1905 के बंग-भंग आन्दोलन में जो सफलता प्राप्त हुई इससे जनता और भी जोशीला आवाज़ उठाने लगी। बंकिम बाबू का 'वन्देमातरम' गीत ने स्वदेशी आन्दोलन में राष्ट्रीय गीत का कार्य किया। उन्नीसवीं शताब्दी का राष्ट्रीय आन्दोलन और स्वतंत्रता संग्राम यहीं से प्रारंभ होता है। संसार की सबसे बड़ी साम्राज्य शक्ति के विरुद्ध भारत संगठित होकर तैयार हो गया। अनेक सामूहिक सत्याग्रह और व्यक्तिगत सत्याग्रह इस समय की बहुत बड़ी विशेषता थी। इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन में उत्साह की वृद्धि हुई और सरकार की ओर से राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने का प्रयत्न निरन्तर चलता रहा। किन्तु धीरे-धीरे सरकार ने स्वयं यह अनुभव किया कि केवल दमन चक्र से उमड़ते हुये राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाया नहीं जा सकता। अंतः उसने भारतीयों को कुछ राजनीतिक अधिकार देकर सन्तुष्ट करने का निश्चय किया और आशा बांधी, कि इसके जरिये भारतीय राष्ट्रीयता का उठता हुआ तूफान मन्द पड़ जायेगा। सन् 1909 में मिन्टो मार्ले रिफार्म इसी दृष्टि से किया गया।

प्रथम विश्व युद्ध के बाद भारत के राजनीतिक जीवन में संग्राम और संक्षोभ का प्रबल रूप में विकास हुआ। परन्तु लगभग तैंतीस वर्ष पहले ही संक्षोभ की नींव डाली गयी थी जिसका नाम इन्डियन नेशनल कांग्रेस को है। उस समय के प्रमुख नेता दादाभाई, रानडे, बेनर्जी, बोस, तिलक आदि ने आगे के स्वतंत्रता आन्दोलन को रूप दिया। इस संस्था के कर्मठ नेता ने जनता के मन में आत्म शक्ति और आत्मविश्वास उत्पन्न किया। राष्ट्रीय जागरण की आवाज़ सब कहीं सुनाई पड़ने लगी। शिक्षित नव युवक अंग्रेजों की शोषणिक मनोवृत्ति से विद्रोह करने के लिये तैयार हो गये।

इस अवसर पर हम इस बात पर ध्यान दिये बिना न रह सकेंगे कि पश्चिमी शिक्षा की नवीन प्रणाली ने भारतीय भाषा, साहित्य,

ज्ञान-विज्ञान पर व्यापक प्रभाव डाला । अनेक स्कूलों कालेजों तथा विश्वविद्यालयों तक की स्थापना इस समय हुई । शिक्षा प्राप्त मध्यवर्ग तर्क और तथ्य की दृष्टि से समस्याओं की आलोचना कर सके । वे संसार के प्रगतिशील राष्ट्रों के जीवनक्रम और संघर्षशीलता से परिचित हो सके । अतएव भारत में एक वर्ग ऐसा भी आया जिसने पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के द्वारा अपने जीवन को भी ढालने की कोशिश की । नवयुवकों में राष्ट्रीय जागरण की चेतना प्रस्फुटित हुई , हिन्दुस्तान को आजादी दिलाने की आवश्यकता उनके मन में अधिकाधिक महसूस होने लगी ।

इस स्वतंत्रता आन्दोलन की बुनियाद केवल एक पहलू की न होकर सभी पहलुओं की थी । भारत के औद्योगिक क्षेत्र में अंग्रेजी - नीति ने जो कायापलट की थी उसका सुफल अंग्रेजी लखपतियों पर पड़ा था।उन्हीं दिनों यूरोप में बड़ा ही युगान्तकारी औद्योगिक विकास हो रहा था । नये - नये फाक्टरियों - कारखानों के जरिये नयी - नयी चीजों, मशीनों का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता था । इन चीजों के प्रचार और व्यापार के लिए पश्चिमी देशों से बड़े - बड़े संघ भारत में भी आये । विदेशी चीजें भारत आने लगीं । परिणाम यह निकला कि विदेशी वस्तुओं के आयात और सरकारी नीति के कारण भारत की अपनी चीजें गौण मानी गयीं । भारत का निर्यात-व्यापार घटता चला । अंग्रेज ने भारत में बाहर से आने वाली चीजों का आयात- कर बढ़ाया । इस प्रकार से भारत का धन विदेश जाता रहा । पश्चिमी चीजों का ही बोल बाला भारत में हुआ, भारतीय वस्तुएँ व्यवहार क्षेत्र से उठ गयीं । पश्चिमी रंग से रंगीन भारत एक प्रकार से आर्थिक विषमता का शिकार बन गया । भारत में नए नए कारखानों की स्थापना करके अंग्रेज-उद्योगपति लखपति बन गए । भारत के पुराने दस्तकार गरीब हो गए । उनकी चीजों का भाव गिर गया । विदेशी जन उद्योग - धन्धों का अधिकारी बने रहे ।

उपर्युक्त शोषण - नीति ने परतंत्रता समाप्ति की भावना को उभारने में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की । भारत के कंठ पर लगायी हुई दास्य शृंखला को हर तरफ से तोड़ने की कामना प्रबल हो उठी । इस अवसर पर भारतीय राजनीति में आशा तथा प्रकाश की किरण फैलाकर महात्मा गांधी जी अवतरित हुए । राजनीतिक मंच पर उनका प्रवेश एक नवीन मोड़ लाया । नेहरू जी के शब्दों में 'हिंसात्मक राजनीति और तानाशाही दुष्प्रभुता से स्वतंत्र बनने की इच्छा रखनेवाले गांधी जी भारत की अधिकांश जनता के प्रतीक थे, साथ ही वे राष्ट्रीय गौरव के समस्त घातक कार्यों से दूर रहने के इच्छुक थे ।[1]' दक्षिण अफ्रिका से जब गांधी जी भारत लौटे, तब यहाँ की स्थिति अत्यन्त दयनीय एवं अस्त - व्यस्त थी । अतः उन्होंने देश के सुधार के लिए सन् 1921 को अपने असहयोग - आन्दोलन का श्रीगणेश किया । इस प्रकार 'गांधी जी ने राष्ट्र की बागडोर संभाली और 5 नवम्बर 1921 को प्रथम अहिंसात्मक राष्ट्रीय संघर्ष का श्रीगणेश हुआ । असहयोग विदेशी माल का बहिष्कार, सविनय आज्ञा भंग आदि इस संघर्ष के मुख्य कार्यक्रम थे ।[2] राजनीतिक क्षेत्र में उन्होंने जो सफलता पायी इसके मूल में उनका अहिंसात्मक सिद्धांत रूपी अमूल्य शास्त्र ही था । स्कूलों तथा कालेजों के युवक से लेकर वृद्ध जन तक के लोग गांधी जी के पीछे खड़े हो गये । साहित्यकारों का भी खूब सहयोग हुआ । आशा तथा आत्मबल प्राप्त जनता ने स्वतन्त्रता की शुभ प्रतीक्षा में उत्साह का प्रदर्शन किया ।

गांधी जी अहिंसा का मशाल लेकर आगे बढ़े और भारत की सुप्त जनता उनकी प्रेरणा से ओत प्रोत हो संघर्ष की रण भूमि में कूद पड़ी । सत्य के बल पर दृढ़ रह कर अहिंसा, संयम, साधना, सेवा आदि अमूल्य शास्त्र को धारण करके सत्याग्रह आन्दोलन चलाने का आह्वान उन्होंने किया । 'गांधी जी की यह प्रेरणा टालस्टाय से मिली थी, परन्तु इसकी कार्यान्विति का श्रेय उन्हीं को है । उन्होंने

---

1. To the vast majority of India's people he is the symbol of India determind to be free, of militant nationalism of a refusal to submit to a arrogant might, of never agreeing to anything involving National dishonour. Discovery of India. Pt. Nehru. P. 473.
2. आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका - शम्भूनाथ पाण्डेय - पृ० 8 .

(गांधी जी) दक्षिण अफ्रीका में थोपित अन्यायों के विरुद्ध जो निष्क्रिय प्रतिरोध (Passive resistence) किया उसी को उन्होंने 'सत्याग्रह' का पवित्र नाम देकर राजनैतिकता का श्री गणेश किया ।-[1] राष्ट्रीय जीवन में इसकी खूब प्रतिष्ठा भी हुई । परन्तु भारतीय स्वंतत्रता संग्राम में एक ओर अहिंसा पर आधारित सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह आन्दोलन चलते रहे तो दूसरी ओर गांधी जी की पद्धति के विरुद्ध कुछ क्रांतिवादी नवयुवकों का विद्रोह भी चलता रहा । यह तो आश्चर्यजनक नहीं था कि क्रांतिकारी हिंसात्मक जन आन्दोलन को पराजित करके गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन ने ही विजय प्राप्त की । अहिंसा के उपलक्ष्य में सभी आन्दोलन का संगठन हुआ था । 10 मार्च के घोषणा पत्र के द्वारा गांधी जी ने देश के कोने कोने में अपने सिद्धान्तों को प्रचारित करने तथा जनता के मन में इन तत्वों की नींव डालने की कोशिश की । अहिंसात्मक सत्याग्रह की महत्ता को प्रतिष्ठा की गयी ।

महात्मा गांधी जी किसानों के भी नेता थे। किसानों के बीच उनके पदार्पण होने पर सामूहिक जागरण के अध्याय का प्रारंभ हुआ । उनके नेतृत्व में जो स्वंतत्रता आन्दोलन चला उसमें किसानों की जागृति के लिये कठिन श्रम हुआ था। किसानों और मजदूरों को शोषण नीति से बचाने के लिये चम्पारन , खेड़ा, अहमदाबाद आदि जगहों में सत्याग्रहों का आयोजन किया गया और बहुत कुछ हद तक हमें सफलता प्राप्त हुई ।

सन् 1926-27 में सारे देश में हिन्दु-मुस्लिम दंगे हो रहे थे, जिन्हें शान्त करने के लिये गांधी जी ने 21 दिन का उपवास किया । इसी समय एक कान्फ्रेंस हुई जिसमें दंगों को रोकने के प्रयत्नों पर विचार किया गया । सन् 1927 में मद्रास के कांग्रेस अधिवेशन में राजनीतिक असंन्तोष ने उग्र रूप धारण कर लिया । कांग्रेस में वामपक्षी दल का उदय हो चुका था और वह औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग से असन्तुष्ट होकर पूर्ण स्वंतत्रता की मांग कर रहा था । सन् 1928 ई० का वर्ष नवीन राजनीतिक चेतना का

1- हिन्दी कविता में युगान्तर - डा० सुधीन्द्र - पृ० 10.

काल था। जगह-जगह युवकों के संगठन बनने लगे और देश में फिर से नई चेतना लाने का प्रयत्न किया जाने लगा। इस कार्य में अग्रणी थे पं० जवाहर लाल नेहरू तथा सुभाष चन्द्र बोस। दोनों ही अदम्य इच्छा शक्ति, क्रान्तिकारी भावना और अटूट देश-प्रेम लेकर भारत के राजनैतिक क्षितिज पर उदित हुए।

राजनीतिक क्षेत्र में सत्याग्रह और संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुँच गए। सरकार की ओर से राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने का प्रयत्न निरन्तर चलता रहा। इस दमन नीति से विशेष सफलता न प्राप्त सकने के कारण उसने कांग्रेस से समझौते की कोशिश की। सरकार की ओर से यह घोषणा भी हुई कि 'हिन्दुस्तान को स्वराज्य मिलेगा लेकिन वह किस्तों में दिया जाएगा। पहली किस्त महायुद्ध के बाद मिलेगी। शेष किस्तें कब दी जायेंगी इसका निर्णय पार्लमेण्ट समय-समय पर करेगी और पहली किस्त की योजना बनाने के लिए तथा भारत का लोकमत जानने के लिए भारत-मंत्री मोंटेग्यू हिन्दुस्तान आयेंगे'।[1] जनता ने इस घोषणा को सत्याग्रह की सफलता समझकर संतोष दिखाया। 1935 के वैधानिक एक्ट की घोषणा यद्यपि कांग्रेस के नेताओं की प्रतीक्षा के अनुकूल न थी फिर भी उन्हें संतुष्ट रहना ही पड़ा।

द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त भारत को और भी आपत्तियों का सामना करना पड़ा। नये-नये कानून और नयी नयी बाधायें, शासन-सुधार की नई दिशा आदि ने जनता पर गहरी चोट लगा दी। भारत की सहायता से ही अंग्रेज विश्वयुद्ध में अपनी शक्ति और बल दिखा सके। उस समय के प्रतिनिधि - कांग्रेस-मंत्रि-मण्डल की अनुमति न प्राप्त करने पर भी उन्होंने सैनिकों को भेजना आरंभ कर दिया। इस पर क्रुद्ध होकर कांग्रेस-मंत्रि-मण्डल ने अपना पद त्याग कर दिया और इन्हीं समसामयिक घटनाओं ने राजनीतिक जीवन में एक आरोह अवरोह का कार्य किया। कांग्रेस ने और भी

1- हिन्दी कविता में युगान्तर - डा० सुधीन्द्र - पृ० - 22 - 23

शक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से मद्रास, बीहार, उड़ीसा, बम्बई और मध्य प्रान्त में नये मंत्रि-मण्डल बनाये ।

1935 में कांग्रेस मण्डल ने यह माँग प्रस्तुत की कि केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के प्रति भारत सरकार को उत्तरदायी बना दिया जाय । अंग्रेजी सरकार ने कांग्रेस की राजनीतिक माँग को गौण माना तो विनोबा जैसे सन्तों के नेतृत्व में संघर्ष निरन्तर चलते ही रहे । सन् 1942 में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का आरम्भ हुआ । सरकार ने देश के नेताओं को जेल में बन्द कर दिया । ~~इस समय पाकिस्तान हिन्दुस्तान के रूप में देश का विभाजन हो चुका~~ । 9 फरवरी सन् 1943 के दिन गांधी जी ने 21 दिन का उपवास किया । उनके उपवास से सारे देश में नई हलचल प्रारम्भ हो गई । जनता पूर्ण स्वराज्य की माँग के लिए सक्रिय हो उठी । लार्ड माउण्ट बाटेन और कांग्रेस के बीच में समझौता हुआ और कांग्रेस के हाथ में भारत की शासन सत्ता आयी । फलतः 1947 पन्द्रह अगस्त को भारत स्वतन्त्र हुआ ।

पन्त के काव्य की पृष्ठ भूमि और प्रेरणा स्त्रोत की छानबीन में भारत के स्वतन्त्र होने तक की राजनीतिक परिस्थितियों का पर्यवेक्षण करना पर्याप्त है, जिससे कवि विशेष रूप से प्रभावित है । स्वातन्त्र्योत्तर भारत की राजनीतिक परिस्थिति पन्त काव्य के अध्ययन में कम महत्त्वपूर्ण है । उनकी कविता ने उन परिस्थितियों से कम ही प्रेरणा ग्रहण की है ।

ब) धार्मिक और आर्थिक परिस्थिति

आलोच्य युग में विभिन्न धर्मावलंबियों के बीच संघर्ष चलते रहे और साम्राज्यवादी लोग उससे लाभ उठाते रहे । समाज में विभिन्न धर्म और जाति विद्यमान है तो वहाँ आपस की लड़ाई संभव है । सरकार ने उन दिनों के साम्प्रदायिक दंगों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन दिया । उन्होंने राजनीतिक चतुर चाल के तौर पर मुसलमान लोगों को हिन्दू लोगों से अलग करने का पूरा प्रयत्न किया । अंग्रेज मन ही मन इच्छा करते थे कि देश की आन्तरिक शक्ति की क्षति हो जाय जिससे कि वे सदा के लिये सत्ताधिकारी बन जावें ।

इसके अतिरिक्त ईसाई धर्म का प्रचार भी उनका उद्देश्य था। अतएव शासक वर्ग का पूरा आश्रय पाकर यहाँ ईसाई धर्म पनपने लगा। ईसाई धर्म में दीक्षित होनेवालों को अनेक नयी सुविधाएँ व रियायतें मिलने लगीं। इसके परिणामस्वरूप हिन्दू धर्म की कुरूढ़ियों से पीड़ित उपजातियों ने ईसाई धर्म की स्वीकृति की। बंगाल तथा केरल में ईसाई धर्म सबसे अधिक जम सका आर्य समाज ने इस नए प्रवाह को रोकने का जबरदस्त प्रयत्न किया।

प्रस्तुत युग में भारत भर की धार्मिक परिस्थिति अनेक परिवर्तनों और हलचलों से उद्वेलित हो उठी थी। नवीन शिक्षा के प्रचार के बावजूद समाज में पंरपरा और रूढ़िप्रियता बनी रही। जाति-पाँति के विचार से जन-मन मुक्त नहीं हुआ। धर्म के क्षेत्र में परंपरागत पूजा, त्यौहार आदि की प्रमुखता थी। पुरानी रूढ़ियों पर विश्वास रखनेवाले लोगों की पुनर्जन्म माया, दान, व्रत, पूजा-पाठ आदि में विश्वास था। साधु-सन्तों का सम्मान भी लोग करते थे। ज्ञान और दर्शन नाम मात्र के लिए रह गया। किन्तु आर्य समाजी आन्दोलन के कारण समाज के एक पक्षके लोगों ने इन विश्वासों पर विशेष ध्यान नहीं दिया। अतएव धार्मिक विधियों की कटु आलोचना करके जनता का मन उससे विचलित करने के उद्देश्य से यह कार्य आगे बढ़ा। धार्मिक दुरूहताओं और जातिगत जटिलताओं को रोकना अनिवार्य था, जिससे भारत की आंतरिक शक्ति सुरक्षित रख सके। इसीलिए अंग्रेज सत्ता के विरुद्ध कदम उठाने और जनता को अकर्मण्यता की नींद से जगाने के लिए प्रबुद्ध वर्ग ने प्रयत्न किया। यही कारण है कि नवयुग के नेताओं ने हिन्दू धर्म के वृहत् अक्षय भंडार में से ऐसे ग्रंथों के अध्ययन पर बल दिया जो सुधारवादी दृष्टि से पौराणिकता का परिहार कर नवोदित राष्ट्रीयता के पोषक और सांप्रदायिक वैमनस्य-दूरकरनेवाले सिद्ध हो सकते थे। एक पराधीन और निष्क्रिय एवं आलसी देश को कर्मठ बनाने के लिए ऐसे ही ग्रंथों की आवश्यकता थी। ये ग्रंथ उपनिषद और गीता थे। राजा राम-मोहनराय से लेकर महात्मा गांधी तक नव भारत के लगभग सभी निर्माताओं ने औपनिषदिक ज्ञान और व्यावहारिक अद्वैत पर बल दिया[1]।

1- हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास - दशम भाग प्र० संपादक - डा० नगेन्द्र - पृ० 10.

समाज और धर्म की तत्कालीन दयनीय अवस्था का और एक कारण नारी की बुरी हालत थी । समाज में स्त्री का स्थान अत्यन्त निम्न श्रेणी का था । वह शिक्षा के लिए अयोग्य समझी जाती थी । इसके अलावा पर्दा की प्रथा, बाल-विवाह, दहेज प्रथा आदि कुप्रथाओं के कारण समाज में स्त्री की स्थिति शोचनीय थी । परिवार में विधवाओं, भगाई हुई बालाओं और अन्य किसी प्रकार से भ्रष्ट युवतियों का तिरस्कार होता था । ऐसी स्त्रियाँ या तो आश्रमों में शरण लेती थी अथवा उन्हें वेश्या वृत्ति अपना लेनी पड़ती थी ।

आर्य - समाज, ब्रह्म समाज जैसी संस्थाओं ने और गांधी जी जैसे महा-पुरुषों ने नारी जागरण की दिशा में स्तुत्य कार्य किए । इसीलिए नारी की स्थिति में कुछ परिवर्तन लक्षित होने लगे थे । विविध राष्ट्रीय आन्दोलनों और सांस्कृतिक नवोत्थान ने स्त्रियों को अपना अधिकार प्रदान किया । सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र के जागरण ने उच्चकुल की शिक्षित नारियों पर प्रभाव डाला । कतिपय भारतीय नारियों समस्त स्त्री जागरण के लिए निरन्तर प्रयत्न करने लगीं जिससे कि अनेक कुरीतियाँ एंव कुप्रथाएँ तिरोहित होने लगीं ।

सामान्य जनता की आर्थिक स्थिति उस समय इतनी उलझी थी कि उस क्षेत्र में सुधार आसानी से नहीं हो सकता था । आर्थिकदृष्टि से भारत की अवनति असह्य थी।सरकार की औद्योगिक नीति भारत के लिए आर्थिक शोषण की नीति थी । दूसरी तरफ कर्ज की वृद्धि, रेलों पर किए गए अपव्यय और विकेन्द्रीकरण की योजना आदि ने भारत की आर्थिक स्थिति को और भी शिथिल बना दिया । इसके अलावा नमक कर भी लगाया गया । लगातार पड़नेवाले दुर्भिक्षों ने किसानों की अर्थ-व्यवस्था चौपट कर दी थी । उपर्युक्त कारणों ने भारत में अनेक आर्थिक समस्याओं को जन्म दिया । किसान - मजदूर वर्ग पर इसका बुरा असर पड़ा । वस्तुतः भारत भर की जनता घोर अशांति से क्षुब्ध थी ।

समाज सुधारकों ने इस क्षेत्र के सुधार की कोशिश की । इस युग में क्रान्तिकारी नवयुवकों का आगमन राजनीतिक मंच पर हुआ । देश में कम्यूनिस्ट संगठन कार्य पूर्व ही हो चुका था । साम्राज्यवादी- पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति गम्भीर विद्रोह उठाकर मार्क्सवादी समाजवादी दल आगे बढ़े। सामन्ती व्यवस्था का अन्त और सर्वहारा वर्ग की सुरक्षा का नारा इन सुधारकों की ओर से गूँज उठा

देश की नब्बे प्रतिशत जनता किसान - मजदूर वर्ग की थी । वे इस पूँजीवादी शोषण नीति के जाल में बेधी थी । सर्वहारा वर्ग की भलाई लक्ष्य में रखकर देश के साम्यवादी दल ने भारत भर में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की कोशिश की । सरकार की शोषण नीति को हिंसात्मक प्रयत्नों के माध्यम से दबाने में वे कदापि पिछड़े नहीं थे ।

सांस्कृतिक परिस्थिति :

उन्नीसवीं शताब्दी भारत के सांस्कृतिक संक्रमण के विकास की शताब्दी है। इस शताब्दी में मात्र सांस्कृतिक जीवन से ही नहीं परन्तु भारतके हर क्षेत्र से टकरानेवाली नई संस्कृति उभर कर आयी, वह है ब्रिटीश जाति की पाश्चात्य संस्कृति यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि हमारे ज्ञान - विज्ञान के क्षेत्र में अभ्युत्थान लाने में पाश्चात्य संस्कृति का बहुत बड़ा योग रहा है । फिर भी भारत के सांस्कृतिक क्षेत्र में इसका बुरा असर पड़ा, क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आए भारतीय संस्कृति की अवहेलना होने लगी । पाश्चमी अनुकरण-शीलता जनता में आई हो गयी । आधुनिक भारत के समर्थ मनीषियों का जब इस विषम स्थिति का ज्ञान हुआ , तब उन्होंने भारतीय जीवन और दृष्टिकोण में परिवर्तन उपस्थित करने की आवश्यकता अनुभव की । इनकी सुधारवादी विचारधारा ने आधुनिक जीवन के क्षेत्र में क्रान्ति लाने के लिए पर्याप्त योग दिया । इन मनीषियों ने भारत में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, ब्रह्म विद्या समाज आदि विविध धर्म - समाजों की स्थापना की । इन सभी आन्दोलनों से भारतवासियों में आत्मोद्धार की प्रवृत्ति का अत्यन्त तीव्रता के साथ विकास हुआ । इन सभी आन्दोलनों के तत्कालीन साहित्यकार को, मुख्यतः छायावादी कवि को अवश्य प्रभावित किया है । अतः आगे हम इन सांस्कृतिक आन्दोलनों का क्रमशः विवेचन प्रस्तुत करते हैं ।

ब्रह्म समाज (सन 1828)

ब्रह्म समाज का स्थापक आचार्य राममोहन राय है । उन्होंने विश्व - बन्धुत्व के प्रचार के तौर पर ब्रह्म की उपासना करने का आह्वान किया । उन्होंने ब्रह्म समाज का साँचा इस प्रकार बनाया कि इसमें सर्व धर्मों का मेल तथा पूर्व और पश्चिम का

भेद हो । ब्रह्म समाज का सदस्य कोई भी हो सकता है । इसमें जातिगत बन्धन नहीं है । ब्रह्म समाज के अनुसार मन्दिर, मस्जिद, गिरिजा सब में ब्रह्म स्थित है । इसके द्वारा वेद, कुरान, बैबिल आदि धर्म ग्रन्थों को समान रूप से सम्मान दिया गया और विश्व के सभी धर्म-शिक्षकों को सम्मान की दृष्टि से देखा गया । जनता के मन में बौद्धिक चेतना को प्रतिष्ठित करने का प्रशस्त कार्य ब्रह्म समाज ने किया । 'यह कहा जा सकता है कि राजा राम मोहन राय ने बुद्ध के पश्चात भारत वर्ष को इ अवस्था में रखा गया ताकि यह समूची मानव जाति को आध्यात्मिक सन्देश दे सके और निर्णय कारी राष्ट्रीय इतिहास की दौड़ आरम्भ कर सके ।'[1] परन्तु खेद की बात यह है कि इसकी स्थापना के दो वर्ष बाद राजा राममोहन राय का देहावसान हो गया । इसके पश्चात महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर और केशव चन्द्र सेन के इस संस्था का विकास किया । बंगाल में इस समाज की दृढ़ नींव उन्होंने डाली । विश्व विख्यात कवि रवीन्द्र नाथठाकुर, देवेन्द्रनाथ ठाकुर के पुत्र थे । ठाकुर की कविता में विश्व-बन्धुत्व के विचारों का सबसे सशक्त रूप में अंकन हुआ है ।

आर्य समाज (सन् 1877):

आर्य समाज की स्थापना स्वामी दया नन्द सरस्वती ने पंजाब में की । उस समय भारत में संस्कृति और धर्म एक ह्रासोन्मुख दिशा की ओर बढ़ रहे थे । हिन्दु धर्म और संस्कृति का वास्तविक रूप मिटता जा रहा था । जाति गत और धर्म गत विरोध के कारण हिन्दू जनता निराशा के गर्त में पड़ी थी । स्वामी दया नन्द ने धर्म के अर्थहीन आचारों को मिटाने का प्रयत्न किया । रूढ़ियों और परम्पराओं में फंसे हुये भारतीयों को उन्हों ने ललकारा और अपने पुरातन धर्म में निष्ठा रखना

1- आधुनिक भारतवर्ष का इतिहास - भाग -2
सरकार तथा दत्त पृ-500

सिखाया। उन्होंने पुराणों का तिरस्कार करके वेदों को जनता के सम्मुख रखा। उनका विश्वास था कि संसार की समस्त विद्याएँ वेद में बीज रूप निहित है। वे चाहते थे कि सभी लोग वेद का अध्ययन करें। वैदिक समाज और संस्कृति के ज्ञान ने हिन्दु जनता की श्रीवृद्धि कर दी। सांस्कृतिक क्षेत्र में पुनर्जागरण लाने के अतिरिक्त उन्होंने अंग्रेजी तथा ईसाई प्रभावों को दूर करने का प्रयत्न किया। राजनीति में अतीत के प्रति प्रेम और देशी वस्तुओं के उपभोग के लिये स्वामी जी ने जनता को प्रोत्साहित किया। आर्य समाज की नवीन शिक्षा पद्धति में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति को अन्धानुकरण को स्थान नहीं प्राप्त था। देशी भाषा के पठन-पाठन वे जरूरी समझते थे। वस्तुतः सामाजिक सुधार के साथ-साथ राजनैतिक सुधार भी इनके द्वारा हुआ। 'उन्नीसवीं शती के अंत में भारत का जो राष्ट्रीय जागरण हुआ है उसमें आर्य समाज का प्रधान हाथ रहा है।'[1] जनता के मन में सहिष्णुता, त्याग, अहिंसा आदि श्रेष्ठ मानवीय वृत्तियों को जगाने का स्तुत्य कार्य इसने किया है।

प्रार्थना समाज और ब्रह्म/विद्या समाज (1849 और 1875)

ब्रह्म समाज के आविर्भाव के बाद तथा आर्य समाज की स्थापना के पूर्व भारत में और दो आन्दोलनों का रूप हम देख सकते है, वे है - प्रार्थना समाज और ब्रह्म विद्या समाज। महाराष्ट्र में गोविन्द रानडे ने नवजागरण के लिए एक सशक्त आन्दोलन को रूप दिया। इसके परिणामस्वरूप प्रार्थना समाज का जन्म हुआ। रानडे ने अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा आदि पर विशेष बल दिया। श्रीमती एनीबेसेन्ट ने थियोसफि की सोसाइटी द्वारा ब्रह्म विद्या समाज के सिद्धान्तों का प्रचार किया। वे हिन्दू धर्म पर अटल विश्वास रखती थी और हिन्दू जनता के मन में अपने जीवन पर विश्वास स्थिर करने के लिए उन्होंने खूब प्रयत्न किया था।[2] प्रार्थना समाज, ब्रह्म विद्या समाज

1- आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्त्रोत-डा० केसरीनारायण शुक्ल-पृ- 9

2- Mrs. Annie Basant was a powerful influence in adding to the confidence of the Hindu Middle classes in their spiritual and National Heritage.

Discovery of India . Pdt. Nehru. - P. - 361.

आदि ने समाज के अन्ध विश्वासों और कुप्रथाओं को नष्ट-भ्रष्ट करने की कोशिश की । जनता के मन में धार्मिक संस्कार उत्पन्न करने के लिए उपर्युक्त आन्दोलनों ने उचित मार्ग निर्धारित किए । उन्नीसवीं शताब्दी के सांस्कृतिक पुनरुद्धारण में सहयोग देने की दृष्टि से ब्रह्म विद्या समाज का तथा धार्मिक पुनर्जागरण के नेता के रूप में प्रार्थना समाज का महत्वपूर्ण स्थान है ।

रामकृष्ण मिशन

आचार्य रामकृष्ण परमहंस ने आर्य समाज और ब्रह्म समाज जैसे सांस्कृतिक आन्दोलनों में कमजोरियां देखी । आर्य समाज में बौद्धिकता की प्रधानता थी तो ब्रह्म समाज में तार्किकता अधिक नहीं थी । हिन्दू धर्म का उद्धार इन आन्दोलनों का लक्ष्य था परन्तु ये हिन्दुत्व के एक पक्ष तक ही सीमित रहे, अर्थात उन्होंने उतने ही हिन्दुत्व को रक्षणीय माना जिसका आख्यान वेदों में मिलता है । जिस हिन्दू विभाग में मूर्तिपूजा, व्रत अनुष्ठान, श्रद्धा - पद्धति, देवी - देवता आदि का समर्थन नहीं है उसकी रक्षा इनका ध्येय था । परन्तु रामकृष्ण ने हिन्दू धर्म के इन विश्वासों का विरोध नहीं किया, और उन धार्मिक विश्वासों की सत्यता पर बल दिया ।

रामकृष्ण परमहंस का मुख्य ध्येय समस्त भारत के सामाजिक और धार्मिक उद्धार था । इसके लिए उन्होंने अनेक सन्देश फैलाए और सभी धर्मों को शास्त्रार्थ के विषय से बाहर लाने का प्रयत्न किया । 'ब्रह्म - समाजी, वैष्णव, शैव, शाक्त, तांत्रिक, अद्वैतवादी, मुसलमान और ईसाई बन कर परमहंस रामकृष्ण ने यह सिद्ध कर दिखाया कि धर्मों के बाहरी रूप तो केवल बाहरी रूप है । उनके मूल तत्व में कोई फर्क नहीं पड़ता है[1] । इस प्रकार हिन्दूत्व की रक्षा के लिए उन्होंने दूसरे धर्मों की सत्यता का साक्षात्कार किया था । उनके अनुसार सभी धर्म सत्य और सब के सब समान दीखते हैं । उनका कहना है कि धर्म आदि से अंत तक निर्मल रहना चाहिए और वह राजनैतिक एंव सामाजिक बन्धनों से दूर रहना चाहिए ।

रामकृष्ण मिशन से अनेकों का आकर्षण हुआ। रामकृष्ण परमहंस के स्वर्ग-वास के बाद उनके शिष्य विवेकानन्द ने देश - विदेश में उन सिद्धान्तों का

1- संस्कृति के चार अध्याय - रामधारी सिंह दिनकर - पृ० 580

प्रचार किया। उन्होंने अपने शिष्यों के साथ, जन - सेवा के लिए असाम्प्रदायिक रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। अतीत पर अधिष्ठित तथा भारत की विगत विभूतियों पर गर्व करनेवाले होने के बावजूद, वर्तमान जीवन की समस्याओं प्रति श्री विवेकानन्द का रुख नितान्त आधुनिक था। वे भारत के अतीत और वर्तमान को मिलानेवाली कड़ी थे[1]।

स्वामी जी ने अपनी जन्मभूमि पर गर्व किया था। उन्होंने माना कि धर्म, शास्त्र, विज्ञान नीति आदि की अधिष्ठात्री है हमारी जन्मभूमि। भारत में सभी दर्शनों का मूल स्त्रोत जमा है - इस पर अडिग विश्वास रखते थे। उनका विचार था कि मातृभूमि की अमिट शक्ति को कोई बाहरी राष्ट्र दबा नहीं सकता। भारत की श्रेष्ठता सदैव सुरक्षित रहेगी।

विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म के उत्थान के लिए हर तरफ से प्रयत्न किया सामाजिक व्यवस्था के उपहासास्पद रूढ़ि - रीतियों के नाश के लिए उन्होंने अनेक उपदेश भी दिए। समाज में प्रचलित अनेक कुप्रथाओं, अन्धविश्वासों का उन्होंने घोर विरोध किया। ये सब मानव जीवन के आध्यात्मिक स्तर की उन्नति में बाधा उपस्थित करते है। हमारे जीवन को उच्च और उदात्त बनाने के लिए विचार और कार्य में स्वतन्त्रता तथा एकतानता परम आवश्यक है।

'स्वामी जी ने अपनी वाणी और कृतित्व से भारतवासियों में यह अभिमान जगाया कि हम अत्यन्त प्राचीन सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं, हमारे धार्मिक ग्रंथ सबसे उन्नत और हमारा इतिहास सबसे महान है, हमारी संस्कृत भाषा विश्व की सबसे प्राचीन भाषा है, और हमारा साहित्य सबसे उन्नत साहित्य है, यही नही, हमारा धर्म ऐसा है जो विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है और जो विश्व के सभी धर्मों का सार होता हुआ भी उन सब से अधिक है[2]। भारत की प्राचीन सभ्यता को उन्होंने विश्व की सभ्यता के सामने

1- Vivekananda, together with his brother diciples, founded the non-Sectarian Ramakrishna Mission of Service. Rooted in the past and full of pride in India's heritage, Vivekananda yet modern in his approach to life's problems and was a kind of bridge between the past India and the present. Discovery of India. Pt. Nehru - P. 356.

2- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ0 594।

रखने की कोशिश की । उन्होंने पश्चिमी राष्ट्र को आध्यात्मिकता का पाठ पढ़ाया, विश्व कल्याण के लिए भारतीय चिन्तनधारा को अपनाने का उपदेश दिया ।

उन्नीसवीं शती के भारत के सांस्कृतिक उन्नयन और धार्मिक उत्थान का जो आन्दोलन चला था उसमें स्वामी विवेकानन्द का बहुत अधिक योग रहा था । उन्होंने भारत में एक सच्ची सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की नींव डाली । दिनकर जी ने लिखा है 'नयी पीढ़ी के लोगों में उन्होंने भारत के प्रति भक्ति जगायी, उसके अतीत के प्रति गौरव एवं उसके भविष्य के प्रति आस्था उत्पन्न की । उनके उद्गारों से लोगों में आत्म - निर्भरता और स्वाभिमान के भाव जगे हैं । स्वामी जी ने सुस्पष्ट रूप से राजनीति का एक भी संदेश नहीं दिया, किन्तु, जो भी उनके अथवा उनकी रचनाओं के संपर्क में आया, उसमें देशभक्ति और राजनैतिक मानसिकता आप से आप उत्पन्न हो गयी'[1] । विदेश में भी स्वामी जी का महान स्वागत और सम्मान किया गया । भारत भर में प्रत्येक हिन्दु के मन में उनके व्यक्तित्व ने अमिट छाप छोड़ दी है ।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक :

भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के सांस्कृतिक आन्दोलन के लिए उपर्युक्त मनीषियों और उनके द्वारा बनाई गई भिन्न - भिन्न संस्थाओं का विशेष महत्व निरूपित हो चुका । इस कालखण्ड में भारत के धार्मिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन लक्षित हुए । इस पुनरुत्थानवादी युग में सांस्कृतिक क्षेत्र के समानान्तर राजनीतिक क्षेत्र में अभ्युत्थान के प्रयत्न हुए । इसकालखण्ड में तिलक, टागोर, गांधी, अरविन्द आदि आचार्यों का आगमन भारत की संस्कृति को सुदृढ़ बनाये रखने में विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ ।

आचार्य बालगंगाधर तिलक विवेकानन्द के समय के आसपास जीवित थे । तिलक जी का कार्य क्षेत्र था समाज और राजनीति । तिलक जी का उपदेश जनता के मन में राष्ट्रभक्ति जगाने तथा व्यक्ति को कर्मोन्मुख बनाने में सहायक सिद्ध हुआ । 'कर्मयोग शास्त्र' तिलक जी द्वारा प्रणीत उपदेशपरक ग्रंथ है ।

1- ~~वही वही~~ संस्कृति के चार अध्याय दिनकर - पृ0 593 .

भारत के अनेक आचार्यों ने उपनिषद, वेदान्त और गीता की और हिन्दुत्व को मोड़ने के उद्देश्य से टीकाएँ लिखी है। तिलक जी ने इन तीनों में से केवल गीता के सिद्धान्तों को स्वीकार करने का उपदेश दिया और उनकी व्या ने हिन्दुओं के भीतर नयी मानसिकता उत्पन्न की। 'वे हिन्दुओं की पलायनशीलता से दुखी थे, वे पराधीनता से क्षुब्ध थे। अतएव गीता की व्याख्या के द्वारा उन्होंने समस्त हिन्दू जाति में वह प्रेरणा दी जिससे मनुष्य प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजय पाता है, जिससे कर्तव्याकर्तव्य के निश्चय में दार्शनिक सूक्ष्मताएँ उसके मार्ग का अवरोध नहीं कर सकती तथा जिससे वह परिस्थितियों के अनुसार धर्माधर्म का ठीक ठीक समाधान कर पाता है'[1]।

वस्तुतः जनता को प्रवृत्ति मार्ग की महत्ता समझाने के लिए उन्होंने गीता की व्याख्या की। प्रवृत्ति मार्ग के पथ पर जनता को प्रशस्त करने के लिए तिलक जी ने गीता की जो व्याख्या की वह विशेष महत्व की है। दिनकर जी ने लिखा है- 'हमारा मत है कि गीता एक बार तो भगवान कृष्ण के मुख से कही गयी। किन्तु दूसरी बार उसका सच्चा आख्यान लोमान्य तिलक ने किया है। इन दोनों के बीच की अन्य सारी टीकाएँ और व्याख्याएँ गीता के सत्य पर केवल बादल बन कर छाती रही है'[2]।

बौद्ध जैन धर्मों के अनुसार निवृत्ति मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है, सन्यास ही मोक्ष का एकमात्र सहारा है। यद्यपि शंकराचार्य ने गृहस्थ कर्म को आवश्यक बताया था तथापि उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि इन कर्मों का आचरण सदैव न करते रहना चाहिए, अर्थात अंत में इनका त्याग करके, सन्यास लिए बिना मोक्ष नहीं मिलना। परन्तु तिलक की टीकाओं के द्वारा जनता के बीच इस विचार का प्रचार हुआ कि गृहस्थ का कर्म धार्मिक कर्म हो सकता है और गृहस्थ भी अपने आप में पूर्ण मनुष्य है। तिलक जी ने यह दिखाया कि गीता का मुख उपदेश प्रवृत्ति मार्गी धर्म है। संसार का त्याग करने के लिए गीता नहीं कही गयी है। गीता की रचना यह इंगित करने के लिए हुई है कि मोक्ष की दृष्टि से संसार के कर्म किस प्रकार किए जावें और

1- संस्कृति के चार अध्याय
2- वही वही - पृ0 511.
2- वही वही - पृ0 612.

तात्त्विक दृष्टि से इस बात का निर्देश करें कि संसार में मनुष्य मात्र का सच्चा कर्तव्य क्या है ?

तिलक जी के व्यक्तित्व से तत्कालीन समाज अत्यधिक प्रभावित हुआ। प्राचीन साहित्य में हमें जीवन से विमुख रहने का उपदेश है तो आज का सारा भारतीय साहित्य मनुष्यों को जीवन पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा दे रहा है तो इसका बहुत कुछ श्रेय तिलक जी को मिलना चाहिए। तिलक ने भारत जनता में पराधीनता की जंजीरों को तोड़ने और स्वाधीनता के लिए कर्म निरत होने की आकांक्षा उत्पन्न कर दी। तत्कालीन समाज और साहित्य में क्रान्तिकारी विचारधारा का प्रवाह उन्हीं की ओजमयी वाणी की प्रेरणा का परिणाम है।

महायोगी अरविन्द

अरविन्द का जन्म 1872 अगस्त 15 को हुआ। उन्नीसवीं शती के भारत के सांस्कृतिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में विचारक अरविंद एक महान् विभूति थे। युवा अरविंद उस समय जीवित थे जब भारत में परतंत्रता के विरुद्ध आन्दोलन चल रहा था। स्वाभावतः युवा अरविंद ने भी राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश किया। एक व्यापक राष्ट्रीय आन्दोलन की तैयारी भी उन्होंने की। उनकी पत्रिका 'वन्दे मातरम्' ने जनता के बीच देशभक्ति जगाने का प्रशस्त कार्य किया। परन्तु अरविन्द अधिक काल तक राजनीति के क्षेत्र में टिक न सके, इसके बीच उनके मन में आध्यात्मिक बोध जाग उठा, शेष जीवन उन्होंने आध्यात्मिक साधना में बिताया।

युग की सारी समस्याओं और संकटों का कारण चाहे वे सांस्कृतिक क्षेत्र में हों, धार्मिक क्षेत्र में हो, राजनीतिक या सामाजिक क्षेत्र में हो केवल मनुष्य के आन्तरिक पतन ही है। अरविंद ने इस दृष्टि से व्यक्ति-व्यक्ति के आन्तरिक विकास के लिए जनता को उद्बुद्ध कर दिया।

उनका विश्वास था कि व्यक्ति के अभ्यंतरिक विकास से ही वह संपूर्ण मानव बन सकता है तथा भारतीय संस्कृति अपनाने से ही यह विकास संभव हो सकता है । अतएव हमें यूरोप का अनुकरण बड़ी सोच-समझ के साथ करना चाहिएं । पश्चिमीय सभ्यता का आधार उनकी बाह्य समृद्धि है, वे आंतरिक विकास नहीं पा सके है । अरविन्द का कथन है कि जगत की सारी समस्याओं के सुलझाने के लिए मानव जाति का संपूर्ण विकास होना चाहिए । मानव को अपनी दुर्बलताओं का नारा करके भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के बीच सामजस्य की स्थापना करनी चाहिए । जीवन और मन की भौतिक स्थितियों की सत्यता को पहचान लेना चाहिए, क्यों कि उसके बिना आध्यात्मिक जीवन की सत्यता को समझना असंभव है और जीवन में आध्यात्मिकता की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती । अरविंद ने बदलते परिवेश में आध्यात्मिकता की आवश्यकता पर बलपूर्वक जोर दिया, क्यों कि मानव अपनी बुद्धि को आर्थिक और भौतिक जीवन पर केन्द्रित रखा है जिससे वह बर्बरता के गर्त पर गिर पड़ा है । मनुष्य को विज्ञान से प्राप्त वह नूतन शक्ति मात्र बाह्य आडम्बर पर जोर देने वाली है । मनुष्य को अपने मानसिक विकास के लिए काम करना है जिससे कि विश्व में शांति और एकता की स्थापना हो सकेगी ।

तिलक विवेकानन्द आदि ने जिस प्रवृत्ति मार्ग का आख्यान किया था अरविंद ने उसका खण्डन नहीं किया था । उन्होंने प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों की सार्थकता मानते हुए भी मनुष्य को दोनों से आगे जाने का उपदेश दिया था । अरविंद ने मानव की उस स्थिति को अतिमानव की संज्ञा दी है । योग - साधना द्वारा अतिमानस की अवतारण ही मानव अतिमानव के दिव्य स्तर तक पहुंच पाता है । अरविंद ने अपनी योग - साधना को इस दृष्टि से प्रशस्त करना चाहा ताकि व्यक्तिगत साधना द्वारा सामूहिक जीवन का उत्थान हो ।

गांधी जी

भारतीय राजनीति में गांधी जी का आविर्भाव एक ऐतिहासिक घटना है। उन्होंने राजनीति को एक सांस्कृतिक आधार से अभिमण्डित किया। उनका कार्य क्षेत्र मात्र राजनीति तक सीमित नहीं था। धर्म, संस्कृति, समाजसुधार इत्यादि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों पर उनके स्वतन्त्र चिन्तन का प्रभाव पड़ा है। गांधी जी की युगांतरकारी विचारधारा ने देश एवं देशवासियों के मानसिक धरातल पर प्रतिष्ठा पायी।

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय नवोत्थान के नेताओं में गांधी जी जैसे नेता वास्तव में संत पुरुष ही थे। राममोहनराय से लेकर गांधी जी तक विश्व प्रेम की जो भावना पली, वह उच्च मानवता को उत्तेजित करनेवाली थी। मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म प्रेम तथा परोपकार है। मनुष्य को हिंसा का त्याग तथा अहिंसा का ग्रहण परम आवश्यक है जिससे कि मानव सच्चा मानव बन जाएगा। ब्रिटेन के विरुद्ध संघर्ष करनेवाले हर भारतवासी के मन में अहिंसा की भावना भर देने के मूल में उनका यह विश्वास था कि हिंसा के द्वारा मनुष्य पाशविक प्रवृत्तियों का गुलाम बन जाता है। गांधी जी के कथन के अनुसार हिंसा मानवोचित गुण नहीं है। मनुष्य का आत्मबल शारीरिक बल से सौगुना श्रेष्ठ है। इसलिए घृणा क्रोध, आवेश, हिंसा आदि पाशविक प्रवृत्तियों को अपनाने से मनुष्य भी पशु के समान बन जाता है। 'अहिंसा परमोधर्मः' का मंत्र उन्होंने सिखाया और 'सत्यमेव जयते' का उद्घोष किया।

'अपने समग्र जीवन में गांधी जी ने कोई भी ऐसी बात नहीं कही, जो उनके पूर्ववर्ती लोगों ने न कही हो। किंतु साधना पूर्वक उन्होंने सभी प्राचीन सत्यों को अपने जीवन में उतार कर संसार के सामने यह उदाहरण उपस्थित किया जो उपदेश अनंत काल से दिए जा रहे हैं। वे सचमुच ही जीवन में उतारे जाने योग्य हैं'[1]। उनके पूर्व के साधकों और मनीषियों के बताए गए विचारों को उन्होंने स्वयं आचरण करके अपनी महान शक्ति का परिचय दिया। उनका कहना है कि नीच से नीच मनुष्य भी चाहे तो मानवत्व के चरम शिखर पर पहुंच सकता है। तत्वों और विचारों को जान लेना आसान कार्य

1- संस्कृति के चार अध्याय - दिनकर - पृ0 630.

है, परन्तु उनको प्रत्यक्ष पथ पर लाने में प्राय: मनुष्य असमर्थ हो जाता है। परन्तु गांधी जी ने कभी भी अपनी हार नहीं मानी। वे भारतीय संत परंपरा को शुद्ध बनाये रख सके। उन्होंने अपने त्यागमय एवं वासना रहित जीवन में उपवास, तप तथा ब्रह्मचर्य के नियमों को लोकमंगल की साधना का अंग ब वे इस तरह के चरित्र - निर्माण तथा मानसिक गठन को राष्ट्र निर्माण का मूलाधार मानते थे।

यद्यपि गांधी जी का पदार्पण राजनीतिक क्षेत्र में था तथापि उनकी विचारधारा सामूहिक जीवन के जागरण के लिए अत्यन्त सशक्त साबित हुई। तिलक के बाद गांधी जी के आगमन से सामाजिक जागरण को नयी स्फूर्ति प्राप्त हुई।'संभवत: लोकमान्य तिलक जो कार्य स्फुट रूप से कर पाए थे, वह कार्य गांधी जी द्वारा व्यापक, देशव्यापी और संगठित रूप में संपन्न हुआ'¹। हरिजनों का उद्धार इस दृष्टि से गांधी जी का मुख्य ध्येय था। हरिजनों के उद्धार के लिए उन्होंने उपवास किया था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हरिजनों को हिन्दू जाति का समानाधिकार प्राप्त हुआ तो उसका श्रेय गांधी जी को है। समाज में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच के वैमनस्य तथा असंतोष को मिटाकर उनमें एकता लाने का प्रयास गांधी जी ने जो किया था, वह सफल हुआ।

गांधी जी का सामाजिक दृष्टिकोण समष्टिपरक था। उनके समाज सुध का मूलमंत्र था 'वसुधैव कुटुम्बकम्'। सबकी उन्नति वे चाहते थे, एक की नहीं। अत: ऊंच - नीच, अमीर-गरीब, छूत-अछूत आदि भावनाओं को दूर करने का स्तुत्य कार्य उन्होंने किया था।

गांधी जी ने देखा कि राष्ट्र - निर्माण के लिए देश की आंतरिक शक्ति परम आवश्यक है। उनकी ओर से इस शक्ति को कायम रखने का सफल प्रयत्न हुआ। जनता के बीच आध्यात्मिक स्तर की एकता गांधी जी के प्रमुख उद्देश्य में एक था। पंडित नेहरू जी ने लिखा है - 'जनता में आध्यात्मिक एकता बनाये रखने तथा पाश्चिमी संस्कृति से अभिभूत उच्च वर्ग तथा जीवन की विभीषिकाओं से संत्रस्त निम्न वर्ग के बीच की खाई

1- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - दशम भाग - प्र० स० डा० नगेन्द्र - पृ०

पाटने के लिए वे प्रस्तुत हुए । अतीत के जीवंत तत्वों को खोज निकालकर उसे नवनिर्माण का आधार बनाने का कार्य उन्होंने किया और जनता की सुप्त शक्ति को जगाकर उन्हें बौद्धिक दृष्टि से प्रबुद्ध बनाया[1]। दूसरी तरफ, गांधी जी ने देश की राजनीतिक एकता के पुनर्संगठन के तौर पर कतिपय रचनात्मक कार्यक्रम निर्धारित किये। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी मालों का उपयोग, प्रौढ़ शिक्षा, हिन्दी प्रचार, आदि उनके रचनात्मक कार्यक्रम के मुख्य अंग थे। गांधी जी ने इसके अतिरिक्त जनता को स्वावलंबी बनाना चाहा। देश की आर्थिक स्थिति के उद्धार के लिए भी यह आवश्यक था। अतः उन्होंने जनता के बीच खादी का प्रचार किया। इस प्रकार राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उत्थान के लिए गांधी जी का रचनात्मक कार्यक्रम सहायक सिद्ध हुआ।

गांधी जी का सत्याग्रह आन्दोलन इसलिए अधिक लोकप्रिय हो सका कि इसमें निहित विशुद्ध नैतिक तथा आत्मिक मूल्य का सब आदर करते थे। बीसवीं शती में भारत का नैतिक और आत्मिक उत्थान सचमुच महात्मा गांधी जी के आदर्शों द्वारा हुआ।

टैगोर :

गांधी जी और टैगोर दोनों उच्चकोटि के नेता थे। टैगोर मुख्यतः चिन्तक थे तो गांधी जी अपने आदर्शों के सशक्त प्रवर्तक थे। टैगोर कला और संस्कृति को लक्ष्य मानकर जीवन की वृद्धि और विकास चाहते थे। सामंतवादी विचारधारा से प्रभावित होने पर भी टैगोर श्रमिक शक्ति के पक्षकार थे। दलित और श्रमिक वर्ग से आत्मिक सहानुभूति उनको बहुत रही

---

1. He set about to restore the spiritual unity of the people and to break the barrier between the small westernized grou at the top and the masses, to discover the living elements in the old roots and to build upon them, toweaken these masses out of their stupor and sta tic condition and make them dynami

Discovery of India. Pt. Nehru. P. 385.

विशेषता थी । गांधी और टैगोर दोनों पूर्ण रूपसे भारतीय थे । दोनों विभिन्न दृष्टिकोण के आधार पर जीवन को प्रशस्त करने के पक्ष में थे फिर भी दोनों के आदर्श आपस में पूरक थे । विश्वमानवतावाद ही दोनों का लक्ष्य था ।

उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल में जो सुधार कार्य चला उसमें टैगोर सक्रिय भाग लेते थे । उस समय के संत, दार्शनिक, कलाकार और साहित्यकारों में टैगोर उच्च शिखर के समान विराजित थे । विश्व कवि टैगोर को अपनी रचना गीतांजलि पर 'नोबल पुरस्कार' प्राप्त हुआ । ब्रिटीश सरकार ने उन्हें 'नाइट हुड' की उपाधि से सम्मानित किया था किन्तु जालियानवाला हत्याकाण्ड की घटना से उनके मन में ब्रिटन के प्रति रोष प्रकट हुआ कि उसने उस उपाधि अस्वीकार कर दी । शांति-निकेतन की स्थापना में कला और संस्कृति के प्रति उनका प्रबल प्रेम लक्षित होता है । आधुनिक भारतीय साहित्य टैगोर की चिन्तनधारा से बहुत अधिक प्रभावित सा दिखाई पड़ता है । 'टैगोर भारत के अन्तर्राष्ट्रीय नेता भी रहे जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सहकारिता पर विश्वास रखकर अपने व्यापक दृष्टिकोण के जरिये उसके लिए निरन्तर प्रयास किया । सशक्त व्यक्तिवादी होने के नाते, शिक्षा प्रसार, संस्कृति, स्वास्थ्य तथा समता की भावना के क्षेत्र में रूसी क्रान्ति की जो उपलब्धि हुई उनके वे समर्थक थे'[1] ।

संधयुग को बौद्धिक चेतना के प्रतीक, आर्य समाज और ब्रह्म समाज ने भारतीय जनता के बीच बौद्धिक अध्यात्म का जो बीज बोया वह रवीन्द्र के द्वारा पल्लवित और पुष्पित हुआ । गांधी जी और रवीन्द्र से प्रभावित होकर ही आगे 'ईश्वर के ईश्वरत्व और धर्म के उच्चत्व में शंका की जाने लगी,

---

1. He has been India's internationalist par excellence, believing and working of international co-operation, x x x x strong individualist as he was, he became an admirer of the great achievements of the Russian Revolution especially in the spread of education, culture, health and the spirit of equality.

Discovery of India. Pt. Nehru. P. 360.

अवतारवाद का निषेध हुआ और भक्ति के रूढ़िवादी (आचारपरक) रूप का नाश हुआ और उसके स्थान पर आध्यात्मिक भावना की प्रतिष्ठा हुई। वैराग्य और तपस्या के स्थान पर श्रम-पूजा, मानव-प्रेम और कर्मयोग की भावना प्रतिष्ठित हुई[1]। बीसवीं शताब्दी के भारत के सांस्कृतिक अभ्युत्थान में गांधी और टैगोर का अद्वितीय महत्व है। उनके दर्शन की उपलब्धियां सांस्कृतिक धरातल पर प्रत्यक्ष रूप से सफल सिद्ध हुई।

भारत के उन्नीसवीं शताब्दी की और बीसवीं शती के प्रारम्भ की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का विवेचन उपर प्रस्तुत किया गया और इससे भारत के उन मनीषियों का भी परिचय प्राप्त हुआ जिन्होंने देश के सांस्कृतिक पुनरुत्थान की नींव डाली है।

साहित्यिक परिस्थिति :

आधुनिक युग वस्तुतः परिवर्तन का युग है। इस युग में हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विभिन्न अंगों में कोई न कोई परिवर्तन हम देख सकते हैं। इसी युग में हिन्दी साहित्य नवीन शक्ति तथा ओज से प्रकाशवान रहा और उसमें आधुनिकता की प्रवृत्ति दिखाई पड़ने लगी। परिणामस्वरूप भक्तिकालीन तथा रीतिकालीन काव्यधारा की लोकप्रियता नष्टप्राय होने लगी। नवोत्थान की लहरें साहित्य के सारे क्षेत्रों में उमड़ने लगी।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतेन्दु ने हिन्दी साहित्य को नवीन मोड़ देने में विशेष योग दिया। उनकी कविता में सबसे पहले परिवर्तन लक्षित हुए। रीतिकाल की कविता का आदर्श यहां तिरस्कृत हो गया। कविता सामन्तों और राजदरबारों के संकुचित क्षेत्र से निकलकर लोकजीवन के अत्यन्त निकट आयी और आम जनता की आशा-आकांक्षा और सहज की अभिव्यक्ति करने में प्रवृत्त हुई। नवीन आदर्श से ओत-प्रोत कवियों ने भारत की मूक तथा पीड़ित जनता की हृदयगत भावना को अभिव्यक्ति दी। जनता में क्रान्तिकारी भावना का उदय इस काल में विशेष रूप से हुआ। किसी न किसी प्रकार सारा काव्य क्षेत्र जनता की विचारधारा और आशा-निराशा को रूपायित करने में क्रियाशील रहा। कविता वास्तव में जनता के लिए समर्पित की जाने लगी। संक्षेप में हम केसरीनारायण शुक्ल के शब्दों में कह सकते हैं, कि 'हिन्दी काव्य (तथा साहित्य) के पुनरुत्थान का

1- हिन्दी कविता में युगान्तर - डा० सुधीन्द्र - पृ० 18

धारा श्रेय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को है । इनके तथा इनके सहयोगियों के प्रभाव से कविता जनता की वाणी बनी । इन लोगों के द्वारा सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह हुआ कि जीवन और साहित्य का जो संबन्ध रीतिकाल में शिथिल पड गया था फिर से घनिष्ट हो गया । भारतेन्दु युग की यह महत्वपूर्ण घटना है, जिसका आगामी साहित्य पर अत्यन्त व्यापक प्रभाव पडा । भारतेन्दु युग की कविता में देशवासियों की समस्या, उनके विचार तथा उनकी भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई । सबसे पहले भारतेन्दु में यह परिवर्तन प्रकट हुआ । अन्य कवियों ने इन्हीं से प्रेरणा एवं उत्साह प्राप्त किया । भारतेन्दु और उनके मण्डल के कवियों द्वारा प्रसारित काव्य विधा को आधुनिक काव्यधारा का प्रथम उत्थान कहा जा सकता है ।

भारत की उन्नीसवीं शताब्दी की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ ऐसी थीं जिनसे जनता असन्तोष और अस्वतंत्रता का अनुभव करती थी । साहित्यकार का दायित्व यह है कि वह परिस्थितियों के अनुसार अपने साहित्य को भी रूपायित करें जिससे कि वह जनता के जीवन में उपयोगी सिद्ध हो सके । उन दिनों की राजनीतिक आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से प्रेरणा ग्रहण कर अपने आदर्शों की अभिव्यक्ति के लिये भारतेन्दु युग के कवियों ने काव्य के माध्यम को अपनाया । यों कविता जन चेतना को जगाने का सशक्त माध्यम बनी एवं कविता को नवीन दिशा संकेत प्राप्त हुआ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस प्रवृत्ति के दूषित वातावरण में क्षय प्राप्त होते हुये हिन्दी साहित्य को उबार कर नयी लोक भूमि पर लाये । -2

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके मण्डल के कवियों ने अपनी साहित्यिक रचनाओं के द्वारा जनता की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया । राजनीति के क्षेत्र में क्रान्ति और आन्दोलन का प्रसार करना मात्र इनका उद्देश्य नहीं था, बल्कि जीवन के अन्य क्षेत्रों के प्रचलित कट्टरता

1- आधुनिक काव्यधारा - डा० केसरी नारायण शुक्ल - पृ० 13.
2- हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य - अज्ञेय - पृ० 47.

तथा रूढ़ि रीतियों का निवारण इनका ध्येय था। संक्षेप में कहा जाय तो उस समय की सामाजिक स्थिति को उद्वेलित करने के लिये समसामयिक कवियों ने नवीन दिशा संकेत प्रदान किये।

परन्तु इन कवियों ने अपनी कविता को नवीन विषय के अनुरूप नवीन काव्य शिल्प को स्वीकार नहीं किया। वे परम्परागत भाषा और छंद को आधार मान कर चलते रहे। इस क्षेत्र में कवियों की ओर से कोई नवीन उद्भावना नहीं हुई। काव्य के क्षेत्र में भाषा ब्रज भाषा ही रही। परन्तु गद्य के क्षेत्र में खड़ी बोली का स्वागत हुआ। 'भाषा और छंद के क्षेत्रों में भारतेन्दु युगीन कवियों का कोई नवीन और स्वतन्त्र प्रयास नहीं दिखाई देता। इस समय के कवियों ने किसी स्वतन्त्र शैली की उद्भावना न कर रीतिकाल की प्रक्रिया और प्रणाली का ही अंगीकार किया।'-1

हिन्दी साहित्य को युगपथ पर अग्रसर करने के लिये आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का आगमन उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में हुआ। हिन्दी साहित्य में क्रांति का द्वितीय चरण इनसे प्रारंभ होता है। कविता के क्षेत्र में क्रान्ति का जो बीज भारतेन्दु ने बोया था उसको विकसित कराने का सफल परिश्रम द्विवेदी जी ने किया। पिछली दशक में कविता का मात्र अंतरंग परिवर्तन हुआ। उसके बाह्य रूप में भी परिवर्तन अपेक्षित था। इस क्षेत्र में द्विवेदी जी ने युगद्रष्टा के रूप में कार्य किया। बीसवीं शताब्दी के अरुणोदय काल में कविता के क्षेत्र में नूतन क्रान्ति के सन्देशवाहक के रूप में द्विवेदी जी आये। अपने प्रयत्न में वे अवश्य जागरूक रहे।

द्विवेदी जी का पहला प्रयत्न भाषा के परिवर्तन के लिये था। 19वीं शताब्दी के साहित्यिक नेता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की चेतना नव-जागरण से अभिभूत अवश्य थी, परन्तु प्राक्तन(पुरातन) संस्कार-परम्परा में पले हुये व्यक्तित्व से सम्पूर्ण कायाकल्प की आशा नहीं की जा सकती थी। अंतरंग में नवीनता लाकर उनके युग ने कविता को जीवन की कविता तो बना दिया। परन्तु उसका माध्यम ब्रज-वाणी ही बनी रही।'-2

1- आधुनिक काव्यधारा-डा० केसरी नारायण शुक्ल -पृ 59
2- हिन्दी कविता में युगान्तर-डा० सुधीन्द्र -पृ० 41

द्विवेदी जी ने परम्परा की छाती से चिपेट रहने की इस प्रवृत्ति के विरुद्ध विद्रोह किया। चिर प्रतिष्ठित ब्रजराणी के सम्मोहन से बचकर उन्होंने, नये भाव बोध की अभिव्यक्ति के लिए नयी भाषा की खोज की। उन्हीं के प्रयत्न से कविता के क्षेत्र में खड़ी बोली प्रतिष्ठित हुई।

काशी में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना इस ओर द्विवेदी जी का प्रथम प्रयास था। वे इस संस्था के सूत्राधार थे। सरस्वती पत्रिका का संपादकत्व भी उन्होंने स्वयं स्वीकार किया (सन 1900 में)। ब्रज की सामंती भाषा का परित्याग करके उसे अभिजात वर्ग के हाथ से मुक्त करना उनका मुख्य ध्येय था गद्य के समान पद्य के क्षेत्र में भी खड़ीबोली को अपनाना उस समय अनिवार्य था। इसके सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने अपने अनुयायियों को जो निर्देश दिए उनका अक्षरशः पालन भी हुआ। यहाँ हिन्दी कविता एक दूसरा मोड़ लेती है और इसे हिन्दी कविता का 'द्वितीय उत्थान' कहा जा सकता है। छन्द-विधान, भाषा, काव्य-विषय आदि के सम्बन्ध में द्विवेदी जी का सुधरा हुआ दृष्टिकोण कवि कर्त्तव्य में मिलता है। इसमें हिन्दी कविता की आगामी दो दशाब्दियों की साधना की एक बीज-योजना है। आधुनिक हिन्दी कविता के शैशव काल में 'कवि-कर्त्तव्य' ने परीक्षणोन्मुख कवियों के लिए एक दिशा संकेत का कार्य किया। मात्र कवि ही नहीं हिन्दी की बहुत सी पत्र-पत्रिकाओं ने कविता के क्षेत्र में युगान्तर उपस्थित करने के लिए उत्साह से योग दिया। आरंभ में ब्रजभाषा के प्रेमियों की ओर से बड़ा विरोध हुआ। उन्होंने कविता-कामिनी को खड़ीबोली की छूत लगना अवांछित ठहराया। लेकिन द्विवेदी जी हार माननेवाले कहाँ थे? काव्य क्षेत्र में खड़ीबोली की स्वीकृति समय की माँग थी। अतः द्विवेदी जी की अटल निष्ठा के सामने, परंपरा प्रेमियों का चंचु प्रहार शीघ्र ही बेकार सिद्ध हुआ। भाषा को परिनिष्ठित बनाने के लिए उन्होंने तीन शर्तें रखीं - ये थीं - सरल भाषा का प्रयोग, व्याकरण से शुद्ध भाषा का प्रयोग और साधारण सभ्य लोगों से व्यवहृत भाषा का प्रयोग।

अर्थ-सौरस्य के विषय में भी कुछ धारणाएँ उन्होंने निर्धारित की। वे हैं - (1) कवि जिस विषय का वर्णन करता है उस विषय से उसका तादात्म्य होना चाहिए। (2) अलंकार हीन भाषा ही अच्छा है अथवा प्रकृत रूप में जो

भाव आवे उसे ही पद्य बद्ध कर देना अधिक सरस और आह्लादकारक है । (3) सशक्त शब्दों के प्रयोग से ही अर्थ-सौरस्य बढ़ती जाती है ।

काव्य-विषय का उन्होंने आमूलतः क्रान्तिकारी परिवर्तन करना चाहा । कविता को मनोरंजक बनाने तथा पार्थिव जगत के सभी लोकोपयोगी विषय को इसके अन्तर्गत रखने पर उन्होंने बल दिया । वे समझते थे कि परम्परागत विषयों और रूढ़ि ग्रस्त काव्य नायकों के बहिष्कार से ही कविता का चमत्कार बढ़ेगा । संक्षेप में कविता के अन्तरंग बहिरंग के परिवर्तन के लिए उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है ।

इन प्रश्नों के अतिरिक्त इस युग के कवियों के सामने छन्द की समस्या भी थी । आचार्य द्विवेदी जी के निर्देश के अनुसार विषयानुकूल छन्दों का प्रयोग, नूतन छन्दों का प्रयोग, काव्य रचना में किसी एक छन्द का प्रयोग, पद्यान्त में अनुप्रासहीन छन्दों का प्रयोग आदि पर जोर दिया गया । उनका विश्वास था कि हिन्दी काव्य में, संस्कृत काव्य में प्रयुक्त छन्दों का आवर्तन हो सकता है । अतः द्विवेदी जी ने अपनी कविता में संस्कृत के वर्णिक छन्दों का प्रयोग किया । छन्द के चुनाव में कवियों को पूरी स्वतंत्रता थी और वे अपने इच्छानुसार छन्द का प्रयोग कर सकते थे । इसी कारण से मुक्त छन्द के प्रयोग के लिए भी कवियों का ध्यान आकृष्ट किया गया । जीवन के हर क्षेत्र में मुक्ति की कामना लक्षित होती है तो क्यों जीवन की अभिव्यक्ति - कविता - में इस मुक्ति की आशा नहीं की जा सकती ? जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रकट स्वच्छन्दता की कामना काव्य-क्षेत्र में भी लक्षित है । मुक्त छन्द का प्रयोग इसी भावना का परिणाम है ।

द्विवेदी जी अतुकान्त काव्य के समर्थक रहे और आगे के सभी कवियों ने इसका प्रयोग किया । मुक्त छन्द वास्तव में प्राचीन काव्य, वेद में भी उपलब्ध है; इस बात पर कम ही लोगों का ध्यान गया है । अधिकांश लोग इसे पश्चिम की देन ठहराकर सन्तुष्ट होते हैं । वेदों में संप्राप्त इस महान उपलब्धि का मोल न आंक सकने के कारण हमारे कवि छन्द गत रूढ़ि के पीछे पड़े रहे । परन्तु नवीन युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रयत्न से, काव्य क्षेत्र में मुक्त छन्द का पुनः स्वागत हुआ । परीक्षण क्षम कवि, भावमुक्ति के साथ छन्द की मुक्ति भी अपना ध्येय मानकर आगे बढ़े । 'सर्वांशतः दृष्टिपात से यह स्पष्ट हो

जाता है कि द्विवेदी जी ने काव्य में भाषा तथा छन्द - विधान के विषय में अनेक मौलिक, तर्क सम्मत, सबल तथा महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए हैं । जिस प्रकार उन्होंने भाव-क्षेत्र में हिन्दी कविता के लिए नवीन प्रतिमान निश्चित किये उसी प्रकार कला के क्षेत्र में भी अपने समकालीन कवियों को नवीन दिशा देने का श्रेय उन्हें उपलब्ध है।[1] ।

आचार्य द्विवेदी के काव्य सिद्धान्तों को मानकर बाद के अनेक कवि काव्य-रचना में रत हुए । परिणामस्वरूप खड़ीबोली हिन्दी कविता की समृद्धि तथा विस्तार मिला । 1920 के बाद के प्रायः सभी कवि हिन्दी काव्य वैभव के प्रसार के कार्य में लगे रहे । इनमें उल्लेखनीय कवि मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध सियाराम शरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, गोपालशरण सिंह, रामनरेश, त्रिपाठी आदि हैं । इन कवियों की कविता पर युग की स्पष्ट छाप है और इन की कृतियों को द्विवेदी युग की विकसित रचना का नाम दिया जा सकता है । युगीन परिस्थितियों से ओत-प्रोत उनकी रचनाएं द्विवेदी युग के विकास काल का प्रतिनिधित्व करती हैं । नये भाव बोध ने इनकी कृतियों को एक नवीन दृष्टि प्रदान किया ।

इस कालखण्ड की अनेक कृतियां राष्ट्रीय आन्दोलन की पृष्ठभूमि में प्रणीत हैं । कुछ कवियों ने विभिन्न आन्दोलनों में भाग भी लिया था जो इसमें सक्रिय भाग न ले सके उनका भी मन राष्ट्रीय आन्दोलनों की अनुभूतियों से ओत-प्रोत रहा और इनकी रचना राष्ट्रीयता के रंग में रंग गई । भारतीय, ऐतिहासिक, धार्मिक एवं पौराणिक संदर्भों से विषय चुनकर उनमें सामयिक आदर्शों को भर देने की कोशिश उन्होंने किया है । राष्ट्रीयता एवं राष्ट्र-धर्म की अभिव्यक्ति उनका लक्ष्य था । सांस्कृतिक पुनरुत्थान के साथ-साथ राष्ट्रीय जागरण का महान सन्देश लेकर इस युग के कवि खड़े हो गए । 'देश की उन्नति में योग देनेवाले प्रत्येक नए विचार को इन्होंने (द्विवेदी युग के कवियों ने) मुखरित किया । ये कवि सामाजिक सुधारों के पक्षपाती थे, आर्थिक

1- आधुनिक कवियों के काव्य - सिद्धान्त - डा० सुरेशचन्द्र गुप्त पृ० 117 .

क्षेत्र में 'स्वदेशी' के गीत गाकर इन्होंने देश की आर्थिक दशा सुधारने का प्रयत्न किया और राजनीतिक क्षेत्र में देशभक्ति का स्वर इन कवियों के कंठ से फूटा। इस देशभक्ति में वर्तमान दुरावस्था पर क्षोभ, अतीत की भव्यता पर गर्व, जन्मभूमि की सुषमा का गान, देशहित के लिए सर्वस्व त्याग और विविध जातियों में प्रेम और एकता का उपदेश था[1]। इस युग की राष्ट्रीय कविता एक व्यापक धरातल पर बिखरती है और इसमें भारतेन्दु युगीन राष्ट्रीयता का एक स्वस्थ विकास लक्षित है। अन्त में हम इस निष्कर्ष पर आ सकते हैं कि 'द्विवेदी युग की राष्ट्रीयता प्रान्तीयता और हिन्दुत्व से उभर उठकर सर्वांगीन तथा संपूर्ण देश की एकता और अखण्डता की द्योतक बन गयी थी। काव्य में इस व्यापकता के अनुरूप दीप्ति, मधुरता और औदार्य का समावेश हुआ[2]। इस युग के युग चेता कवि युग मानस को उद्बोधन देने तथा बड़े मनोयोग से उन्हें आगे बढ़ाने में संलग्न थे। बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पंडित श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, रामदेवी प्रसाद पूर्ण, आदि इस क्षेत्र को महत्वपूर्ण कवि थे।

भारतीय सांस्कृतिक पुनरुत्थान के अन्तिम चरण होने के कारण इस समय की अधिकांश काव्य रचनाओं में असाधारण भावनाओं, कल्पनाओं, आशा-आकांक्षाओं और आत्मिक उत्साह के स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों रूप उपलब्ध होते हैं। इस युग के कवि एक तरह के अन्तर्द्वन्द्व से गुजर रहे थे। एक ओर जीवन की विवशता थी तो दूसरी ओर राष्ट्र के प्रति नैतिक दायित्व की भावना थी। जीवन के क्षेत्र में नए नए मूल्य स्थापित हुए और काव्य में भी सहज रूप से उनका प्रवेश हुआ। मानव-प्रेम, राष्ट्रप्रेम, नारी की मुक्ति, अस्पृश्यता निवारण, खादी प्रचार स्वावलम्बन इत्यादि काव्य विषयों के द्वारा इन मूल्यों की ओर संकेत किया गया अतः कविता के आन्तरिक पक्ष का परिवर्तन इस युग की प्रमुख विशेषता थी। काव्य में नवीन विषयों के समावेश होने के साथ साथ प्राचीन विषयों की आधुनिक संदर्भ में व्याख्या भी की गई। जीवन में ही नहीं साहित्य में भी

1- आधुनिक काव्य धारा का सांस्कृतिक स्त्रोत - केसरीनारायण शुक्ल - पृ० ।
2- द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य - डा० रामसकल राय शर्मा - पृ० 392.

सुधारवादी चेतना को समाविष्ट करने के महान उद्देश्य को लेकर उस समय के साहित्यकार आगे बढ़े ।

खड़ीबोली का उत्थान।

कहा जा चुका है कि हिन्दी के काव्य क्षेत्र में खड़ीबोली को प्रतिष्ठित करने के लिए आचार्य द्विवेदी जी ने अथक परिश्रम किया । यद्यपि भारतेन्दु युग में स्वयं भारतेन्दु जैसे कतिपय कवियों ने खड़ीबोली में कुछ न कुछ कविताएँ लिखी थी तथापि उन रचनाओं में कवियों का मन नहीं रमा था । काव्य क्षेत्र में खड़ीबोली की प्रतिष्ठा नहीं हुई थी । ब्रजभाषा ही काव्य भाषा का सम्मान प्राप्त कर सकी थी । उन दिनों के कवियों को यह बात अज्ञात थी कि खड़ीबोली एक ऐसी भाषा है जिसके द्वारा विचारों की सरल तथा शुद्ध अभिव्यक्ति हो सकती है । लेकिन जब इसमें साहित्यिक रचना का प्रयास हुआ तब यह प्रमाणित हुआ कि खड़ीबोली अत्यन्त अभिव्यक्ति कुशल भाषा है । वस्तुतः द्विवेदी युग में आकर खड़ीबोली ब्रजभाषा को अपदस्थ कर काव्य भाषा बन गयी ।

द्विवेदी युग में एक ओर ब्रजभाषा से खड़ीबोली का द्वन्द्व अनेक कारणों से चल रहा था । ब्रजभाषा सामन्तीय संस्कृति में पली भाषा थी । सामन्ती संस्कृति के पतन के साथ उस भाषा का भी पतन स्वाभाविक है । उन दिनों का साहित्य सामान्य जनता के निकट सम्पर्क में आने के लिए किसी न किसी प्रकार तड़प रहा था जो जन-जीवन की भाषा को अपनाने से ही संभव हो सके । इसके लिए जन भाषा खड़ीबोली का अंगीकार अनिवार्य था । स्वराज्य, स्वदेशी और भारतीय संस्कृति के आन्दोलनों की अभिव्यक्ति के जरिये काव्य क्षेत्र विस्तृत हुआ तो खड़ीबोली के माध्यम से यों ही देश काल का प्रभाव काव्य में प्रतिफलित होने लगा । काव्य भाषा के रूप में खड़ीबोली की प्रतिष्ठा के विषय में अज्ञेय का निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय है - 'सामन्ती परम्पराओं के प्रति उदासीनता खड़ीबोली के उत्थान का पहला (और नकारात्मक) कारण था । दूसरा कारण और इस का रचनात्मक महत्व स्पष्ट ही है - व्यापकता की खोज। राष्ट्रीयता की केन्द्रोन्मुख भावना के उदय और विकास के साथ साथ एक व्यापक भाषा की

या व्यापक भाषा की अनुपस्थिति में सबसे अधिक व्यापक घटक की - खोज स्वाभाविक थी , और यह व्यापक घटक खड़ीबोली ही हो सकती थी। ब्रजभाषा का उपयोग अपने प्रदेश से बाहर केवल साहित्य क्षेत्र तक सीमित था, जब कि खड़ीबोली अपने प्रदेश से बाहर लोक- व्यवहार में आती थी, भले ही अशुद्ध रूप में[1]। वास्तव में ब्रजभाषा के विरुद्ध खड़ीबोली का विद्रोह मात्र एक भाषागत विद्रोह नहीं था, एक भावगत विद्रोह भी था। दूसरी तरफ, आधुनिक युग के द्वार पर खड़े होने के लिए काव्य को खड़ीबोली का आधार लेना पड़ा। यांत्रिक युग में खड़ीबोली जैसी ओजस्विनी भाषा ही अपनी शक्ति के सहारे टिक सकती थी। अतः अनेक कारणों से आधुनिक युग में आकर खड़ीबोली ही साहित्यिक भाषा के पद की अधिकारी बन गयी।

भारतेन्दु युग के अन्त और द्विवेदी युग के आरम्भ के बीच के समय में हिन्दी काव्य क्षेत्र में पं0 श्रीधर पाठक का आगमन आधुनिक खड़ीबोली कविता के बीजवपन का आरंभ था। उनकी रचना 'एकान्तवासी योगी' (हरमिट, गोल्डस्मिथ) इतिवृत्तात्मक शैली में लिखा हुआ अनूदित काव्य है जिसमें पहली बार मँजी हुई भाषा का प्रयोग हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें स्वच्छन्दतावाद का पहला प्रवर्तक माना है। उनका कथन है 'हरिश्चन्द्र के सहयोगियों में काव्यधारा को नए नए विषयों की ओर मोड़ने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ी, पर भाषा ब्रज ही रहने दी गयी और पद्य के साँचों, अभिव्यंजना के ढंग तथा प्रकृति के स्वरूप निरीक्षण आदि में स्वच्छन्दता के दर्शन न हुए। इस प्रकार की स्वच्छन्दता का आभास पहले पहल पं0 श्रीधर पाठक ने ही दिया'[2]। श्रीधर पाठक की अनूदित रचना से ही पहले पहल पद्य के क्षेत्र में खड़ीबोली की व्यापक सम्भावनाओं का आभास मिला। श्रीधर पाठक की कतिपय कृतियों से यह ज्ञात हुआ कि खड़ीबोली की शक्ति पद्य के विकास और समृद्धि के लिए उपयुक्त है। हिन्दी कविता को आधुनिकता की ओर मोड़ने का प्रयास इनके द्वारा जो हुआ विशेष प्रशंसा के योग्य है। आचार्य अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी का 'प्रियप्रवास' काव्य

1- हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य - 'अज्ञेय' - पृ0 49 .

2- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आ0 रामचन्द्र शुक्ल - पृ0 577 .

इस दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं है। इतिवृत्तात्मक काव्य के भीतर भी हिन्दी काव्य में खड़ीबोली का विकास इनके द्वारा हुआ जिसे नगण्य मानना अनुचित होगा संस्कृत शब्दों से गढ़े हुए गहन भाषा के प्रयोग होने पर भी उपाध्याय जी की रचना में खड़ीबोली का सारल्य सुन्दर रूप से निखरता है। 'प्रियप्रवास' में गाम्भीर्य और सारल्य का मनोहर समन्वय है।

खड़ीबोली के उत्थान के द्वितीय चरण में आनेवाले कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, गिरिधर शर्मा नवरत्न, लोचनप्रसाद पाण्डेय आदि का विशेष उल्लेखनीय है। 'सरस्वती' में प्रकाशित इनकी अधिकांश रचनाएँ खड़ीबोली के परिमार्जित रूप को दिखाने में समर्थ थी। मैथिलीशरण गुप्त जी की 'भारत भारती' में खड़ीबोली का स्वच्छ और निखरा रूप मिलता है। रामचरित उपाध्याय जी की 'राष्ट्रभाषा स्तो', 'देवदूत', 'देवसेवा', 'देवी द्रौपदी', 'भारत-भक्ति', 'विचित्र-विवाह' इत्यादि खड़ीबोली में लिखित सुन्दर रचनाएँ हैं।

द्वितीय उत्थान के समाप्त होते होते खड़ीबोली में बहुत अधिक रचनायें प्रकाशित हुई। तृतीय उत्थान में खड़ीबोली काव्यानुकूल भाषा के रूप में अधिक सज गयी। कविता की अभिव्यंजनात्मक शैली परिवर्तित रूप में प्रचलित रही। इसका समर्थन करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है - 'खड़ीबोली को पद्यों में अच्छी तरह चलने में जो काल लगा उसके भीतर की रचना तो बहुत कुछ इतिवृत्तात्मक रही, पर इस तृतीय उत्थान में आकर यह काव्यधारा कल्पनान्वित, भावाविष्ट और अभिव्यंजनात्मक हुई। भाषा का कुछ दूर तक चलता हुआ स्निग्ध, प्रसन्न और प्रांजल प्रवाह इस धारा की सबसे बड़ी विशेषता है। खड़ीबोली वास्तव में इसी धारा के भीतर मंजी है'[1]। भाषा में नूतन सौन्दर्य लाने के अतिरिक्त इन कवियों की सबसे बड़ी विशेषता है इनकी व्यापक दृष्टि जिससे वे विविध विषयों का चयन करके उन्हें अत्यन्त आकर्षक तथा मार्मिक रूप में प्रस्तुत कर पाते हैं। इस क्षेत्र में अनूपम शर्मा, ठाकुर गोपाल शरण सिंह आदि कवि महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

द्विवेदी मण्डल के बाहर की खड़ीबोली काव्यधारा राजदेवीप्रसाद पूर्ण, पं० नाथूराम शंकर शर्मा, पं० गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, बदरीनाथ भट्ट, सत्यनारायण

1- वही - वही - पृ० 630.

कवि रत्न, लाला भगवान दीन, रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पाण्डेय आदि के हाथों में नव विकास प्राप्त कर गयी। इसके बाद भी खड़ीबोली का प्रचार बराबर बढ़ता गया। नूतन विषयों का समावेश हुआ। इन कवियों ने पौराणिक और ऐतिहासिक प्रसंगों के साथ वीरता, त्याग और सहिष्णुता की महत्ता दिखा दी इसके अतिरिक्त देश-प्रेम, समाजोद्धार, रूढ़ियों का विरोध आदि पर जोर देनेवाली अनेक कविताओं की रचना हुई। 'पूर्ण' जी की कविता में देश भक्ति और समाज भक्ति का सुन्दर समन्वय पाया जाता है। रामनरेश त्रिपाठी की 'मिलन', 'पथिक' 'स्वप्न' तथा पं० गयाप्रसाद शुक्ल सनेही की 'कुसुमांजलि', 'कृषक क्रन्दन', पं० रूपनारायण पाण्डेय की ''दलित कुसुम', 'वन विहाग', आश्वासन' आदि रचनाओं ने खड़ीबोली काव्य क्षेत्र में संस्कारी भाषा का रूप दिखा दिया। खड़ीबोली के प्रतिमानीकरण का श्रेय इन कवियों को देना चाहिए। अज्ञेय जी ने खड़ीबोली कविता के बारे में ~~लिखा है सन्~~ लिखा है - प्रतिमानीकरण का यह कार्य द्विवेदी युग की मुख्य प्रवृत्ति थी। इस काल में खड़ीबोली हिन्दी एक संस्कारी भाषा हो गयी और तभी से उसे खड़ीबोली कहना भी अनावश्यक हो गया - हिन्दी संज्ञा उसी के लिए रूढ़ हो गयी[1]।

छायावाद की उत्पत्ति :

काव्य भाषा खड़ीबोली के उत्थान के साथ साथ उसमें नवीन आदर्श एवं मान्यताओं को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से कुछ कवि आगे बढ़े। अर्थात् द्विवेदी युग के अन्त में कुछ कवि ऐसे हुए जो खड़ीबोली काव्य के लिए अपने को अर्पित करने के लिए तैयार थे। कविता की भाषा को ही नहीं भाव को भी नूतन परिप्रेक्ष्य के अनुकूल नवीन साँचे में ढालने की सफल कोशिश हुई। इसका एक कारण यह कहा जा सकता है कि कवि का अन्तरंग वस्तुतः सूक्ष्म की अभिव्यक्ति के लिए जाग उठा जिसका अभाव अब तक की कविता को अखरता था। प्रथम एवं द्वितीय उत्थान के कवि स्थूल को इतिवृत्तात्मक शैली में प्रस्तुत करने में ही निरत रहे। वस्तुतः अपनी आँखों के सहारे देख सकनेवाली वस्तुओं का वर्णन हिन्दी कविता में खूब हुआ है।

1- हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य - 'अज्ञेय' - पृ० 51.

अधिकतर कवियों का ध्यान राष्ट्रीय - सांस्कृतिक कविता में ही केन्द्रित रहा । 'राष्ट्रीय - जागरण के ये कवि देश के लिए, लोक के लिए, समाज के लिए कविता करते थे । वह कविता 'लोक हिताय', बहुजन हिताय' थी । इतिवृत्तात्मक यथार्थ और उपदेशात्मक आदर्श कविता के दो उपजीव्य थे । लोक-पक्ष का आलोचन कवि में परकाष्ठा तक पहुँच चुका था, परन्तु इस विपुला पृथ्वी और अनंत सृष्टि में भौतिक लौकिक जीवन का स्थूल पार्श्व (बहिर्पक्ष) ही सब कुछ नहीं है । चर्मचक्षुओं से अतीत और अगम्य, स्थूल दृष्टि से अस्पर्श्य , जीवन का सूक्ष्म पार्श्व (अन्तः पक्ष) भी है । यह अन्तः जगत देखने में जितना सूक्ष्म अणुवत् है , उतना ही विराट रूप है । वस्तुतः तो उसी के विराट रूप में यह बहिर्जगत समाविष्ट है - ऐसा भी कह सकते हैं[1] । परन्तु अब तक की कवि-दृष्टि केवल बहिर्जगत ही टिकी रही । बाद में स्थूल से हटकर कवियों की दृष्टि सूक्ष्म में केन्द्रित हुई । अन्तर्जगत को प्रकट करने के लिए वे उत्सुक रहे और यहाँ कवि- मानव का 'स्व' पक्ष चेतन हो उठा। इस अन्तर्जगत का मार्ग हिन्दी कविता में सहज स्वाभाविक क्रम से खुलने लगे । इसी अन्तः प्रकृति की प्रक्रिया से कवि ने जग जीवन के स्थूल पक्ष से विकर्षित होकर सूक्ष्म पक्ष की ओर दृष्टि डाली । यहाँ कवि की भावना स्वानुभूति का आलम्बन लेकर अन्तर्जगत का विश्लेषण करने लगी । व्यक्ति के सुख-दुःखात्मक अनुभूति को कविता की प्रधान वृत्ति समझकर वे सूक्ष्म की अभिव्यक्ति करने लगे । बहिर्जगत की स्थूल अभिव्यक्ति आसान कार्य है परन्तु अन्तः जगत की सूक्ष्म अभिव्यक्ति उतना सुगम भी नहीं होती । परन्तु इस आत्मानुभूति की सूक्ष्म अभिव्यक्ति से जो आत्मतोष उन्हें मिला है वह अनिर्वचनीय भी । अतः अपरिहार्य रूप से कवि ने नूतन अभिव्यंजन शैली को अपनाया । अर्थात डा० नगेन्द्र के शब्दों में 'कविता के स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह[2]' आवश्यक सा लगा । दूसरी बात यह थी कि चिरन्तन रूप के सामने अपना हृदय खोलकर दिखाने से उन्हें उन्मेष तथा उत्साह प्राप्त होता था और यह अनुभूति सुधीन्द्र के शब्दों में ऐसी है 'बाह्य जगत को अपने अन्तर्नयनों से

1- हिन्दी कविता में युगान्तर - डा० सुधीन्द्र - पृ० 258.
2- आधुनिक हिन्दी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ - डा० नगेन्द्र - पृ० 9.

देखते हुए जो छाया या प्रतिबिंब कवि के हृदय दर्पण में पड़ता है कवि उसे जब कविताओं में लाना चाहता है तो उसका आनंद कभी-कभी गूंगे के गुड़ की भाँति अकथ्य ही जाता है। अतः इस दृष्टि से अनुभूति की अभिव्यंजना का नूतन विधान जन्म लेता है। इस नूतन विधान को छायावाद की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। उस समय के कुछ आलोचक ऐसे थे जिन्होंने इस नूतन काव्य विधा की कटु आलोचना की और वे छायावाद का अर्थ भी अस्पष्ट या असार मानने के पक्ष में थे। बाद में ये भ्रान्तियाँ और धारणाएं निर्मूल सिद्ध हुईं और आज छायावादी काव्य को हिन्दी काव्य धारा के अन्तर्गत प्रतिष्ठित किया गया है।

हिन्दी साहित्य में इस प्रकार की कविता का जन्म बीसवीं शताब्दी के आरंभ में ही हुआ जिसके लिए हिन्दी के तरुण कवियों को अंग्रेजी रोमान्टिक कविता तथा कवीन्द्र रवीन्द्र की कविता से प्रेरणा मिली। परन्तु शुक्ल जी ने इसे कोरा अनुकरण मात्र कहकर इसकी उपेक्षा की। उन्होंने लिखा है - छायावाद की कविता की पहली दौड़ तो बंगभाषा की रहस्यात्मक कविताओं के सजीले और कोमल मार्ग पर हुई। पर उन कविताओं की बहुत कुछ गति विधि अंग्रेजी वाक्य खण्डों के अनुवाद द्वारा संघटित देख, अंग्रेजी काव्यों से परिचित हिन्दी कवि सीधे अंग्रेजी से ही तरह-तरह के लाक्षणिक प्रयोग लेकर उनके ज्यों के त्यों अनुवाद जगह जगह अपनी रचनाओं में जड़ने लगे x x x x उ, पर जिन अनेक योरोपीय वादों और प्रवादों का उल्लेख हुआ है उन सबका प्रभाव भी छायावाद कही जानेवाली कविताओं के स्वरूप पर कुछ न कुछ पड़ता रहा।[2] छायावादी कविता पर शुक्ल जी यह आक्षेप पूर्णतः संगत नहीं लगता। इसे रोमांटिक कविता का अन्धानुकरण कहना भ्रामक है। हिन्दी कविता में छायावाद की अवतारणा लगभग अंग्रेजी रोमांटिक काव्य के आगमन के एक शताब्दी बाद में हुई। विचारधाराओं में सा होने पर भी इन दोनों काव्य धाराओं की पृष्ठभूमि भिन्न-भिन्न है।

1- हिन्दी कविता में युगान्तर - डा० सुधीन्द्र - पृ० 270.
2- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आ० शुक्ल - पृ० 580.

छायावाद का विकास भारतीय जीवन दर्शन और जन-जीवन से घुल-मिल कर हुआ। रोमांटिक कविता के समान इसमें विद्रोह की भावना उतनी सशक्त रूप में नहीं हुई, इतना ही नहीं इसकी रचना भारतीय राष्ट्रीय-सामाजिक परिवेश के आधार पर हुई। अंग्रेजी के रोमांटिक की भांति छायावाद हमेशा कठोर वास्तविकता से पलायन कर सूक्ष्म सौन्दर्य सत्ता की ओर उन्मुख नहीं हुआ। यूरोप के समान भारत में इस काव्य-प्रवृत्ति को किसी विशेष आन्दोलन का रूप धारण करने की आवश्यकता न पड़ी। सचमुच इस काव्य प्रवृत्ति का बीज पूर्ववर्ती साहित्य संपदा में अंतर्भूत रहता था जिसका सहज स्वाभाविक विकास बाद में हुआ।

अन्त में इस बात से हम इनकार नहीं कर सकते कि छायावादी काव्य अंग्रेजी कवियों की काव्य चेतना से प्रभावित रहा। युद्धोत्तर काल में हिन्दी के कवियों ने यूरोपिय साहित्य का अध्ययन किया और केवल रोमांटिक काल के वर्डसवर्थ, कालरिज, कीट्स, बायरन आदि से ही नहीं, बाद के अंग्रेजी कवियों जैसे स्विनबर्न, ब्राउनिंग, आरनोल्ड, टामस हार्डी, वाल्ट व्हिटमान, कीट्स आदि से भी प्रभाव ग्रहण किया[1]। इसका कारण मूलतः यह सिद्ध होता है कि इन कवियों की स्वच्छन्द भावना हमारे अप्रवेता कवियों को प्रिय लगी। इसके सिवा शैली की स्वच्छन्दता से भी वे अत्याधिक आकृष्ट थे। अपने शासन की निष्ठुरता और अमानवीयता से परेशान होकर यूरोपीय कवि व्यक्ति स्वातंत्र्य एवं विचार स्वातंत्र्य के लिए किसी न किसी प्रकार जागृत थे। प्रायः समान परिस्थिति में गुजरनेवाले हमारे कवि का ध्यान उस भावना की ओर गया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। डा० नगेन्द्र के शब्दों में हम इस उक्ति को पुष्टि कर सकते हैं।- छायावाद युग के कवि एक ओर रवीन्द्र तथा अंग्रेजी कवियों की काव्य चेतना से प्रभावित थे, तो दूसरी ओर जनतंत्रानुमोदित व्यक्तिवाद से। यही कारण है कि वे इतनी शीघ्रता और सफलता से द्विवेदी युग की चेतना से विच्छिन्न होकर हिन्दी काव्यधारा को सर्वथा भिन्न दिशा में मोड़ सके। उस युग के काव्य में नई सौन्दर्य चेतना, नई प्रेम चेतना, और नई नैतिक चेतना है[2]। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने

1- छायावाद युग - शम्भूनाथ सिंह - पृ० 18.

2- आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ - डा० नगेन्द्र - पृ० 17.

छायावाद के विषय में महत्वपूर्ण विचार प्रकट किया है -- 'वास्तव में छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम था। यद्यपि उसमें नवीन शिक्षा के परिणाम होने के चिह्न स्पष्ट हैं तथापि वह केवल पाश्चात्य प्रभाव नहीं था कवियों की भीतरी व्याकुलता ने ही नवीन भाषा-शैली में अपने को अभिव्यक्त किया'[1]। छायावाद के विषय में निस्सन्देह कहा जा सकता है कि उस समय की देश काल गत परिस्थितियाँ उसकी उत्पत्ति और विकास में सहायक सिद्ध हुई थी। 'उसका अभ्युदय हिन्दी समाज और साहित्य की कुछ ऐतिहासिक आवश्यकताओं की पूर्ति के रूप में हुआ। सामाजिक रूढ़ियों और पराधीनता के बंधन में जकड़ी हुई व्यक्त चेतना मुक्ति की प्रबल कामना करने लगी थी। वैयक्तिक और राष्ट्रीय दोनों ही स्तरों पर स्वाधीन होने के लिए विद्रोह की प्रवृत्ति बलवती होती जा रही थी। छायावाद ने उसे पहचाना, ग्रहण किया और उसके स्वर में स्वर मिलाया'[2]। इन सब बाह्य परिस्थितियों में मिलकर हिन्दी काव्य में छायावाद का द्वीविर्भाव किया। वस्तुतः यह हिन्दी की अपनी रोमांटिक अथवा स्वच्छन्द काव्यधारा का ही विकसित अवस्था है, जिसका प्रथम चरण श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय प्रभृति कवियों की रचनाओं में प्रकट हुआ और दूसरे चरण में काव्य को प्रौढ़तम उत्कर्ष तक पहुँचाने का श्रेय प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा जैसे कृती कवियों को है'[3]।

इस प्रकरण में यह विचारणीय है कि छायावाद के प्रवर्तक का श्रेय किस को दिया जाय। छायावाद की मुख्य प्रवृत्ति केवल प्रकृति की उपासना अथवा उसके चिरन्तन रूप की पहचान मात्र है तो इसके प्रवर्तक का श्रेय श्रीधर पाठक को देना चाहिए। श्रीधर पाठक की रचनाओं में स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति अवश्य लक्षित होती है जो छायावादी काव्य की विशेषता है। यदि पंडित मुकुटधर पाण्डेय जी का नाम इस श्रेणी में रखा जा सकता है तो केवल इसलिए कि गीतांजलि की रहस्य भावना की झलक इनकी रचना में स्पष्टतः होती है। सच पूछा जाय तो छायावाद

1- हिन्दी साहित्य - डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी - पृ० 462.
2- छायावाद - डा० रवीन्द्र भ्रमर - पृ० 16.
3- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास - दशम भाग - स० नगेन्द्र - पृ० 122

न केवल प्रकृति प्रेम है न मात्र रहस्य भावना। वह इससे भी अधिक एक सौन्दर्य दृष्टि का उन्मेष है। रहस्योन्मुखता, प्रकृति-प्रेम आदि इसकी अभिव्यक्ति की विविध सरणियाँ हैं। वस्तुतः छायावाद के प्रवर्तक का श्रेय जयशंकर प्रसाद जी को है। इन्दु में प्रकाशित प्रसाद जी की कई प्रारंभिक कविताएँ छायावादी विशेषता से संपृक्त हैं। 'उनकी प्रारंभिक रचनाओं में एक नया तत्व दर्शन, सौन्दर्य के प्रति अद्भुत अनुराग तथा प्रेम के क्षेत्र में एक स्वच्छन्दता के दर्शन होते हैं। प्रकृति में जो सौन्दर्य है, वह प्रकृति की पृष्ठभूमि में स्थित अतीन्द्रिय सत्ता की झलक है, यह दृष्टि भी प्रारंभिक कविताओं में मिलती है। x x x x छायावाद में जिस सौन्दर्य की खोज हुई, उसकी ओर प्रसाद जी प्रारम्भ से ही आकर्षित थे'[1]। वस्तुतः प्रसाद जी को ही हम छायावाद का प्रवर्तक मान सकते हैं।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्याय में हम ने पंत काव्य के अध्ययन की पृष्ठभूमि के रूप में विभिन्न परिस्थितियों का परिवेक्षण किया। युग की राजनीतिक परिस्थिति ने पंत काव्य को अवश्य प्रेरित किया है यद्यपि पंत ने कभी राजनीति में सक्रिय भाग नहीं लिया था। युगीन राजनीति के लोकनायक महात्मा गांधी जी का पंत पर गहरा प्रभाव पड़ा है। उन्होंने गांधी जी की प्रशंसा में कविताएँ लिखी हैं। उसी प्रकार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आचार्य मार्क्स के प्रति पंत के मन में श्रद्धा रही है। उनकी कविता पर मार्क्सवादी चिन्तन धारा का प्रभाव है। युग की सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों से भी पंत अछूते नहीं रहे। सामाजिक सुधारवादी दृष्टि ने उन्हें कृषक और ग्राम्य जीवन की समस्याओं और खिन्न जनित करुण अवसाद के चित्रण की प्रेरणा दी। आलोच्य युग के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में पुनर्जन्म की भावना ने उनके काव्य को नवीन दिशा संकेत प्रदान किए। प्रस्तुत युग की महान विभूति महायोगी अरविंद की स्वतन्त्र चिन्तन धारा उनकी कविता को नूतन दिशा देने में उपयोगी सिद्ध हुई।

1- आधुनिक हिन्दी कविता - सिद्धान्त और समीक्षा - विश्वंभरनाथ उपाध्याय पृ० 175.

अध्याय - दो

सुमित्रानन्दन पन्त - जीवन और व्यक्तित्व

किसी भी कविता के विश्लेषण - मूल्यांकन के अवसर पर उस कवि के जीवन एवं व्यक्तित्व का मूल्यांकन भी विशेष महत्व का कार्य करता है। कविता का, कवि के जीवन के साथ अनिवार्य सम्बन्ध है। काव्य के केन्द्र में कवि व्यक्तित्व वर्तमान है। कविता कवि के अन्तर्जगत की अभिव्यक्ति है, जिसमें कवि का व्यक्तित्व किसी न किसी रूप से व्यंजित होता है। अतएव कविता के अध्ययन - मूल्यांकन के लिए कवि के जीवन - व्यक्तित्व का परिचय अनिवार्य ही है।

व्यक्तित्व व्यक्ति के आन्तरिक गुणों की बाह्य रचना है। व्यक्ति के बाहरी आचार व्यवहार से उसका आभ्यन्तर परिचय प्राप्त होता है। व्यक्ति की चारित्रिक प्रवृत्ति उसके विचार, भावना और क्रिया की स्थायी वृत्ति है। म्यूरहेड व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि वह व्यक्ति के गुण, रुचि के प्रकारों, अभिवृत्तियों व्यवहार क्षमताओं, योग्यताओं और प्रवणताओं का सबसे निराला संगठन है। अर्थात आन्तरिक तथा बाह्य व्यक्तित्व दोनों परस्पर सम्बन्धित है। व्यक्ति के बाहरी रूप - आचरण उसके आन्तरिक गुणों का उद्घाटन करता है।

व्यक्तित्व किस प्रकार निर्मित होता है? हम पन्त जी के व्यक्तित्व के बारे में यह कह सकते हैं कि उनका व्यक्तिगत जीवन अवश्य ही उनकी वंश परंपरा से परिचालित रहा है। परम्परा से प्राप्त संस्कार का प्रभाव उनके कवि व्यक्तित्व पर पड़ा है

1- द्रष्टव्य - निराला काव्य और व्यक्तित्व - डा0 धनंजय वर्मा - पृ0 40.

पन्त के व्यक्तित्व को रूपायित करने में उनकी परिस्थिति तथा शिक्षा दीक्षा का भी महत्त्व रहा है। व्यक्ति को समझने के पहले जीवनी का परिचय पाना है। अतएव आगे हम पन्त जी की जीवनी पर प्रकाश डालेंगे।

जन्म - परिवार

कवि सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म 20 मई सन 1900 में अल्मोड़ा जिले के कौसानी नामक एक गांव में एक पहाड़ी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। प्राकृतिक सुषमा से मंडित यह गांव अल्मोड़ा से बत्तीस मील उत्तर की ओर स्थित है। हिमालय की पर्वत श्रेणियां एक ओर स्थित है तो दूसरी ओर बड़े - बड़े देवदार और बांज के घने वनों की हरीतिमा शोभित है। बसंत ऋतु के समय में प्रकृति का यह आंगन अत्यन्त मोहक दिखायी पड़ता है। रंग - बिरंगे फूल, वन पक्षियों का कूजन, कल - कल बहते हुए पहाड़ी निर्झर आदि सहज ही भावुक मनों को मुग्ध कर देते है।

बसंत ऋतु में ही पन्त की मां ने बालक पन्त को जन्म दिया और छः घण्टे के बाद सदा के लिए आंखें मूंद ली। मां के प्रेम से बालक वंचित हो गया, उनका रुदन कण्ठ गाता है --

> मातृहीन, मन से एकाकी, सहज बाल्य था स्थिति से अवगत,
> स्नेहांचल से रहित, आत्मस्थित, धात्री पोषित, नव भाव रत।
> प्रकृति गोद में छिप, क्रीड़ा प्रिय, तृण तरु, सर, की बातें सुनता मन,
> विहगों के पंखों पर करता, पार नीलिमा के छाया वन। -1

पंडित गंगादत्त पन्त और सरस्वती के सबसे छोटे पुत्र है पन्त। उनके तीन भाई और चार बहनें थी। कौसानी में हत्थकोना नामक स्थान पर गंगादत्त पन्त का घर स्थित था। पिता चाय के कम्पनी के मानेजर थे और यह घर भी कम्पनी के स्वामियों का था। घर अत्यन्त आकर्षक स्थल पर स्थित था। चा

1- वाणी (आत्मिका) पन्त - पृ0 110

और प्रकृति - देवी अपना सुन्दर, आकर्षक रूप लिए नयनों को सदा के लिए मुग्ध करती हुई विराजमान है। एक ओर ऊँचे पर्वत शिखर शुभ्र रंग को बिखेर कर स्थित है तो दूसरी ओर नव - नव पल्लवों की हरीतिमा लिए सुन्दर घाटी दृश्यमान है। प्रकृति का सुषमा मंडित दृश्य सब कहीं विद्यमान है।

गंगादत्त पन्त अत्यन्त अतिथि - प्रेमी थे और इसीलिए प्रियजन दिन भर आते जाते रहते थे। घर के वातावरण में खूब चहल पहल थी।

माता के देहान्त होने पर पिता ने उचित पालन-पोषण के लिए पन्त को हरगिरि बाबा नामक गोस्वामी के हाथों में सौंप दिया। बाबा जी ने बालक का नामकरण किया गोसाईं दत्त। घर के सभी लोग इसलिए उन्हें 'गुसैं' या 'कमी सैं' कहकर पुकारते थे। बाबा जी ने शिशु के रक्षार्थ एक रुद्राक्ष भी बाँध दिया था। अल्मोड़ा आने पर उन्होंने रुद्राक्ष पहनना छोड़ दिया और स्वयं अपना नाम सुमित्रानन्दन रख लिया। इस नाम परिवर्तन के बारे में पन्त ने स्वयं लिखा है - मेरे बड़े भाई ने एक बार बचपन से कहा था कि बरेली कालेज में उनके किसी मित्र का नाम सुमित्रानन्दन था, जो उन्हें पत्र भी लिखा करते थे। उन्हीं के नाम से मैं ने अपना नाम रखा। पर मुझे इसका बिलकुल भी स्मरण नहीं है। मेरी माँ का नाम सरस्वती था, जिसे मैंने अपनी कल्पना में लपेटकर वाग्देवी का रूप दे दिया था। अपना नाम मैं कोसानी में भी माँ के नाम से रखना चाहता था, पर सरस्वतीनन्दन मुझे न जाने क्यों अच्छा नहीं लगता था। क्यों कि मैं घर में छोटा भाई था, इसलिए मेरे मन ने अपना नाम सुमित्रानन्दन रखकर सन्तोष प्रकट किया। लक्ष्मण जी के लिए राम से छोटे होने के कारण, बचपन में मेरी कुछ ऐसी धारणा थी कि वह बड़े ही सुन्दर और सुकुमार थे, उनका लालन-पालन बड़े प्यार से हुआ था। सबसे विचित्र बात यह थी कि तब मेरे मन में न जाने कैसे यह बात जम गई थी कि 'मैं सुकुमार नाथ वन योगू' लक्ष्मण जी ने कहा है। 'स्वर्णधूलि' में 'लक्ष्मण के प्रति' शीर्षक एक कविता है। बचपन में मैंने उनके साथ तादात्म्य कर लिया था। यह भी मेरी समझ में, मेरा अपने लिए सुमित्रानन्दन नाम चुनने का कारण रहा है।[1] परन्तु लगता है कि यह गोसाईं

1- साठ वर्ष एक रेखांकन - पन्त -पृ0 15-16.

दत्त नाम ही पन्त के लिए उपयुक्त है क्योंकि पन्त अपनी वीरता या पौरुष के लिए नहीं सौम्यता और शान्तता के लिए प्रसिद्ध है ।

वंश परंपरा के अनुसार कूर्मांचलीय ब्राह्मण विशेषतः पन्त और जोशी पन्द्रहवीं शती में कूर्मांचल से महाराष्ट्र आये थे । पन्त-वंश ऋग्वेदीय चितपावन शाखा के ब्राह्मण है । पन्त-वंश अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध था है । पन्त के दादा श्री नारायण पन्त माफीदार थे । संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित वे अपने मित्र श्री हरहर्क साथ पन्त हमेशा इस वाद - विवाद में पड़ जाते थे कि कौन अधिक विद्वान है । गंगादत्त जी भी विद्वता की प्रतिमूर्ति थे । इसके अतिरिक्त अंग्रेजी भी उन्हें ज्ञात थी । बातचीत में चाणक्य के सुभाषित उद्धृत करने में वे विशेष रुचि रखते थे । उन्नीसवी शती के 'गुमानी पन्त' कुमाऊँ के प्रख्यात कवियों में माने जाते थे । इस वंश परंपरा में अनेक शास्त्रज्ञ, विद्वान, सेनाध्यक्ष, ज्योतिषि वैद्य तथा कवि हुए हैं।[1] स्मरणीय है कि हमारे आलोच्य कवि ने भी इसी महा वंश में जन्म लिया है ।

बालक पन्त सबसे छोटे पुत्र होने के कारण सभी के आँखों का तारा थे । पिता ने पुत्र का लालन - पालन दादी और बुआ पर सौंप दिया । वे दोनों बच्चे को बहुत प्यार करते थे । बुआ बेटे का इतना ध्यान रखती थी कि उसका एकमात्र काम सबेरे से शाम तक उसे देखना, खिलाना, सुलाना, नहलाना था । दूसरे बच्चों के साथ खेलकर चोट खाने के भय से वह स्वयं उसके साथ खेलती थी ।

फूफाजी ने उन्हें संस्कृत की शिक्षा दी।अम्बादत्त जोशी ने पन्त को पारशियन पढ़ाई । अंग्रेजी की प्रारंभिक शिक्षा पिता से घर ही में मिली । बड़े भाई हरदत्त जी भी साहित्य के बड़े अनुरागी थे । घर में बचपन से ही संगीत का अभ्यास भी किया था। इस प्रकार एक कवि बनने का सबसे अनुकूल वातावरण घर में ही था ।

कौसानी की प्रकृति बचपन में भी उनके चरित्र निर्माण करती रही । उस समय वे लड़कों के साथ प्रकृति की गोद में क्रीड़ा करने के अतिरिक्त वहाँ बैठकर तृण - का

1- सुमित्रानन्दन पन्त - जीवन और साहित्य - शांति जोशी - पृ० 57.

की बातें सुनने की इच्छा रखते थे। प्रकृति की सुन्दर चीजों को विनष्ट करने वाले अपने साथियों पर चीख उठते थे। प्रकृति की संपत्ति उनकी ही संपत्ति थी, एवं वे उसे अपनाते थे। इसलिए प्रकृति की किसी भी चीज का नाश वे कैसे सह सकते थ पन्त केवल अपने भाइयों के साथ ही खेला करते थे। पन्त के बड़े भाई को पेड़ों काटने में शौक था और पन्त को पेड़ों सिंचवाने में बड़ा आनन्द आता था। इ प्रकार भाई बहनों के साथ घर का मनोरंजक जीवन और प्रकृति का सुन्दर अंचलउन्हें पाठ्य पुस्तकों से दूर ले जाते थे। स्कूल इसलिए उन्हें प्रिय लगा कि वहां उन्हें रमणी दृश्य देखने का सुअवसर प्राप्त होता था। हरे - भरे खेतों और उसके बीच का नीला ताल अत्यन्त मनोमुग्धकारी लगता था। बीच की छुट्टियों में पन्त एकांत में बैठकर यह दृश्य देखने के लिए बाहर जाते थे।

इस प्रकार बालक पन्त का मन किसी न किसी प्रकार कौसानी की प्रकृति-सुषमा में अत्यधिक रमता था। प्रकृति की गोद में बैठ कर एक अजब सी खुशी उनकी नस-नस में दौड़ने लगती थी। [1] प्रकृति के ऐसे मनोरम वातावरण में मेरा मन उपने आप उस निर्निमेष नैसर्गिक शोभा में तन्मय रहना सीखा कर एकांत प्रिय तथा आत्मस्थ हो गया।मेरे प्रबुद्ध होने के पहले ही प्राकृतिक सौन्दर्य की मौन रहस्य भरी अनेकानेक मोहक तहें अनजाने ही एक के ऊपर एक, अपने अनन्य वैचित्र्य में मेरे मन के भीतर जमा होती गईं। प्रकृति प्रतिक्षण अपने सुन्दर रूप दिखाने में दत्तचित्त रही तो पन्त भी उसमें तल्लीन हो गये।

पन्त जब आठ वर्ष के थे तो बुआ अपने ससुराल काशीपुर चली गयी। देवर के लड़के लड़कियों को ~~जिन्हें दत्तक ले लिया था~~, समुचित शिक्षा देने के लिए उनका काशी जाना अनिवार्य था। बुआ के अभाव में पन्त अत्यन्त दुःखी हुए और पन्त के लिए प्रकृति ही एकमात्र संतोष का कारण बनी रही। प्रकृति ही उसके लिए मां, सहचरी सब कुछ थी,, इसलिए प्रकृति के निकट संपर्क में रहने का यह और भी एक कारण रहा। अनजाने ही उनके हृदय में विविध भावों का जन्म हुआ, साहित्य व अनुराग बढ़ता गया और साथ ही वे एकान्त जीवी बन गये। कौसानी के दृश्य उनके

1- साठ वर्ष एक रेखांकन - पन्त -पृ0 12.

स्मृति पटल में अंकित हो गये। इस प्रकार - 'हिमगिरि प्रांतर था दिग् हर्षित, प्रकृति क्रोड़ शोभा कल्पित, गंध गुंथी रेशमी वायु थी, मुक्त नील गिरि पंखों पर हिलोल। आरोहों हिमगिरि चरणों पर रहा ग्राम वह मरकत मणि कण, श्रद्धानत - आरोहण के प्रति मुग्ध प्रकृति का आत्म समर्पण' ।-1

कौसानी के दृश्य कवि के भावुक मन को अजीब विस्मय से भर देते थे।

'ऊर्ध्व हिमालय सन्निर्भर की पावन छाया में
नैसर्गिक श्री सुन्दरता में पले हृदय मन
विस्मित रहते देख योग की ध्यान मूर्ति को,
नव किशोर मन की अबोधता से अतिरंजित। -2

'कौसानी की छंद लयपूर्ण प्रकृति, संगीतमय सरल वातावरण, साहित्यिक प्रेम और श्रीपूर्ण जीवन ने पन्त के एकाग्र अप्रस्फुटित कवि मन को सृजन, ताल, लय तथा ऊर्ध्व - संचरण की ओर सहज ही प्रेरित कर उनके भीतर संगीत, लयपूर्ण भाषा और भावों को जन्म दिया। सुन्दर निसर्ग ने अपने स्पर्शों से अनजाने ही उनके हृदय को संस्कृत कर दिया जिससे उनका अंतर्जात कवि प्रस्फुटित और पल्लवित हो गया। -3

साहित्य के अनुरागी उसके बड़े भाई के प्रोत्साहन एवं उत्तेजना पाकर सात आठ वर्ष में ही पन्त ने कुछ तुकबंदी की थी। प्रिय पत्नी के मनोरंजन के लिए मेघ शकुन्तला आदि का काव्य- पाठ बड़े भाई करते थे जिसे सुनकर बालक कवि का मन एकदम जाग्रत हो उठता था।

प्राइमेरी कक्षा के बाद आगे की पढ़ाई के लिए पन्त को अल्मोड़ा भेजा गया कौसानी से बिछुड़ रहने के कारण एक वर्ष तक वह बड़ा उदास रहा और उनके प्राण 'बालू में मछली की तरह छटपटाते रहते थे'। पन्त धीरे- धीरे अल्मोड़ा के नागरिक वातावरण से घुल- मिल जाने लगे और नगर में सुख वैभव का जीवन बित

1- वाणी - पृ0 108.
2- गंधवीथी - पन्त - पृ0 50.

3- सु0 प0 जीवन और साहित्य - शांति जोशी - पृ0 56.

लगे। यहाँ पन्त के मानसिक-सांस्कृतिक विकास के लिए उपयुक्त वातावरण उपलब्ध था। कवि के सुसंस्कृत, सुखद काव्य व्यक्तित्व की नींव डालने का महत्त्वपूर्ण कार्य अल्मोड़ा के निवास ने ही किया था।

छठी कक्षा में पढ़ते समय पन्त को पुस्तकालय में नेपोलियन का एक चित्र देखने का अवसर मिला और उन्होंने स्वयं उस नेता के समान घुँघराले बाल रखने का निश्चय किया। 'कवि-कर्म को अपनाने का निर्णय सम्भवतः मैंने सातवीं आठवीं कक्षा में लिया और कवि के साथ केशों का सम्बन्ध मैं पीछे टैगोर के चित्र को देखकर जोड़ सका'। - 1

पंत स्वयं अपने को सुन्दर रेशमी मखमली वस्त्र पहनने की आदत रखते थे। साधुओं के प्रति श्रद्धा व आकर्षण होने पर भी, गेरुवे वस्त्र पन्त को अप्रिय लगा था। अल्मोड़ा के निवास-काल में अनेक साधु सन्तों तथा योगियों से मिलने का अवसर उन्हें मिला। एक बार एक लम्बे घुँघराले केशों वाले साधु के सुन्दर रूप, मधुर स्वभाव तथा विद्वत्तापूर्ण भाषणों से आकर्षित होकर स्कूल की पढ़ाई छोड़कर उसके साथ जाने को तैयार हो गये थे। इसे खतरनाक समझकर भाई ने किसी न किसी प्रकार साधु को दूर चले जाने को मजबूर किया। साधु के चले जाने के कारण पन्त बहुत दिनों तक दुःखी रहे।

अल्मोड़ा में श्री गोविन्दवल्लभ पन्त, श्यामाचरण दत्त, इलाचन्द्र जोशी जैसे साहित्यिक बन्धुओं के परिचय में आने के कारण पन्त की साहित्यिक आस्था तथा अनुराग में वृद्धि होने लगी। इसके अतिरिक्त अल्मोड़ा में पधारे अनेक विद्वानों, महानुभावों तथा प्रचारकों के भाषणों ने उन्हें और भी प्रबुद्ध बना दिया। अल्मोड़ा के नवयुवकों में देशभक्ति जगाने, मातृभाषा हिन्दी से प्रेम करने तथा ब्रह्मचर्य और वैदिक धर्म के प्रति आस्था बढ़ाने में इन भाषणों से खूब सहायता मिली। सत्यदेव जी के प्रयत्न से जो सार्वजनिक पुस्तकालय खुला वहाँ अनेक प्रमुख ग्रन्थ तथा पत्र पत्रिकाएँ संग्रहीत थीं, नवयुवकों का ध्यान इस पुस्तकालय की ओर आकृष्ट हुआ। पन्त की एकांत प्रियता भी इन पुस्तकों के

1- साठ वर्ष एक रेखांकन - पन्त - पृ0 17.

अध्ययन के लिए सहायक रही । 'स्वभावतः अंतर्मुखी होने तथा समवयस्कों के संपर्क में न आने एवं उनके साथ खेल कूद और लड़कपन से भरी स्कूली बातों में भाग लेने के उत्साह-शैथिल्य के कारण वाणी का मौन कक्ष पन्त का निवास तथा साहित्य जीवन और मन का अवलंब हो गया' । -1

कौसानी के वातावरण ने पन्त जी में कवि प्रतिभा को अंकुरित किया । और अल्मोड़ा में आकर वह पल्लवित - पुष्पित होने लगा । यहाँ के पुस्तकालय में धार्मिक ग्रंथों का भी खूब बोल-बाला था और बचपन में भी पन्त उसे पढ़ने का उत्साह दिखाते थे । स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ आदि मनीषियों के प्रत्यक्ष दर्शन का सौभाग्य तो प्राप्त नहीं हुआ था, परन्तु उनकी दार्शनिक चेतना से वे प्रभावित हुए । भारत के पुनर्जागरण के युग में इन मनीषियों का उपदेश और वचन अवश्य ही ग्रहण करने योग्य था, उन्होंने समझा कि --

रामकृष्ण औ' रामतीर्थ के
वचनामृत से थी भू प्लावित,
पुनर्जागरण का युग था वह
गरज रहे थे अंतर उर्वर
दीप्त विवेकानन्द वचन धन । -2

अल्मोड़ा के निवास स्थान देवी भवन में पन्त के भाई का एक पुस्तकालय था जो बाद में 'नन्दन लाइब्रेरी' बन गयी । पन्त का ध्यान केवल लाइब्रेरी में बैठकर अध्ययन करने में ही रहा, खेल- कूद वगैरह उन्होंने छोड़ ही दिया । इस समय उन्होंने रीतिकालीन तथा द्विवेदी युगीन काव्य का विशेष अध्ययन किया ।

छठी कक्षा में पढ़ते समय पन्त जाड़े की छुट्टियों में पिता जी के साथ नैनिताल गये थे । दुर्गादेवी की मन्दिर तथा आसपास की रम्य स्थली ने 'हार' नामक 'खिलौना' उपन्यास लिखने का उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत किया । इसका प्रकाशन 1960 में कवि की षष्टिपूर्ति के अवसर पर ही हुआ । हार की कथा का आधार स्त्री - पुरुष के निःसंग प्रेम होने पर भी बालक उपन्यासकार ने विश्व प्रेम के स्वरूप का दिग्दर्शन

1- सु0 पन्त जीवन और साहित्य - शांति जोशी - पृ0 84.

2- वाणी - आत्मिका - पृ0 114-115.

कथा है। उपन्यास की गरिमा निःसंदेह प्रशंसनीय है। पन्त का सहज स्वाभाव व्यक्तित्व का प्रस्फुटन, उनकी शिष्टता और संस्कृति का स्वर इसी दुःख भरे प्रयास में ध्वनित है। 'हार' में अभिव्यंजित पन्त की मनोदृष्टि का विकास उनकी परवर्ती काव्य-कृतियों में स्पष्ट लक्षित होता है। 'हार' में शिव-सुन्दर से भीगी हुई मानव-कल्याण की जिस कथा को पन्त ने अपनी बाल लेखनी से गूंथा है वही कथा अपने सत्यान्वेषी, दृढ़, सारगर्भित तथा अधिक स्पष्ट, संतुलित और विकसित रूप में उनकी विभिन्न रचनाओं में विस्तार पाकर भागवत-प्रेम एवं मानव प्रेम के प्रकाश में विहँस उठती है।-1

'हार' की भाषा संस्कृत-निष्ठ होने के कारण अत्यन्त क्लिष्ट लगती है। बाल सहज असावधानी, उदासीनता तथा भूलें हार में अवश्य लक्षित होती है। 'हार' को कभी भी छपवाने की इच्छा पन्त में नहीं रही थी, परन्तु श्री रामचन्द्र टण्डन जी ने कवि की षष्टिपूर्ति के उपलक्ष्य में हार को प्रकाशि करा दिया।

सन् 1918 में कालेजी-शिक्षा प्राप्त करने के लिए भाई देवीदत्त बनारस गए तो पन्त को भी उनके साथ भेज दिया गया। दोनों भाई अपने बहनोई श्री शुकदेव पाँडे जी के साथ रहे। यहाँ जयनारायण हाईस्कूल में दसवीं कक्षा में पन्त की भरती हुई। पढ़ाई पर ध्यान रखने की अपेक्षा पन्त ने प्रसिद्ध साहित्यिक कृतियों के अध्ययन के लिए जिज्ञासा प्रकट की। उन्हें श्रीमती नायडू की प्रकृति सम्बन्धी कविताओं को कण्ठस्थ करने और रीतिकालीन कवितायें पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ।

यहाँ के निवासकाल में कवीन्द्र रवीन्द्र के दर्शन का सौभाग्य भी उन्हें प्राप्त हुआ। प्रायः एक घण्टे भर 'शारदोत्सव' नाटक का अंग्रेजी अनुवाद अभिनयपू सुनने का अवसर भी मिला। पंत के जीवन में यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। उनके मन में यह धारणा उठी कि विश्व में कवि को इतनी महत्ता तथा सम्मान

1- सु0 पन्त - जीवन और साहित्य - शांति जोशी - पृ0 111.

मिलेगा तो वे भी कवि कर्म का वरण करेंगे । आत्म गौरव की जीवंत मूर्ति कवीन्द्र की प्रसन्न मुद्रा ने पंत में कवि कर्म के प्रति महत्व धारणा एवं गंभीर आस्था उपजा दी । x x x x उनके स्वभाव ने जिस कर्म को सहज ही स्वेच्छा से वरण कर लिया था वह आज एक मूर्त अवलंब पा गया ।"-1 पंत की अनुभूति अब भावनालोक में पंख लेकर उड़ने का प्रयत्न कर रही थी । छत के एकांत कमरे में रह कर अनेक भावनाएं आप्त करने तथा काल्पनिक स्वप्न भूमि में विचरण करने का अवसर उन्हें प्राप्त हुआ । वहाँ रह कर कवि ने अपनी किशोर क्षमता के अनुरूप 'प्रथम रश्मि' तथा 'बालापन' को वाणी दे दी । सन् 1927 में प्रकाशित 'वीणा' की कतिपय कविताएं उन्होंने इसी बीच लिखीं ।

पंत को बनारस में कई संस्कृत प्रेमियों का परिचय प्राप्त हुआ था , इससे पन्त का संस्कृत ज्ञान भी अत्यधिक विकसित हुआ । कालिदास की रचनाओं का पठन और उनकी वाणी का रसास्वादन पन्त के लिये अधिक प्रिय लगा और उनपर कालिदास की सौन्दर्य दृष्टि का विशेष प्रभाव पड़ा है ।

पंत की कालेजी शिक्षा प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में प्रारंभ हुई । वहाँ वे इन्टर के क्लास में भर्ती हो गये । हिन्दू बोर्डिंग हाउस में रहने के कारण डा. धीरेन्द्र वर्मा, डा. बाबूराम सक्सेना, रघुपति सहाय फिराक, रामचन्द्र टंडन परशुराम चतुर्वेदी आदि के संग रहने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ ।

सन् 1921 से प्रो0 शिवाधार पाण्डेय के प्रोत्साहन से पंत ने अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया । कवि कर्म को जीवन की साधना मान कर चलने को वे उद्यत हुए । उनका आलोचनात्मक ज्ञान तथा काव्यकला संबन्धी दृष्टिकोण में विकास होने लगा। पन्त उन्नीसवीं शती के अंग्रेजी कवियों की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुये । "कीट्स के शिल्प-वैचित्र्य, शैली की सशक्त कल्पना, वर्ड्सवर्थ के प्रांजल प्रकृति -प्रेम, कालिरिज की असाधारणता तथा टेनिसन के ध्वनिबोध ने मेरे कविता सम्बन्धी रूप विधान के ज्ञान को अधिक पुष्ट, व्यापक तथा सूक्ष्म बनाया । इन कवियों की विशेषताओं को हिन्दी काव्य में उतारने के लिये मेरा बालक कलाकार भीतर ही भीतर प्रयत्न करता रहा ।"-2 कवि की यह

1- वही — वही -पृ0 116 सु. पंत - जीवन और साहित्य - शान्ति जोशी

2- साठ वर्ष एक रेखांकन-पन्त पृ. 33

स्वीकारोक्ति सही है । क्योंकि उनकी रचनाओं में उपर्युक्त कवियों का व्यापक प्रभाव लक्षित होता है ।

पन्त की कालेजी शिक्षा अधूरी रही । सन उन्नीस सौ इक्कीस में गांधी जी प्रमुख राजनीतिक नेताओं के साथ प्रयाग आये । उन्होंने कालेज के युवकों को क्लास का बहिष्कार करने का उपदेश दिया और असहयोग आन्दोलन में भाग लेने का आदेश दिया । राजनीति में उनकी अभिरुचि नहीं थी। फिर भी वे उस महान व्यक्तित्व - गांधी जी - के प्रति श्रद्धा तथा भक्ति प्रकट किये बिना न रह सके प्रयाग के पुरुषोत्तम टण्डन पार्क के मंच पर महात्मा जी को देखकर उनका मन उत्साह तथा संतोष से भर गया । 'जिस भव्य आकृति को सामने उच्च मंच पर पर बैठे हुए देखा उससे मेरे मन में एक अज्ञात प्रकार का संतोष प्रवाहित हुआ । जैसे अपने देश के किसी चिर परिचित सत्य को या प्राचीन कथाओं में वर्णित उदात्त जीवन आदर्शों को, आँखों, मूर्तिमान रूप में, अपने सामने, शांत मौन एकाग्र भाव में प्रतिष्ठित देखा रही हों । स्वच्छ खादी वेश से विमण्डित एक दुबली पतली दीर्घ, ताम्रवर्ण तपःक्लिष्ट मूर्ति - जैसे शरद ऋतु के शुभ्र मेघों से घिरा हुआ युग संध्या का स्वर्णिम सूर्य - बिम्ब - था उन समस्त दृष्टियों और हृदय की भावनाओं का लक्ष्य बन गए थे । इस प्रकार पन्त ने महात्मा गांधी के प्रथम दर्शन से ही उनके आदर्शों के अनुयायी बनने का निश्चय किया । क्लास के बहिष्कार करनेवाले अनेक छात्रों में बाद में राजनीतिक संघर्षों से अरुचि होने लगी । कुछ छात्र ऐसे भी थे जिन्होंने घर वालों के भय से बाद में इस क्षेत्र से विदा ली । पन्त पन्त जैसे आदर्श प्रेमी पुनः कालेज जाना उचित नहीं समझते थे । इसलिए एक दो सप्ताह तक वे 'हिन्दुस्तान' नामक दैनिक पत्र की हस्तलिखित प्रतियाँ तैयार करने के लिए जाते रहे । पन्त के लिये यह बिलकुल असह्य लगा कि देश - सेवा के लिए पिकेटिंग करें या जेल जायें । इसलिए उन्होंने कवि कर्म के माध्यम से देश सेवा करने का निश्चय किया ।

पन्त ने इस प्रकार जीवन से विमुख रहकर एकांत कोने में रहना और साहित्य का सृजन करना चाहा । अपने में आत्मकेन्द्रित या आत्मस्थ रहना पंत का स्वभाव जैसा

1- शिल्प और दर्शन - पन्त - पृ0 338.

है । इस जीवन काल में पन्त ने साधना पर अडिग रहने की प्रबल इच्छा प्रकट की । जीवन से विमुखता कवि की पलायन वृत्ति को प्रकट नहीं करती । वह विश्वमंगल तथा विश्व कल्याण के लिए अपने को अर्पित करने की इच्छा मात्र थी । उन्हें चिन्तन और मनन के लिए सौंदर्य रहित जीवन की आवश्यकता अधिक जाँचने लगी । इसी लिए वे तन से विरागी होने पर भी मन से सदैव कर्तव्य निरत और जाग्रत ही रहा करते थे । वैयक्तिक मुक्ति से पन्त का मतलब असामाजिकता नहीं है । उनकी निर्मल दृष्टि ने उनके अन्तः मन को ज्योतित किया । उन्होंने सत्य को समझने, जीवन को शिवमय देखने की आकांक्षा प्रकट की । पन्त के चिन्तनशील मानस ने समाज के भीतर रहकर ही निष्पक्ष एवं तटस्थ चिंतन करना अपने लिए श्रेयस्कर समझा 'मुझ जैसे व्यक्ति के लिए जीवन के तथा कथित यथार्थों को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना कठिन हो जाता है । मेरी आँखों के सामने जीवन का एक विशिष्ट विधान, एक पूर्णतम मूर्ति रहती है । मेरा मन मानव -, जीवन का उद्देश्य जानना चाहता है, वह उसको तह तक पैठकर उसे नये रूप में सजोना चाहता है और ध्येय की खोज में अनेक प्रकार के प्रश्नों, समस्याओं तथा कार्य-कारण - भावों की गुत्थियों में उलझा रहता है । जीवन के यथार्थ को अपने विश्वासों के अनुकूल बनाने के बदले उसके सामने मूक भाव से मस्तक नवाने की नीति को वह किसी तरह अंगीकार नहीं करना चाहता । वह अपने व्यक्तिगत सुख दुःख की भावनाओं में आत्म - संयम तथा साधना द्वारा संतुलन स्थापित कर सामाजिक यथार्थ को आदर्श की ओर ले जाने में विश्वास करता है । इसलिए यदि वह यथार्थ की तत्कालिक कुरूपता को उतना महत्व न देकर, उससे आँखें हटाकर, तथा कथित स्वप्न - जगत में उसके आदर्श रूप को निरूपित करने में व्यस्त रहता है, तो वह निष्क्रिय या आलसी जीवन नहीं व्यतीत करता । -।

गंगादत्त पन्त को अपने बेटे के कार्यों पर असंतोष हुआ । उनके मन में निराशा होने लगी कि पुत्र अपने अमूल्य जीवन को नष्ट कर रहा है । घरवाले सभी उनकी इस स्थिति पर असंतुष्ट थे । पिता पुत्र को जाँचने के लिए एक प्रसिद्ध पंडित के पास गये । उनके अनुसार पन्त पूर्वजन्म में मन्दिर के पूजारी थे और भगवान

।- शिल्प और दर्शन - पन्त - पृ० 190.

के अनन्य भक्त और साधक । जीवन की संकटों से मुक्ति पाने के इच्छुक वह अपने [illegible]योग में स्थित भी थे । मुक्ति के निकट वह पहुँच ही रहा था कि पूजार्थ आयी हुई स्त्री को देखकर विचलित हो गया । उस स्त्री का अभिशाप था कि वह अगले जन्म में भी स्त्री से वंचित हो जाएगा ।[1]

बेटे को गृहस्थ बनाने का सारा श्रम विफल हो गया । सन् उन्नीस सौ छब्बीस में पन्त के मंझले भाई रघुवरदत्त की मृत्यु हो गयी । 1928 में पिता भी चल बसे । इस प्रकार पूरे परिवार में असंतोष तथा अवसाद छा गया । आर्थिक स्थिति भी बिगड़ गयी। इस प्रकार की विकट पारिवारिक स्थिति में वे कैसे विवाह के बारे में सोचें । पन्त अपने एकाकी जीवन बिताने का उचित अवसर पाकर अपनी साधना में अडिग रह गये । आंतरिक साधना ही यथार्थ को समझने का एक मात्र साधन बन गयी ।

पिता की मृत्यु के साथ ही साथ पन्त ने जीवन संघर्ष के निर्मम क्षेत्र में प्रवेश किया था । परिवार से सम्बन्ध एक प्रकार से छूट ही गया । अपना कोई संबल या सहारा न पाकर उनका रिक्त मन सचमुच उद्विग्न रहा । कवि का अनुभव था- 'यह बड़ी विचित्र बात है कि परिवार के लोगों से - विशेषकर अपने भाइयों से - मुझे अपने जीवन में किसी प्रकार की भी सहायता, सहानुभूति या प्रोत्साहन नहीं मिला । --------- उनका मनोभाव इतना निर्मम तथा ममताहीन रहा कि उन्होंने दूर से भी मेरी देख- रेख की हो या मेरे विकास पर प्रच्छन्न दृष्टि ही रखी हो, ऐसा मुझे नहीं प्रतीत हुआ । घर की ओर से तटस्थता के इस वृहत् निर्मम शून्य में मुझे अपने जीवन तथा कवि बनने की महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए स्वयं ही कठिन संघर्ष करना पड़ा[2] ।' एक ओर उलझी हुई मानसिक स्थिति तो दूसरी ओर आर्थिक संकट का विकट नर्तन, दोनों के बीच यद्यपि उनका मन शांत अनुभव- करता था फिर भी उसमें एक गहन नैराश्य की छाया पड़ी । पन्त अपने को अभागा समझते थे । काफी चिन्तन मनन के बाद उन्होंने यह तथ्य स्वीकार किया कि दुःख जीवन की एक अनिवार्यता है और सुख- दुःख के समन्वय में ही जीवन

1- सु० प० जीवन और साहित्य - शांति जोशी - पृ० 165.

2- साठ वर्ष एक रेखांकन - पन्त - पृ० 37.

की पूर्णता है। दुःख की भाड़ में तप - तप कर मानव मन पवित्र तथा उज्वल बनता है। पन्त ने दुःख को एक अमोघ वरदान माना।

इन विकट परिस्थितियों के बीच में पन्त जी को मानसिक शांति बनाये रखने के लिए अथक परिश्रम करना पड़ा। चर्च लेन में इंडियन प्रेस के निकट एक भवन (आनन्द - भवन) में रहते समय प्रेस के अनुवाद कार्यों में वे व्यस्त रहे। साथ ही उनको कालिदास, थोरो, टालस्टाय आदि को पढ़ने एवं समझने का अवसर प्राप्त हुआ। इस समय पन्त जी ने शायर, असगर गोंडवी की सहायता से 'रुबाइयात उमर खैयाम' का अनुवाद किया। प्रेस के निकट ही श्री अम्बादत्त जोशी का घर था वहाँ वे दो तीन वर्ष रहे। इस समय पन्त जी का स्वास्थ्य भी बिगड़ गया। लू का निशान था और डाक्टर के परामर्श के अनुसार उन्हें पूर्ण विश्राम भी लेना पड़ा। डाक्टर ने चेतावनी दी थी कि असावधानी से यक्ष्मा हो जाने की संभावना है। अतएव पन्त, डा० जोशी के यहाँ पूर्ण स्वस्थ होने तक रहकर, बाद में बिजनौर में अपनी बहिन के पास चले गये। उस समय शांतिनिकेतन जाने और गुरु रवीन्द्रनाथ के दर्शन करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। रवीन्द्र ने पन्त को कविताओं की प्रशंसा भी की। गुरुदेव का सुखाद आशीर्वाद पाकर ही वे वापस लौटे। इसी बीच हजारीप्रसाद द्विवेदी से भी उनकी भेंट हुई।

बाद में पन्त जी एक वर्ष तक अल्मोड़ा रहे। वहाँ का निवास उन्हें नीरस ही लगने लगा था। पढ़ने और लिखने के अतिरिक्त वे कुछ भी अनिवार्य नहीं समझते थे। चिंतन शील पन्त अपने मानसिक भावों के प्रति तटस्थ रहते थे। अतएव जीवन में निराशा छा जाने के बदले आशा की किरणें फैलने लगीं। उन्हें सुख - दुख की आँख मिचौनी खेल जीवन में अनिवार्य सा लगने लगा।

कालाकांकर का निवास :

सन् 1931 में पन्त लखनऊ में बड़े भाई हरदत्त जी के घर पहुँचे और वहाँ कुँवर सुरेशसिंह से उनकी भेंट हुई। उन्होंने कालाकांकर आने का निमंत्रण

दिया। कालाकांकर के वातावरण ने पन्त को बहुत ही आकर्षित कर दिया। कालाकांकर के संस्मरण पन्त ने इस प्रकार छंदोबद्ध किया है -- गंगातट था, श्यामल वन थे, तरु प्राणों में भरे मर्मर जल कल कल, खग कलरव करते, प्रकृति नीड़ था जनपद सुन्दर। - ।

कालाकांकर में उन्होंने 'नक्षत्र' नामक एक छोटी सी कॉटेज रहने के लिए चुनली। यह छोटा सा बंगला पलाशवन के बीच एक टीले पर बना हुआ था। वहाँ का वातावरण उनके लिए अनुभूति तथा भावना प्रदान करने लायक था। कुंवर सुरेशसिंह और पत्नी प्रकाशवती के स्नेह और ममता में उन्होंने अपने दुखों को भुला दिया। पारिवारिक संरक्षण से वंचित होने के कारण पन्त के मन में जो कुण्ठा की भावना थी वहाँ आकर मिट गयी थी। सुरेशसिंह का परिवार उनका ही परिवार था। सादगी का जीवन ही उन्होंने स्वीकार किया था। बचपन में कपड़े - वस्त्र पर अगाध ध्यान देनेवाला पन्त अब इस पर पैसा खर्च करना बुरा मानते है। 'नक्षत्र' में नौकरों की सेवा रहने पर भी वे अपना काम स्वयं करते थे। जूता पालिश करना, कपड़ा धोना, बगीचे में पानी सींचना आदि वे अत्यन्त सन्तोष के साथ करते थे।

नक्षत्र के चारों ओर का एकांत, प्राकृतिक शोभा तथा प्रकृति के सच्चरों के सच्चास ने पन्त को एक आत्मीय जीवन प्रदान कर दिया। कॉटेज के अन्दर गंगा की जलधारा, बड़े - बड़े पेड़ों की हरीतिमा इसके बीच विविध प्रकार के पक्षियों व चहचहाहट ये सब प्रकृति प्रेमी पन्त को मोह लेने लायक थे। उनकी साहित्यिक अभिरुचि को पोषित करने में समर्थ साहित्यिक आयोजन हमेशा होते रहते थे। कभी - कभी प्रसिद्ध साहित्यकारों का सच्योग भी प्राप्त होता था निरालाजी, रामनरेश त्रिपाठी, सोहनलाल जी, नरेन्द्र शर्मा, रामचन्द्र टण्डन, सियारामशरण गुप्त, शान्तिप्रिय द्विवेदी, निर्मल कुमार आदि इन साहित्यिक

1- वही वही - पृ0 45.

सहयोगियों में प्रमुख थे । सज्जाद जहीर, मुल्कराज आनन्द, मि0 शेरनसन (शांति निकेतन में अंग्रजी के अध्यापक) आदि भी पन्त के पास आकर 'नक्षत्र' में रहे हैं ।

एक संस्मरणात्मक लेख में सुरेश सिंह जी ने लिखा है कि 'श्री पन्त जी के कारण मुझे भी अपने साहित्य के महारथियों के चरणों के निकट बैठकर कुछ सीखने का अवसर प्राप्त हो जाता था । कालाकांकर में पन्त जी हम लोगों से ऐसे मिल गए थे कि जैसे वे वहीं के निवासी हों, हम लोगों का कोई काम बिना उनके न होता था । गांव के प्रायः सभी उत्सव और त्योहारों में पन्त जी भाग लेते थे । होली पर हम लोग 'रसिक' नाम का एक हास्य रस का अखबार निकालते थे जिसमें गांव - भर के सब लोगों पर खूब छींटें रहते थे । शाम को फैन्सी - ड्रेस पार्टी होती थी जिसमें 'रसिक' पढ़ा जाता था । पन्त जी भी उसमें बड़े उत्साह से भाग लेते थे । एक बार निराला जी भी होली के दिन यहां आए हुए थे । वे भी पन्त जी के साथ फैन्सी ड्रेस में सम्मिलित हुए । वैसे आनन्द का समय था वह।[1] इस प्रकार पन्त और सुरेश सिंह की मित्रता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी । पन्त के व्यक्तित्व ने केवल सुरेश परिवार पर भी नहीं वहां के समस्त निवासियों पर भी अमिट प्रभाव अंकित कर दिया ।

अल्मोड़ा के डेढ़-दो वर्षों के बीच फिर और एक बार रवीन्द्रनाथ के निकट सम्पर्क में रहने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ । टैगोर स्वास्थ्य लाभ के लिए दो माह वहां ठहरे । उनका बंगला पन्त के भाई देवीदत्त के काटेज से बहुत ही निकट था । पन्त प्रायः रोज उनसे मिलने जाते थे । 'उर्वशी' नामक रचना भी पन्त को उन्होंने सुनायी । शांति निकेतन लौटते समय कवीन्द्र रानीखेत गये तो पन्त ने भी उनका साथ दिया था ।

सन् 1936 के जाड़ों में वे फिर से कालाकांकर चले गये । लगभग 40 तक वहीं रहे । इस जीवन काल के बारे में पन्त का कहना है -- "इस युग में ग्राम जीवन के वातावरण तथा रहन - सहन का निरीक्षण - परीक्षण मैं अच्छी तरह कर

1- पन्त - स्मृति - चित्र - कुंवर सुरेश सिंह - पृ0 27.

सका और अपने आर्थिक, राजनैतिक विचारों तथा सांस्कृतिक भावना और कवि कल्पना की पृष्ठभूमि में उसे ग्रहण कर उसके पुनर्निर्माण की संभावनाओं पर विचार करने लगा। पठन - पाठन, चिन्तन तथा सृजन को ही वे इस समय अधिक महत्व देते थे। मानव समाज की वास्तविकता को आत्मसात करना उन्हें आवश्यक सा लगा। गांवों की अत्यन्त दयनीय दुरवस्था के दृश्यों ने उनके मन पर कठोर आघात किया। ग्राम्य जीवन की वेदना से तादात्म्य प्राप्त करने का प्रयत्न उन्होंने किया। मध्ययुगीन रूढ़िप्रिय संस्कृति के प्रति घोर विरोध उनमें पैदा हुआ। गांधी जी की विचारधारा के प्रति वे पहले ही आकृष्ट हुए थे और अल्मोड़े में मार्क्स के सिद्धान्तों का अध्ययन भी हो चुका था। समाज की रूढ़िप्रियता का नाश और विश्व मानव के संकल्प के पूर्तीकरण के लिए गांधी जी के सिद्धान्त का सांस्कृतिक पक्ष और मार्क्सवाद के जनतंत्रवाद उन्हें अधिक वैज्ञानिक लगते थे। युगवाणी तथा ग्राम्या में पन्त की इन्हीं विचारधारों की अभिव्यक्ति हुई है।

कालाकांकर के इस द्वितीय प्रवास में उन्हें श्री बालकृष्णराव और रवीन्द्र देव से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला। दोनों पन्त की कविता के बड़े प्रेमी हो चुके थे। एक बार बालकृष्ण राव के पिता श्री - वाई चिन्तामणी जी ने पन्त के बाल के बारे में आक्षेप किया था और उसे काटने का अनुरोध भी किया था । परन्तु पन्त ने इस उपदेश को कोई महत्व दिया ही नहीं।

पत्रिका का संपादकत्व।

सन 1938 में पन्त 'रूपाभ' नामक मासिक पत्र के संपादक बने। इसका प्रकाशन 'प्रयाग' से होता था। नरेन्द्र शर्मा ने इसके सह संपादक बनने का आदेश स्वीकार किया। सामाजिक सांस्कृतिक चेतना को जगाने के उद्देश्य से ही इस पत्रिका का प्रकाशन

1- साठ वर्ष एक रेखांकन - पृ0 52

हुआ था । इसी बीच वे सर्वश्री रघुपति सहाय, यदुपति सहाय, अवधबिहारी लाल, भवानीशंकर, जगदीशचन्द्र माथुर, बच्चन जी, अज्ञेय जी तथा इलाचन्द्र जोशी के भी निकट संपर्क में आए । वे प्रायः प्रत्येक शाम को इन लेखकों से मिला करते थे और युगीन प्रवृत्तियों पर विचार विमर्श करते थे । रामप्रताप बहादुर और शिवदान सिंह चौहान दोनों मार्क्सवाद और मार्क्स दर्शन की चर्चा शुरू करते थे । पाश्चात्य और भारतीय दर्शन के विविध पहलुओं की अच्छी जानकारी होने के नाते वे प्रमाणिक और स्पष्ट ढंग से प्रश्नों का उत्तर देते थे । 'मार्क्स ने अमुक स्थापना क्यों की, हीगल, कांट और शापेनहार के आदर्शवादी दर्शन में क्या खामियाँ थी, जिनको मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की स्थापना से दूर किया, लेकिन मार्क्स के दर्शन में भी कौन - कौन से प्रश्नों का समाधान अभी होना जरूरी है, भारतीय वेदान्त और अद्वैत दर्शन में उन प्रश्नों का जो समाधान मिलता है वह किस प्रकार मार्क्सवादी दर्शन को संपूर्ण बनाने में योग दे सकता है' आदि प्रश्नों का उचित ढंग से उत्तर देते हुए पन्त इन लोगों के पथ प्रदर्शक बन गये थे।[1]

प्रगतिशील लेखकों से मेल - मिलाप और साहित्यिक चर्चाएँ इस समय खूब होती थी । उन दिनों पन्त की प्रगतिशील कविता का भी प्रणयन हुआ था। 40 के आस - पास साध्या समाप्त करके उन्होंने कालाकांकर से विदा ले ली । फिर उनका जीवन कुछ वर्षों के लिए प्रयाग और अल्मोड़ा में व्यतीत हुआ । इसी बीच तीन चार बार शांति निकेतन जाने तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर के निकट संपर्क में आने का भी अवसर उन्हें मिला ।

'लोकायतन' की योजना :

1942 में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन भारत भर में रहा था और राजनीतिक संघर्ष उच्चतम शिखर पर पहुँच रहा था । शहरों में जो बीभत्स घटनाएँ होती थी उससे कवि का मन अत्यन्त क्षुब्ध तथा आंशात हो उठा । उन्होंने सोचा कि मनुष्य की बाहरी रूप - रचना के साथ ही उनकी आन्तरिक मानवता को जगाना भी अनिवार्य है । बाह्य रूप से एक सुव्यवस्थित तथा समृद्ध तन्त्र में रहने पर भी यदि मानव जीवन भीतर से उन्नत न हो सके और यदि उसमें

1- पन्त स्मृति - चित्र - पृ0 149 शिवदान सिंह चौहान लेख - युग द्रष्टा कवि पन्त - एक संस्मरण.

उच्चतम मानवीय गुणों के विकास होने के बदले वह केवल समस्त शक्तियों से जूझने के लिए यन्त्र - मात्र बन जाए और उसे मनुष्यत्व के मूल्य पर बाह्य व्यवस्था तथा संतुलन स्थापित करना पड़े तो ऐसा समाज या तन्त्र और जिसके भी योग्य हो मनुष्य के रहने योग्य नहीं कहा जा सकता। भौतिक दृष्टि से सम्पन्न और मानसिक आत्मिक दृष्टि से रिक्त अकिंचन मनुष्य संभवतः मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता।[1] यह विचारधारा उनके मन में अब तक दृढ़ मूल होने लगी और उनका मन साहित्य, संस्कृति तथा दर्शन सम्बन्धों में अधिकाधिक रमने लगा। उनके भीतर नव मानवता का स्वप्न धीरे - धीरे प्रतिफलित होने लगा। 42 में लोकायन नामक संस्कृति केन्द्र की योजना उन्होंने इसी उद्देश्य से की थी, इसकी रूपरेखा बनाने के लिए पन्त जी ने श्री नारायण चतुर्वेदी से सहायता ली। परन्तु बाद में चतुर्वेदी का उपदेश पन्त को नहीं जँचा कि इस केन्द्र का संचालन कुछ परीक्षण निरीक्षण के बाद करना चाहिए और इसलिए दोनों में मतभेद हो गया। आगे उन्होंने डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० बाबूराम सक्सेना, रामचन्द्र टण्डन, अज्ञेय और बच्चन जी के साथ मिलकर इसकी रूपरेखा तथा नियम बनाये। राजनीतिक क्रान्ति के साथ ही साथ सांस्कृतिक क्रान्ति की अनिवार्यता पर इसमें जोर दिया। मनुष्य के आन्तरिक मन को जगाना अथवा मूर्छा में पड़ी मानव चेतना को सजग करना, इस संस्कृति - पीठ का मुख्य उद्देश्य रहा था। बाहरी समस्याओं को सुलझाने के लिए शरीर के साथ ही मनुष्य की आत्मा का भी पोषण करना चाहिए। आन्तरिक अव्यवस्था को सुलझाये बिना बाहरी जीवन को संतुलित नहीं बना सकेगा। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए चार विभाग खोले गए --
(1) ज्योति द्वार (2) संस्कृति द्वार (3) कला द्वार (4) जीवन द्वार। शोभा सदस्य ही 'लोकायन' के वास्तविक कार्यकर्ता अथवा संस्कृति के स्वयं सेवक हो सकते हैं। शोभा सदस्य वे स्वभाव संस्कृत स्त्री पुरुष होंगे जिनके जीवन और व्यक्तित्व से सुरुचि, सौन्दर्य और पूर्णता की प्रेरणा मिले। इनका प्रवेश विधायिनी सभा के दो या अधिक सदस्यों के समर्थन से हो सकेगा।[2]

1- साठ वर्ष एक रेखांकन - पृ० 61-62.

2- ज्योति विहग - शांति प्रिय द्विवेदी - पृ० 455.

उत्तर प्रदेश सरकार ने आर्थिक सहायता का जो वचन दिया था, इसी बल पर उन्होंने पूरी योजना तैयार की थी परन्तु बाद में पूरी सहायता न मिलने के कारण 'लोकायन' की योजना सफल नहीं हुई।

उदयशंकर संस्कृति केन्द्र से संपर्क :

इस निराशा और औदास्य के वातावरण में पन्त का मन उदयशंकर संस्कृति केन्द्र की ओर आकर्षित हुआ। यह वास्तव में एक नृत्य केन्द्र था। वहाँ कवि के लिए अपनी जिज्ञासा का समाधान ढूंढना असंभव सा लगा फिर भी कला-सम्बन्धी ज्ञान अर्जित करने का अवसर प्राप्त हुआ जिसे वे सौभाग्य की बात समझते थे। इस नृत्य मण्डली के साथ सन 1943-44 में उन्होंने उत्तर भारत के अनेक स्थानों में भ्रमण किया। इस यात्रा के बीच दिन-चर्या सब कुछ बदल जाने के कारण उन्हें टाइफाइड हो गया। आँखें भी खराब हो गयीं। इस रुग्णावस्था में कुछ उत्तरदायित्वहीन पत्रों ने उनकी मृत्यु का समाचार तक छाप दिया। स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर वे दिल्ली में डा० नीलाम्बर जोशी के साथ रहे।

अरविन्द-साहित्य से परिचय :

इसी बीच उदयशंकर का नृत्य संघ मद्रास गया था। 'कल्पना' नामक नृत्य-फिल्म (वाकचित्र) बनाने के विचार से यह नृत्य-संघ वहाँ गया था और पन्त ने इस चित्र के निर्माण में सहायता देने का वादा किया था। अतएव वे अपने वचन की पूर्ति के लिए, स्वास्थ्य सुधरने के बाद, मद्रास चले गए। 'कल्पना' के लिए उन्होंने गीत तैयार किये। विष्णुदास शिराली ने इन गीतों की धुन बनायी। मद्रास में वे अधिक दिन तक नहीं रह सके। इसी बीच श्री अरविन्द की 'लाइफ डिवाइन' का प्रथम भाग पढ़ने तथा उनके आश्रम जाने का अवसर भी प्राप्त हुआ। इसके सम्बन्ध में पन्त ने लिखा है -- अपनी अनेक शंकाओं का

उत्तर मुझे स्वतः ही मिलने लगा, और विश्व तथा मन के आन्तरिक विधान सम्बन्धी मेरा ज्ञान स्पष्ट होने लगा। एक प्रकार से मैं पल्लव ही भाग पढ़कर अपनी कल्पना की सहायता से श्री अरविन्द के सम्पूर्ण दर्शन का आभास पा गया। अपने अनेक विश्वासों का मुझे श्री अरविन्द दर्शन में समर्थन मिलने से मेरे मन में मानव जीवन के भविष्य के सम्बन्ध में एक नई आशा तथा प्रेरणा का संचार होने लगा।[1] अरविन्द दर्शन का जो प्रभाव उन पर पड़ा उनकी परवर्ती कृतियों में यथातथ्य रूप में देखा जा सकता है। इस स्तर की प्रथम रचनायें 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' हैं।

सन 1946 में वे बम्बई चले गए और वहां कुछ महीने तक नरेन्द्र शर्मा के पास रहे। दोनों में इतनी मित्रता थी कि नरेन्द्र शर्मा के विवाह में पन्त जी ही लड़का बाले बन गए थे। बम्बई में भगवती बाबू, अमृतलाल नागर और शमशेर बहादुर सिंह आदि का स्नेह प्राप्त करने का अवसर मिलने पर भी उनका मन नगर के वातावरण में ऊब ही जाता था। स्वर्णकिरण तथा स्वर्णधूलि को उन्होंने यहीं आकर पूरा किया।

सन 1947 जुलाई में वे फिर भी बच्चन के साथ प्रयाग लौट गये। बच्चन ने पन्त जी के दार्शनिक ज्ञान को पहचान लिया और लिखा है -- 'अब की बार जब वे आए तो पूरे अरविन्दवादी हो चुके थे। वैसे तो उनके पास सामान थोड़ा ही रहता है पर इस बार उनके दो संदूक अरविन्द साहित्य से खचाखच भरे थे -- कुछ अंग्रेजी में, कुछ हिन्दी में। आश्रम के पत्र और अन्य प्रकाशन उनके पास नियमित रूप से आते। मैं उनको अक्सर आश्रम की त्रैमासिक पत्रिका 'आदित' के लिए कुछ लिखते या श्री अरविन्द की कविता का अनुवाद करते देखता। उन्होंने योगिराज के दार्शनिक महाकाव्य 'सावित्री' के भी कुछ अध्यायों का अनुवाद किया है, जो थोड़ा-थोड़ा प्रकाशित हो रहा है।'[2]

1- साठ वर्ष एक रेखांकन - पन्त - पृ० 64.
2- कवियों में सौम्य संत पन्त - बच्चन - पृ० 77.

भारत का प्रथम स्वतंत्रता दिवस मनाने के लिए वे दोनों साथ रहे थे और पन्त के लिए इस दिन की महत्ता कुछ और बढ़ गई, क्योंकि यह श्री अरविन्द के जन्मदिवस पर पड़ा। उनके जीवन में ये घटनाएं बहुत महत्व की थीं।

'लोकायन' रूपायित करना वे अब भी भूल नहीं गए थे। यह विचार उनके अन्तः मन में इतने दृढमूल होकर जम गया था कि वह कभी भी हिल नहीं सकता था। परन्तु दुःख की बात है कि अब की बार भी वे सफल नहीं बने। आर्थिक सहायता के अभाव के साथ ही साहित्यिक दलबन्दी तथा प्रतिस्पर्धा के कारण गण्यमान्य साहित्यिकों का आशीर्वाद तथा नवीन साहित्यिकों का सहयोग नहीं मिल सका।

रेडियो पर आगमन।

सन् 1950 में पन्त जी इलाहाबाद के टागोर टाउन में उनकी ममेरी बहिन कल्याणीया शांता जोशी के साथ रहते थे। उस समय आल - इण्डिया रेडियो से उन्हें निमन्त्रण मिला। उस समय दिल्ली में बालकृष्ण राव डिप्टी डायरेक्टर जनरल के पद पर आसीन थे। उनके अनुरोध से डा0 नगेन्द्र पन्त से मिलने के लिए इलाहबाद गए। रेडियो पर हिन्दी के कार्यक्रम का संगठन और विकास करने के लिए निरीक्षक का काम उन पर सौंपा गया। इसको स्वीकार करना है या नहीं यह बात निश्चित करने के लिए उन्होंने एक रात का समय लिया और दूसरे दिन बताया कि ठीक है इसको स्वीकार कर लूं। आल - इण्डिया रेडियो में पन्त के आगमन के बारे में बच्चन जी ने लिखा था-- 'यह निश्चय पूर्वक कह सकता हूं कि रेडियो का कार्य उन्होंने इसी आशा से स्वीकार किया है कि संभव है जो काम वे 'लोकायन' के द्वारा नहीं कर सके उसे वे रेडियो के द्वारा कर सकें। उस समय इतनी लगन और परिश्रम के साथ वे काम कर रहे थे भी'[1]। साठ वर्ष एक रेखांकन में पन्त जी ने भी यह बात स्वीकार कर ली और उन्होंने यह भी बताया कि रेडियो से सम्बद्ध होकर उनका मानसिक लाभ भी

1- ~~वही-वही~~ कवियों में सौम्य संत - पंत - बच्चन - पृ0 79.

अवश्य हुआ।[1] 'रजत शिखर', 'शिल्पी' और 'सौवर्ण' काव्य रूपक रेडियो द्वारा प्रसारित हुए। 'अतिमा' नामक काव्य संग्रह भी प्रकाशित हुआ। सन 1957 के अन्त में 'वाणी' प्रकाशित हुई जिसमें आत्मिका नामक एक विस्तृत कविता है जिसमें कि कवि ने अपने जीवन का संस्मरणात्मक चित्र खींचा। इसके बाद 'कला और बूढ़ा चांद' का प्रकाशन 1960 में हुआ। रेडियो में पन्त जी के आगमन से उस का नया विकास परिलक्षित हुआ।

साहित्यिक संघर्ष।

पन्त ने अपने स्कूली जीवन से ही काव्य रचना आरम्भ कर दी थी। अल्मोड़ा में पढ़ते समय उन्होंने कविता लिखी थी। वहां का घर एक गिरिजाघर के बहुत ही निकट था। वहां से अनेकों घंटे की ध्वनि उनकी काव्य प्रतिभा को जगा सकी। पन्त जी ने 'गिरजे का घंटा' शीर्षक एक कविता लिखी। अपने उत्साह और आत्मविश्वास के कारण उन्होंने इसे गुप्त जी के पास भेज दिया। उन्होंने उसे पढ़कर अत्यन्त प्रोत्साहक शब्द लिखकर उसे वापस लौटा दिया। इस प्रकार अपने आस - पास के छोटे विषयों को लेकर वे अपनी प्रारंभिक साधना में तल्लीन रहे है। 'तम्बाकू का धुआं', 'कागज का फूल' आदि कविताएं इस समय की थी। अल्मोड़े में 'सुधाकर' नामक हस्तलिखित पत्रिका में उनके सहपाठियों का एक दल उनकी कविताओं के विरुद्ध लिखा करता था। परन्तु पन्त जी इस विरुद्ध - बाण से घबड़ाकर अपनी साधना से विरत नहीं हुए। उनकी कवि प्रतिभा ने उस क्षेत्र में भी धूम मचा दी। 'सुमित्रानन्दन पंत ने हिन्दी काव्य सरोवर के तट पर बैठ कोई तनिक सी कागज की नाव भर अपने बाल कौतूहलवश पानी में नहीं छोड़ दी थी, उन्होंने उस सरोवर में अचानक एक बड़ा सा पत्थर ही फेंक दिया था, जिससे एक गहरा छपाका लगा और लहरें उठने गिरने मचलने लगीं। उस पत्थर का नाम था 'उच्छ्वास', पंत की सर्वप्रथम पुस्तक, जो 1922 में प्रकाशित हुई थी'।[2] परन्तु इसके प्रकाशन के बाद

1- साठ वर्ष एक रेखांकन - पंत - पृ० 70.

2- कवियों में सौम्य संत-पंत - बच्चन - पृ० 173.

अनेक आलोचकों ने इसके प्रति व्यंग्य बाण छोड़ दिया। इसके बीच भी श्रीधर पाठक तथा पं० शिवाधार पाण्डे जैसे साहित्यिकों से उन्हें निरन्तर प्रोत्साहन मिलता रहा।

कल्पनाशील कवि साहित्य के इस छेड़ - छाड़ को पहले ही पहचानते थे और उन्होंने वहां भी मधुर बचन से बोलने की आशा की थी। इसलिए उन्होंने याचना की --

बना मधुर मेरा भाषण
वंशी से ही कर दे मेरे
तरल प्राण और सरस वचन,
जैसा जैसा मुझको छेड़े,
बोलूं अधिक मधुर मोहन। -।

पल्लव की रचना के बाद निरालाजी उनके विरोधियों में एक बन गए थे। इनकी सबसे कटु आलोचना उन्होंने एक निबन्ध में की। यह निबन्ध 'प्रबन्ध - पद्म' में संगृहीत हुआ। अब यह 'पंत और पल्लव' नाम से स्वतन्त्र पुस्तिका के रूप में भी प्रकाशित है। पंत तो समझते थे कि निरालाजी के द्वारा 'पल्लव' का खूब प्रचार हुआ और अक्सर ही अक्सर उसके प्रति कृतज्ञ होते थे।

पंत जी की कविता के सबसे विरोधी, वयोवृद्ध पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी जी थे। इस समय छायावादी कवियों के प्रति घोर विरोध प्रकट करने वाले कुछ आलोचक भी थे। द्विवेदी जी ने 'सुकवि किंकर' उपनाम से सरस्वती में छायावादी कवियों पर खूब प्रहार किया। पंत जी की कविता पर उन्होंने विशेष उपहास किया था। इसका उचित उत्तर उन्होंने 'गुंजन' की कुछ पंक्तियों[2] के द्वारा दिया। इतने से वे सन्तुष्ट नहीं हुए। पंडित जी के

1- द्रष्टव्य वही वही - पृ० 174.
2- गुंजन - तेरा केसा गान - पृ० 105.

लेखा का मुंहतोड़ जवाब देने का निश्चय किया। वीणा की विज्ञापिका में उन्होंने लिखा --

> इहां कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं
> जो तरजनि देखिन मरि जाहीं ।

द्विवेदी जी यह भूमिका पढ़कर तिलमिला उठे और उन्होंने उस भूमिका को पुस्तक से निकाल देने पर जोर लगाया। पंत जी ने इसका ख्याल अवश्य किया कि भूमिका कुछ सीधा - सादा बना दिया। फिर भी चोट करनेवाले भाग को उन्होंने निकाल नहीं दिया।

पंत जी के साथ इस समय सहानुभूति रखने वाले भी अनेक थे और बच्चन जी ने एक कविता[1] लिखी थी --

> हुआ मुखरित अनजान
> हृदय का कोई अस्फुट गान
> यहां तो दूर रहा सम्मान,
> अनसुनी करते विहग सुजान,
> चिढ़ाते मुंह विद्वान ।

आगे वृद्ध द्विवेदी जी पंत जी के विरोध करने के बजाय उनको आशीष ही देते रहे। एक बार काशी नागरी प्रचारिणी सभा में द्विवेदी जी के सभापतित्व में पंत जी का सम्मान किया गया। निराला - पंत विवाद समाप्त करने के उद्देश्य से 'ज्योत्सना' की विज्ञापिका निराला जी ने लिखी।

प्रयोगवाद और प्रगतिवाद आन्दोलन के बीच भी पंत जी लपट - झपट कर रह गए थे। प्रगतिवादी लोग उन की कतिपय कविताएं देख कर उनको प्रगतिवादी-कवि मानने लगे और उनको नेता बनाने की कोशिश की गयी। परन्तु इनके साथ खड़े होने को वे कभी भी तैयार नहीं थे। कोरे मार्क्सवादी बनने के लिए उनका आध्यात्मिक दृष्टिकोण अनुकूल नहीं था। उनकी पुरानी कविता के प्रेमी कह रहे थे कि पंत जी का ह्रास हो रहा है, प्रगतिशील कह रहे थे कि उनका विकास हो रहा है और वे बहुत दिनों तक आशा लगाए

1- कवियों में सौम्य संत पंत - बच्चन - पृ0 177.

रहे कि वे धीरे - धीरे अध्यात्म - वध्यात्म भूल। विशुद्ध साम्यवादी बांह के प्रगतिवादी बन जाएंगे' । फिर भी पंत जी ने देखा कि उनके आदर्श और विश्वास के अनुरूप साम्यवादी दल वहां नहीं था। प्रयोगवादी के व्यक्तिगत कुंठा और प्रलाप कहां ? बाह्य परिस्थिति के सुलझाव के लिए अन्तर्चेतना की साधना कहां ? जिस दर्शन में पंत का विश्वास है उसका कोई दल नहीं ।

पंत जी का व्यक्तित्व :

एक कवि का व्यक्तित्व उनके कवि हृदय के समान ही सुन्दर सुकोमल होता है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं । परन्तु यह आवश्यक नहीं कि मन से सुन्दर सुकोमल व्यक्ति या कवि बाहरी रूप में सुन्दर हो, अथवा जिसमें बाहरी सौन्दर्य अधिक मात्रा में विद्यमान हो उसमें आन्तरिक सौन्दर्य भी हो। शायद हम बहुत विरले ही ऐसे व्यक्ति को देख सकते हैं जिसमें दोनों प्रकार का सौन्दर्य विद्यमान हो। परन्तु कविवर श्री सुमित्रानन्दन पंत जी में यह आसानी से देखा जा सकता है कि उनमें दोनों प्रकार का सौन्दर्य विद्यमान है। शरीर से जितने सुन्दर है उतने वे हृदय से भी है ।

देखने में पंत जी अत्यन्त सुन्दर व्यक्ति है, वर्ण की कांति रमणीय है, उनके विशाल नेत्रों में जिज्ञासा, सरलता और सात्विकता है। केश लहरदार तथा आकर्षक है, विश्वंभर मानव के शब्दों में 'पंत जी को कभी, कहीं और कैसी ही स्थिति में देखिए, उनकी दीर्घ, स्वस्थ, रम्य, सौम्य आकृति से यह संकेत मिलता है कि यह व्यक्ति किसी देश का कोई महान कलाकार है' । -2

बचपन से ही लोगों का ध्यान आकर्षण उस पर पड़ता था, इसका कारण उनके 'घने लहरे रेशम के बाल' था। धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है कि उनको देखते ही एक कलाकार मालूम होता था और यह घुंघराला बाल इस अनुमान की पुष्टि करते थे। लड़कपन में भी पंत अपने बाल के प्यारे थे। उनके भाई भी उसके प्यारे थे।

1- वही वही - पृ0 179.

2- सुमित्रानन्दन पंत - विश्वंभर मानव - पृ0 2.

धूल भरे घुंघराले, काले
भय्या को प्रिय मेरे बाल -1

कुल मिलाकर अत्यन्त सुकुमार और आकर्षक व्यक्तित्ववाले पंत की चाल-ढाल, रहन-सहन से उनकी कलाप्रियता का आभास मिल जाता है। उनका आकार ऐसा था कि आसानी से उन पर लोग आकृष्ट होते थे।

पंत जी में तन के सौन्दर्य के समान ही मन का भी अनुपम सौन्दर्य दर्शनीय है। खुले कुसुम के समान विकसित उनका व्यक्तित्व सभी लोगों को प्रिय है। सद्भाव से भरा हुआ उनका हृदय किसी की बुराई करना नहीं जानता है। वे अपने विपक्षी के प्रति भी उदार हृदयवाला है कि वे अपने विरोध को पूरी शक्ति के साथ प्रकट नहीं करते। पौरुष के लिए निराला प्रसिद्ध है तो पंत कोमलता के लिए। डा० रामरतन भटनागर के शब्दों में निराला जहाँ मूर्तिमान विद्रोह है वहाँ पंत मूर्तिमान विनम्रता। उनका एक साथ कोमल तथा निर्मल हृदय है। -2

वे बड़े संकोचशील भी हैं। उनका सरल हृदय कभी भी नौसिखों के समान बातें नहीं करता है। बात करते समय शिष्टता कभी भी उनका साथ नहीं छोड़ती। कवियों की सी आत्म विस्मृति उनमें पायी जाती है। उनका शांत स्वभाव उनके चिंतनशील व्यक्तित्व का उदाहरण है। आशावादी पंत जी आत्मविश्वासी भी है। एक आदर्श कलाकार में पाये जानेवाले सभी गुण उनमें वर्तमान है। सत्य, शिव और सुन्दर को प्रतिष्ठापित करने की उनकी इच्छा तथा प्रयत्न इस उक्ति की पुष्टि करती है। 'जो व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा से पूर्ण सुन्दर है उसका नाम पंत है'। -3

पंत जी का व्यक्तित्व पूर्ण संस्कृत तथा शालीन है। उनका संगीतमय सुमधुर स्वर, निर्विकार दृष्टि निक्षेप, सौजन्य, विनम्र और निश्छल वार्तालाप

1-पल्लव - पृ0 - 89

2- सु0 पन्त - रामरतन भटनागर - पृ0 5

3- सु0 पंत - विश्वम्भर मानव - पृ0 3

चिर मोह के प्रबल बन्धन है । दो क्षेत्र गुणपूर्ण मनुष्य के है -- आत्मविश्वास और निरभिमानता । वे दूसरों के स्वाभिमान का भी सम्मान करते है । वही नहीं उनकी अंतः भेदिनी दृष्टि में व्यक्तियों के अंतस्थल तक पहुंचने की सुन्दर क्षमता है'[1]। उनका आत्मविश्वास ही सदैव उन्हें प्रसन्न तथा संतुष्ट बनाये रखते थे । भारी से भारी विपत्ति पर भी आंतरिक मन में उनकी प्रसन्नता खोती नहीं । ईश्वर के विधान में अटूट विश्वास रखने के कारण वे उस पर अर्पण का भाव प्रकट करते है । 'उन्हें ध्रुव विश्वास है कि ईश्वर की यह सृष्टि, मानवता, अपने विकास - क्रम में सुन्दर से सुन्दरतर और सुन्दरतर से सुन्दरतम की ओर जायेगी जो वास्तव में भू पर भागवत जीवन की स्थापना है । इस भागवत जीवन का आवाहन करने के लिए ही पंत जी की रचना ने आकुल होकर वाणी को अपनाया है'[2]।

सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक विषमताओं ने पंत जी के अन्तर तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व को बनाया है । अधिक सामाजिक तथा पारिवारिक संघर्ष झेलने के कारण वे कभी निराश भी बने थे । परन्तु पंत जी के हृदय में प्रत्येक विषमता का समाधान है और उनके काव्य में अपने स्वीकृत समाधान का विराट चित्रण मिलता है ।

इस प्रकार पंत जी कभी संघर्ष से भागे नहीं । आर्थिक विषमता के कारण शायद उन्होंने विवाह नहीं किया । वे कभी कहते थे कि अच्छे ढंग से जीवन बिताने के लिए वे अभ्यासी थे । इसलिए इस समय वे विवाह की बात सोचते भी कैसे ? इसलिए और लोग उन्हें पलायनवादी कहा करते थे । परन्तु विवाह न करने के पीछे कोई मनोवैज्ञानिक कारण भी हो सकता है । अध्यात्म की ओर उनका झुकाव भी पलायन नहीं माना जा सकता । उनके व्यक्तित्व के तीन सोपान जो है उसके बारे में विनयकुमार शर्मा ने लिखा है 'उनका भीरु, व्यक्तित्व जिसमें संघर्ष के प्रति उपेक्षा और सौन्दर्य के प्रति आस्था है, प्रकृति ने निर्मित किया है । चिन्तन प्रधान व्यक्तित्व अध्ययन और मनन तथा भारतीय दर्शन ने

1- हमारे साहित्य - निर्माता - शांति प्रिय द्विवेदी - पृ० 167-168
2- पं० स्मृति - चित्र - पंत जी : एक व्यक्तित्व - शांति जोशी - पृ० 24

निर्मित किया है। इस पर विवेकानन्द, अरविन्द और गांधी जी का प्रभाव है। उनका संघर्ष-प्रिय व्यक्तित्व जहाँ सौन्दर्य की वास्तविकता का सहायक और अनुचर है, सामाजिक संघर्ष के द्वारा निर्मित हुआ है। मार्क्स और अन्य सांप्रदायिक व्यक्तियों का प्रभाव इस विषय में स्पष्ट रूप से झलकता है। अतः कवि का व्यक्ति संघर्ष की आंच में तपकर कुंदन बना है।[1]

सुन्दर व्यक्तित्व वाले पन्त सुन्दर वातावरण में रहनेवाले भी हैं। स्वच्छ और स्वच्छ वातावरण पसन्द करना उनके व्यक्तित्व का और एक गुण है। उनके कमरे में सुन्दर रंगों का मेल-जोल अत्यन्त नयनाभिराम है।

ज्योतिष पर पंत जी को विश्वास है। ग्रह विधि के अनुसार चलने के लि दूसरों को उपदेश देना भी जानते हैं। मूंगा, मोती, नीलम आदि किन किन लोगों को फलदायक है, यह भी बता सकते हैं। वे हाथ भी बहुत अच्छा देखते हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ उनके पास अनेक आती हैं। परन्तु बहुत कम पत्रों को ध्यान लगा कर पढ़ते हैं। बच्चन जी बताते हैं कि 'उनकी अलमारी पर मैंने केवल 'हिमालय', और 'प्रतीक' की प्रतियाँ सुरक्षित देखी हैं। इससे अधिक यत्न से वे रखते हैं दो और पत्रिकाएँ - ये हैं श्री अरविंद आश्रम से निकलनेवाली 'आदिति' और 'एडवेंट'।[2] पंत जी और एक पत्रिका को भी बड़े उत्सुक से पढ़ते हैं, वह है बंगलौर से निकलने वाली एक ज्योतिष पत्रिका। अरविंद आश्रम का प्रकाशन वी0 पी0 में मिलता है। उनके पास विशेष पुस्तकालय नहीं है। उनके पास इस्तित बहुत ही सीमित पुस्तकों में शब्द सागर, आप्टे का संस्कृत-अंग्रेजी कोष और कालिदास के कुछ ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। रघुवंश को पढ़कर वे काफी रस लेते हैं। अरविंद- साहित्य पर विशेष अनुराग रखने के कारण सम्पूर्ण अरविंद-साहित्य उनके पास है।

प्रातः, काल नहाने - धोने के बाद कुछ देर के लिए ध्यान मग्न रहने की आदत है। पंत जी प्रायः दिन में लिखते हैं। लिखते वक्त उन्हें एकांत चाहिए। लिखने के दिनों में हर समय विचार मग्न रहते हैं --खाना पीना कम हो जाता है

1- युगकवि पन्त की काव्य साधना - विनयकुमार शर्मा - पृ0 21

2- कवियों में सौम्य संत - बच्चन पृ0 53

जल्दी-जल्दी अपने भाव-विचारों को लिख डालते हैं। कभी-कभी एक भाव को अनेक रीति से लिखते हैं फिर काट छाँट कर सीधा कर देते हैं।

पन्त जी पहले जितने संकोची थे अब उतने संकोची नहीं हैं। यह ठीक है कि उनका स्वभाव बहुत बोलने का नहीं है। पर वे व्यक्तिगत जीवन में इतने गंभीर नहीं दिखाई पड़ते। हास्य और व्यंग्य की मात्रा उनमें अधिक है। हँसी-मज़ा वे अच्छी तरह करते हैं। वे हँसना और हँसाना दोनों जानते हैं। बच्चन जी ने पन्त जी के व्यक्तित्व की उत्कृष्टता के बारे में कहा है - 'अपने जीवन में वे आदर्शवादी हैं। शायद एक समय सभी आदर्श लेकर चलते हैं पर उससे अपने जीवन का मार्ग प्रशस्त होते न देखा कर उसे छोड़ बैठते हैं। पंत जी को का अनुभव भी शायद यही है कि आदर्शों को लेकर चलने में आजकल की दुनिया में सफलता नहीं मिल सकती। पर असफल होकर भी उन्होंने सभी आदर्शों में आस्था नहीं खोई।'[1]

अध्याय तीन

सुमित्रानंदन पंत की काव्य कृतियों का विकास

सुमित्रानन्दन पंत की कविताओं के विवेचन-विश्लेषण के अवसर पर सबसे पहले उनकी कविता के तीन चरणों की ओर हमारा ध्यान जाता है। अपनी रचना प्रक्रिया की दीर्घ अवधि में विविध प्रकार की चिन्तनधारा से वे प्रभावित दिखाई देते हैं। बाह्य प्रवृत्ति की यह विविधता उनकी कविता की एक प्रमुख विशेषता होने पर भी उनकी आन्तरिक चिन्तनधारा की एकसूत्रता आरंभ से अन्त तक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। छायावाद के नवीन युग में जन्में और पले कवि की अन्तर्मुख प्रवृत्ति उस युग के अनुकूल रूपायित होना स्वाभाविक ही है। अतएव उनकी प्रारंभिक रचनाओं में तीव्र अनुभूति, काल्पनिकता की उड़ान तथा सौन्दर्य बोध की उन्मुक्तता लक्षित होती है। वीणा, ग्रंथि, पल्लव तथा गुन्जन इस कोटि की रचनाएँ हैं। छायावादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों के दर्शन हम इन कृतियों में कर सकते हैं। उनकी कविता का दूसरा मोड़ समाज बोध से आरम्भ होता है। युगांत, युगवाणी, ग्राम्या आदि रचनाओं में कवि सौन्दर्य लोक से उतरकर सत्य की ओर मुड़ता है। मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव इस काल की रचनाओं पर स्पष्ट रूप से लक्षित है। उनके मन में वर्तमान जीवन के कुत्सित वातावरण के प्रति विद्रोह की भावना

अंकुरित हुई । इस दूषित स्थिति के विरुद्ध मूक विद्रोही रह कर सत्य के अन्वेषक बन कर कवि रहा । वे मानव-कल्याण, मानव-स्वातंत्र्य और मानव के स्वर्णिम युग के आकांक्षी है । इस विचारधारा से वशीभूत कवि का ध्यान एकदम अरविंद की चिन्तनधारा की ओर चला । इस प्रौढ़ मन से निसृत काव्य स्रोत स्वर्ण धूलि, स्वर्ण किरण, उत्तरा, अतिमा, वाणी आदि हैं । जीवन के अंधकार को मिटाने के लिये मानो उनकी काव्य-स्रोतस्विनी प्रवाहित हुई हो । जीवन की विभीषिकाओं से मुक्त होने के लिये आध्यात्मिकता के आश्रय लेने पर उन्होंने बल दिया । अतएव वे अरविन्द के जीवन-दर्शन से अत्यधिक आकृष्ट हो गये । इस काल की काव्य-रचनाओं को स्वर्णिम काल की संज्ञा दी जा सकती है ।

पंत के समस्त काव्य संकलनों के अध्ययन अनुचिंतन इस प्रकार सुगम तथा सरल बन जाता है जब उसे अपर्युक्त तीन चरणों में विभाजित कर देता है । परन्तु इससे यह मतलब नहीं निकलता कि कवि के मूल संस्कार भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में परिवर्तित हुए हैं । उनकी कविता में भावों तथा विचारों की भिन्नता के दर्शन हम कर सकते है फिर भी उसके बीच लम्बी विभाजक रेखा खींचना उचित नहीं है । क्यों कि 'प्रारंभ से अन्त तक कवि के मूल-स्वभाव, संस्कारों व विश्वासों का सूत्र बराबर एक सा रहा है'।[1] कवि कभी भी अपने मूल संस्कारों के विरुद्ध न जा सका और यही कारण है कि वह अपनी कविता में सत्य, शिव, सुन्दर का 'समन्वय कर सका। यद्यपि उस समन्वय में कुछ आलोचकों ने सौन्दर्य की मात्रा अधिक देखी ।' पंत जी सुंदर के ही कवि है - यद्यपि उनका सुंदर शिव और सत्य से शून्य नहीं है । सौंदर्य -प्राकृतिक, मानसिक और आत्मिक ही इनकी कविता का असली विषय है।[2] पंत जी के काव्य कृतियों के आद्यन्त अविराम रूप से वर्तमान तत्व प्रकृति ही है। पंत जी की काव्य प्रवृत्ति का वास्तविक उन्मेष उनकी प्रकृति परक कविताओं में लक्षित होता है । अध्ययन की सुविधा के लिये पंत की काव्य कृतियों को

1-पंत का नूतन काव्य और दर्शन: विश्वम्भरनाथ उपाध्याय पृ -।
2-सु0 पन्त डा0 नगेन्द्र - पृ0 17

निम्नलिखित युगों में विभक्त कर सकते हैं ।

(1) सौंदर्यचेतना का युग (2) समाज चेतना का युग(3) आध्यात्म चेतना का युग

(1) सौन्दर्य चेतना का युग :

वीणा :-

'वीणा' में पन्त की 1918 से लेकर '20 तक की प्रारंभिक रचनाएँ संग्रहित है । इसका प्रकाशन सन् 1927 में ' पल्लव' के प्रकाशन के बाद हुआ यद्यपि यह कवि का प्रथम काव्य संकलन है । 'वीणा' को कवि ने स्वयं अपने 'दुग्ध मुग्ध प्रयास कहा है ।[1] 'वीणा' के रचना काल में कवि रवीन्द्र की कविताओं से विशेष आकृष्ट हुआ था जिससे कि इसमें गीतांजलि के भावलोक, कल्पनालोक की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है । कवि प्रकृति से भी प्रमुख रूप से प्रभावित सा दिखाई पड़ता है । प्रकृति को देख कर कवि के मन में जो प्रतिक्रिया हुई उसे उसने काव्यबद्ध किया है । प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य ने इस समय उसकी काव्य प्रतिभा को प्रस्फुटित किया । प्रकृति रूपी माँ ने उसके चञ्चल मानस पर मधुर वीणा की झंकार भर दी । कवि ने उस वीणा वादिनी के आगे आत्म-समर्पण और आत्मोत्सर्ग करने की इच्छा प्रकट की है । एक बालिका के रूप में प्रकृति-प्रेमी कवि प्रकृति माँ से प्रार्थना करता है -

' माँ कहाँ से गंगा का दुकूल नव
मुझको बनवा दो सुंदर, -2

इतना ही नहीं प्रकृति रूपी माँ के साथ यह बालिका रोती है, हंसती है और उससे प्रार्थना करती है कि उसे भी पवित्र जीवन बिताने की शिक्षा दो, क्षमता दो-

अविरल स्नेह अश्रु जल से माँ
मुझको मोती मल धोने दो,

XXXXXXX

द्रोह, मोह, त्रास, मदन, मद मुझे
निज संगति से खोने दो । -3

1- वीणा-ग्रन्थि-पन्त विज्ञापन - पृ- ।
2- वीणा -ग्रन्थि-पन्त पृ0 39 3- वही-वही पृ0 17

बालिका प्रकृति में घुल मिल जाने, उसी में खो जाने को आतुर है-

तुहिन बिन्दु बनकर सुंदर,
कुमुद किरण से सहज उतर,
मा तेरे प्रिय पद पद्मों में,
अर्पण जीवन को कर दूँ - इस ऊषा की लाली में -1

वीणा में बालिका की बाल-सुलभ जिज्ञासा यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है। इसे बचपन की अस्फुट भावनाओं की अनुगूंज मात्र कहना उचित नहीं है। उसकी रहस्यानुभूति का आरम्भ निष्ठ रूप इस में निहित है। समस्त विश्व के सौन्दर्य के दर्शन करके उसके मन में एक प्रकार की जिज्ञासा जाग्रत हो उठती है, उस व्याप्त शक्ति को पहचानने के लिये कवि व्याकुल होता है कवि पूछता है-

इस पीपल के तरु के नीचे
किसे खोजते हो खद्योत, -2

शक्ति रूपी माँ का प्रतिबिंब इस जगत के निर्मल दर्पण में पड़ा है और कवि पूछता है कि कब मैं उस शक्ति की छवि देख पाऊँगा। -3ए

इस प्रकार कवि के भावनापरक गीतों में भी हम उनके आत्मप्रबुद्ध मन के दर्शन कर सकते हैं और इनमें मृदुलता या कोमलता की झलक भी लक्षित होती है। 'वीणा' की कतिपय दार्शनिक कविताएँ कवि की भावुकता के उदाहरण हैं। 'कवि मानव हृदय की उर्मिल प्रवृत्तियों को ही गुदगुदाने में परम पटु है। वीणा में यह बात अत्यन्त स्पष्ट है। उसमें सर्वत्र ही मानव-जगत का अथवा प्राकृतिक विश्व के द्वारा कवि के अस्फुट हृदय पर पड़े हुए झिलमिल प्रतिबिंबों का ही चित्रण विशेष है। ऐसी कविताएँ छाया, अन्धकार, किरण, सरिता, प्रथम रश्मि का आना, चातक, माँ आदि हैं। कवि की सूक्ष्म दृष्टि का पूर्ण रूप यहीं से प्राप्त होने लगता है।4

1- वीणा -प्रोमिश - पृ 3 2- वही वही - पृ-43

3- मा। वह दिन कब आयेगा जब 4- सु0 पन्त डा0 नगेन्द्र पृ 83-84
मैं तेरी छवि देखूँगी,
जिसका यह प्रतिबिम्ब पड़ा है
जग के निर्मल दर्पण में। ए वही पृ -12

यह पहले भी सूचित किया गया है कि 'वीणा' पंत की आरंभिक कृति है। इसमें तुतली भावना की ऊंची उड़ान होने के साथ ही भाषा का यत्र तत्र अपरिपक्व रूप भी देखने को मिलता है। कवि स्वयं लिखता है - 'इसकी भाषा यत्र तत्र अपरिपक्व होने पर भी मैंने उसमें परिवर्तन करना उचित नहीं समझा, क्योंकि तब इसका सारा ठाठ ही बदल देना पड़ता है। कई शब्द वाक्यखण्ड आदि- जैसे मम, स्वीकारो, निमाऊँ, वय-बाली, पल्ना है शुचि मुक्ताफल इत्यादि- जिनका प्रयोग अब मुझे कविता में अच्छा नहीं लगता- इसमें ज्यों के त्यों रख दिये गये हैं।'[1]

कवि के प्रारंभिक प्रयास में ऐसी त्रुटियाँ स्वाभाविक ही हैं।

यद्यपि वीणा की अधिकांश रचनाएँ कवि के प्रकृति प्रेम, सौन्दर्य प्रियता और कल्पनाशीलता का दिग्दर्शन कराती है तथापि उसमें कतिपय ऐसी कविताएँ मिलती है, जो तत्कालीन घटनाओं और तथ्यों के आधार पर लिखी गयी हैं। वे हैं- नीरजा, व्योम, विश्व नीरव, माँ,अल्मोड़े में आये थे, तिलक ! हा ! भाल तिलक, हृदय के बन्दी तार, इस विस्तृत हॉस्टल में आदि। 'वीणा के विषय में वाजपेयी ने लिखा है- श्री सुमित्रानन्दन पंत जब अपनी नवीन वीणा लेकर हिन्दी में आये, तब हिन्दी प्रगीति की परमोच्च संभावना उनमें केन्द्रित हो गयी।'[2]

ग्रंथि। यह 'वीणा' की समकालीन रचना है अर्थात् 1920 में इसकी रचना हुई। 1929 में 'पल्लव' के प्रकाशन के बाद इसका प्रकाशन हुआ इसे काल्पनिक प्रेम कथा के आधार पर लिखा प्रणयमूलक खण्डकाव्य माना जा सकता है। यह अतुकांत छंद में रचा गया है। इनमें प्रेम, आसक्ति और विरह की भावना को अद्वितीय रूप में चित्रित किया गया है। पुस्तक में वर्णित इसकी कथा इस भाँति है- तरुण कवि की नाव एक मधुमास में अकाल तरंग के कारण ताल में डूब जाती है। युवक बेहोश होता

1- वीणा -प्रारम्भिक विज्ञापन पृ 2

2- आधुनिक साहित्य वाजपेयी पृ - 3।

और आँखें खोलने पर उसने अपने को एक सुंदरी युवती की गोदी में पाया। इसके उपरान्त दोनों में प्रेम व्यापार चलता है, पर अंत में उसकी प्रणयिनी का ग्रंथि-बन्धन किसी अन्य पुरुष के साथ हो जाता है। युवक का हृदय विरह जनित पीड़ा से विदीर्ण होता है और इसकी प्रतिक्रिया इस रचना में व्यंजित है।

ग्रन्थि के रचना काल में कवि अपने जन्म स्थल के सुन्दर प्राकृतिक परिवेश से घुल मिल गया था जिसके परिणामस्वरूप कवि ने अपने प्रकृति-प्रेम और प्राकृतिक सौन्दर्यानुभूति का चित्रमय रूप प्रस्तुत करने में सफलता पायी है। प्रकृति की रमणीयता में रम कर कवि की अनुभूति तीव्र तथा गहन रूप प्राप्त करती है। कविता करने के लिये प्रकृति से उसे प्रेरणा तथा उत्साह प्राप्त होता है।

> इन्दु की छवि में तिमिर के गर्भ में,
> अनिल की ध्वनि में, सलिल की वीचि में,
> एक उत्सुकता विचरती थी, सरल
> सुमन की स्मिति में, लता के अधर में। -1

प्रकृति की अनुकूल परिस्थिति पाकर युवक कवि का हृदय प्रेमाभिभूत बन जाता है। 'ग्रंथि के प्रारंभ में प्राकृतिक सुषमा का मूर्तिमान चित्र पाठकों को मनोमुग्ध करता है। उस समय का वातावरण भी ऐसा है जिसके प्रभूत सौन्दर्य -सञ्चय के साथ युवक का प्रेम रमणीक धारा से बहता रहता है।

> एक पल जग सिन्धु का गंभीर गति
> आज पुलकित वीचियों में डूब जा
> इस प्रणय की सदय मुख छवि देख मैं
> लोल लहरों पर कलापति से लिखी। -2

1- वीणा-ग्रंथि -पन्त पृ- 103

2- वही पृ0 96

भावों के बड़े स्वाभाविक बिम्ब प्रस्तुत करने के लिए कवि प्राकृतिक उपमाओं का सहारा लेता है। प्रेमियों के हृदय के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों का वर्णन कवि इस प्रकार करता है।

जब, अचानक, अनिल की छवि में पला
एक जल कण, जलद शिशु सा, पलक पर
आ पड़ा सुकुमारता-सा, गान-सा,
चाह-सा, सुधि-सा, सगुन -सा, स्वप्न सा। -1

यहाँ चिन्मय विशेषणों का चमत्कार द्रष्टव्य है और कवि ने उपमाओं की माला तैयार की है। सार्थक शब्दों के प्रयोग के द्वारा कवि स्वाभाविक वर्णन प्रस्तुत कर सका है।

ग्रंथि का कला पक्ष अत्यन्त सजीव तथा सशक्त है। "सरल कवि की कृति होने के कारण, वह प्रकृति से ही अन्य उत्तर रचनाओं की अपेक्षा, अधिक अलंकृत है। जिन दिनों कवि ने ग्रंथि की रचना की थी, उन दिनों उसका संस्कृत काव्य का अध्ययन भी अंशतः इसके लिये उत्तरदायी है। ग्रंथि में हमें अलंकार की एक विचित्र छटा मिलती है"।-2 कवि की अभिव्यञ्जना शैली नवीन, कुंठित तथा मधुर रूप धारण करके आयी है। कवि की सौन्दर्य प्रियता सब कहीं द्रष्टव्य है। अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि "यद्यपि प्रेम का स्रोत कवि ने करुणा की गहराई से निकाला है पर आगे चलकर उसके प्रवाह में भारतीय प्रकृति के अनुसार हासविनोद की झलक भी दिखाई है। कहानी तो एक निमित्तमात्र जान पड़ती है, वास्तव में सौन्दर्य भावना की अभिव्यक्ति और आशा, उल्लास, वेदना, स्मृति इत्यादि की अलग-अलग व्यंजना पर ही ध्यान जाता है"-3

पल्लव -

पल्लव में सन् 1918 से लेकर 25 तक की रचनाएं संकलित हैं। यह '26 में

1- वही वही पृ- 113

2- सु0 पन्त - डा0 नगेन्द्र - पृ 94

3- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आ0 शुक्ल पृ 662

प्रकाशित हुआ । ग्रंथि तथा वीणा की अपेक्षा इसमें प्रौढ़ता तथा गंभीरता आ गयी है । परन्तु कवि की कोमल बाल कल्पनाओं तथा भोली आकांक्षाओं से यह रहित भी नहीं है । यौवन के उद्गारों की कमी भी नहीं है । इसमें अनुभूति तथा भावना के गहनतम अंतस्तल को स्पर्श करती हुई उनकी भावना कभी कभी चिंतन तक पहुँच जाती है ।

पंत की छायावादी काव्य कृतियों के बीच 'पल्लव' का अपना अलग स्थान है । प्रारंभिक कविताओं की कल्पना जनित अनुभूति का समर्थन कवि इस लिये करता है कि 'कल्पना ही वास्तव में वह अनुभूतिग्राहिणी तथा सर्वग्राहिणी शक्ति है जो काव्य का प्राण है । वस्तु के रूप में प्रच्छन्न काव्य का उद्घाटन उसी की सहायता से संभव है।"[1] कवि यथार्थ अनुभूतियों की अपेक्षा काल्पनिक अनुभूतियों को महत्वपूर्ण मानता है, जो छायावादी कल्पना के नये आयाम का समर्थन है । 'पल्लविनी' की भूमिका में बच्चन का यह मंतव्य समीचीन है कि ' प्रथम चरण में पंत जी की कल्पना ने जिस भावप्रदेश में विचरण किया है उसकी तुलना यदि पर्वत से करें तो 'पल्लव' को उसकी सबसे ऊँची चोटी ----- मानना होगी । '[2] प्राकृतिक दृश्यों के अवलोकन करते समय कवि की अनुभूतियाँ कल्पना की रंगीन उड़ानें भरती हैं । 'पल्लव' की 'बादल' शीर्षक कविता ही इसका उत्तम उदाहरण है । जैसे :-

फिर परियों के बच्चों से हम सुभग सीप के पंख पसार,
समुद्र पैरते शुचि ज्योत्स्ना में, पकड़ इन्दु के कर सुकुमार

× × × ×

दमयन्ती सी कुसुम-कली के रसाकारों में फिर अभिराम
स्वर्ण हंस से हम मृदु ध्वनि कर, कहते प्रिय सन्देश ललाम ।[3]

इस प्रकार बादल मानव स्वभाव एवं प्रवृत्तियों का भी अनुकरण करते दिखाई पड़ते हैं । यहाँ बादल के यथातथ्य व्यापक चित्र अंकित कर कवि ने अपनी सुन्दर समृद्ध तथा कलापूर्ण कल्पना शक्ति का वैभव दिखाया है

1- छायावाद : पुनर्मूल्यांकन - पंत पृ 28
2- पल्लविनी - भूमिका - बच्चन पृ - 8
3- पल्लव - पंत - पृ० 77-78

'वीचि-विलास', 'निर्झर-गान', 'विश्व-वेणु', 'विश्वछवि', मुसकान, 'नक्षत्र' आदि कल्पना-प्रधान, सरस हृदय-लुभावनी कविताएँ हैं।

'नक्षत्र' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ पन्त के कल्पना मोह का परिचय देती हैं -

अग्नि शस्य। रवि के चिह्नित पग।
म्लान दिवस के छिन्न वितान।

x x x

दिवस स्रोत से दलित उपल दल
स्वप्न नीड़ तम ज्योति धवल। -1

इस मुक्त कल्पना को पंत ने 'उन्नाम कल्पना, सर्जनशील कल्पना, अंतर्मुखी कल्पना, प्रगल्भ कल्पना, इत्यादि कई नामों से अभिहित किया है। कल्पना का यह रूप इनकी गुंजनकाल तक की उन रचनाओं में प्रचुरता के साथ मिलता है, जिनमें सूक्ष्मता और भावात्मकता की ओर कवि का विशेष आग्रह है।, -2

पंत के काव्य विकास के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उनकी प्रारंभिक कविताएँ अधिकांशतः कल्पना और भावना से परिचालित होकर प्राकृतिक सौन्दर्य के यथार्थचित्रण से मुक्त है। प्रकृति सौन्दर्य के बीच ही कवि का समस्त व्यक्तित्व तथा काव्यानुभूति अंकित हो उठी है। प्रकृति के सान्निध्य ने कवि के मन में एक अज्ञात आकर्षण पैदा कर दिया और इस लिए ही कवि प्रकृति के सौन्दर्य के भीतर अपने को खो देने को उत्सुक रहा है। '' हिन्दी में ऐसा कोई कवि नहीं है जिसने इस प्रकार प्रकृति को अपना कर, का अंग बना कर रखा हो। -3

पंत की प्रारंभिक रचनाएँ कवि की सौन्दर्य चेतना से अनुप्राणित हैं। 'वीणा' में कवि नैसर्गिकता पर मुग्ध है तो 'पल्लव' 'गुन्जन' में भावात्मक सौन्दर्य के सुन्दर विधान पर रीझा है। 'वीणा' में कवि की सौन्दर्य प्रिय

1- पल्लव - पृ0 85
2- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास- प्र.स. डा नगेन्द्र पृ -212
3- आधुनिक हिन्दी कविता का मूल्यांकन - इन्द्रनाथ मदान - पृ 191

की अभिव्यक्ति प्रकृति के मनोरम दृश्यों के चित्रण में हुई है तो 'पल्लव' के प्रकृति कवि ने प्रौढ़ भाषा में प्राकृतिक रहस्य भावना की अभिव्यन्जना की है उदाहरणस्वरूप 'परिवर्तन' कविता को लें । युग की दुर्दमनीय क्रूरताओं के प्रति कवि की प्रतिक्रिया इस कविता के रूप में निकली । परिवर्तन अर्थात् जीवन की एक अनिवार्यता है । इस की ओर कवि संकेत देता है-

> एक सौ वर्ष नगर उपवन, एक सौ वर्ष विजन वन -1
> यही तो है असार संसार, सृजन, सिंचन, संहार ।।

कल्पना और सौन्दर्य का उपासक होने पर भी कवि की चिन्तनशील प्रवृत्ति आरंभ से ही सजग है जैसे कहा गया है, बचपन से ही विवेकानन्द और रामतीर्थ के विचार दर्शन से कवि परिचित हो चुके थे । विवेकानन्द का दर्शन आध्यात्मिकता के माध्यम से राष्ट्र की सेवा करने का उपदेश देता है तो रामतीर्थ का दर्शन जगत् के माध्यम से आध्यात्मिकता को प्राप्त करने का रास्ता बताता है । 'परिवर्तन' नामक कविता से यह स्पष्ट होता है कि कवि दोनों दर्शनों से प्रभावित है । कवि मानता है कि मनुष्य को अपने तिक्त जीवन में भी स्थितप्रज्ञ रहने के लिये प्रयत्न करना चाहिये क्यों कि दुख का से तिरोधान नहीं हो जायेगा -

> बिना दुख के सब सुख निस्सार,
> बिना आँसू के जीवन भार,
> दीन दुर्बल है रे संसार
> इसी से क्षमा दया और प्यार । -2

अतएव मनुष्य को आध्यात्मिक चेतना के बल पर जीना चाहिये । जीवन की वास्तविकता से परिचित होना तथा ऐहिक विपत्तियों की ठोकर खा भी संयम का जीवन बिताना कवि सिखाता है । केवल आध्यात्मिकता की शरण में ही मनुष्य सामाजिक समाधान खोज सकता है । इस चिन्तन के बल पर जीने के कारण कवि का मन संघर्षों में भी शायद ही शिथिल हो गया था । 'परिवर्तन' नामक कविता इस प्रकार जीवन के कठोरतम और कटुतम अनुभवों की व्यापक दृष्टि की साक्षी है, वह प्रबुद्ध मानस की आत्मक संतुलित

1- पल्लव - पंत पृ 101

2- वही वही पृ0 108

मनःस्थिति का भी बिंब है :-1

> म्लान कुसुमों की मृदु मुसकान ,
> फलों में फलती फिर अम्लान ,
> महत् है, अरे, आत्म बलिदान ,
> जगत केवल आदान प्रदान । -2

कवि के जीवन में जब विकास और परिवर्तन आये उसकी कविता में भी परिवर्तन आया । 'परिवर्तन' कविता उसके मानसिक परिवर्तन की सूचक है । इसमें कवि की नवीन जीवन दृष्टि तथा अन्तः स्फूर्ति का मूर्तिमन्त् रूप द्रष्टव्य है । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने ठीक ही लिखा है ' यदि यह कथन ठीक है कि कविता शरीर की रीढ़ दर्शन (Philosophy) है तो 'परिवर्तन' में कविता को यह रीढ़ मिल गयी है । 'परिवर्तन को हम दर्शन संवलित काव्य कह सकते हैं और पन्त जी की सुन्दरतम रचनाओं में इसकी गणना कर सकते हैं । -3

'पल्लव' में कवि की प्रथम प्रकाशित ' उच्छ्वास' और आँसू ' नामक कविताएँ भी संग्रहीत है । इसे भी कवि के प्रेम काव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है । परन्तु इन कविताओं में कवि ने अपने व्यक्तिगत अनुभूतियों को दार्शनिक रूप दिया है । इस लिये ग्रंथि की अपेक्षा कवि इन कविताओं में कुछ न कुछ गम्भीर बन गया है । कवि वियोग से असहाय दीख पड़ता है इस लिये ही उसकी आवाज़ दुःख पूर्ण और करुण है ।

> हाय किसके उर में
> उतारूँ अपने उर का भार ।
> किसे अब दूँ उपहार
> गूँथ यह अश्रुकणों का हार । -4

1- सु पंत जीवन और साहित्य- शान्ति जोशी - पृ- 196
2- पल्लव-पृ- 106
3- हिन्दी साहित्य- बीसवी शताब्दी - आ0 वाजपेयी पृ 156
4- पल्लव - आँसू- पृ- 13

उच्छ्वास में कवि असफल प्रेमी का उच्छ्वास छोड़ता है । 'आँसू' में वह निश्वास आँसू के रूप में बह निकला । दोनों कविताएँ अनुभूत तथ्य के आधार पर लिखी जाने के कारण अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं।

परन्तु लगता है कि बचपन से प्रकृति के सौन्दर्य और सुकुमारता के बीच उल्लासित कवि के मन में अब भी उस संस्कार का भाव निहित है । 'आँसू' में वह विरह जन्य दुख के कारण संत्रस्त होकर भी सुन्दरता को भूल नहीं सका -

हाय मेरा जीवन
प्रेम और आँसू के कन ।
आह मेरा अक्षय-धन,
अपरिमित सुन्दरता और मन।
एक वीणा की मृदु-झंकार
कहाँ है सुन्दरता का पार । -1

गुंजन :

गुंजन का प्रकाशन मार्च '32 में हुआ। यद्यपि कवि की यह कृति प्रकृति काव्य के अंतर्गत रखी जा सकती है तथापि इसमें कवि का प्रकृति-चिन्तन मनुष्य और प्रकृति के सामाजीकरण के रूप में उभर आया है । यहाँ समाजवाद की ओर कवि का झुकाव एक हद तक देखा जा सकता है।उदाहरण के लिये कवि को लगता है कि 'चाँदनी' का उर भी दुख से जर्जर हो गया है, वह भी नवजीवन का वर पाने के लिये तपस्या कर रहा है । 'पल्लव' के कवि के समान यहाँ भी कवि दुःख को सहने में आत्मशुद्धि की आवश्यकता पर बल देता है । तब दुख भी मधुर हो जाता है -

दुख इस मानव आत्मा का
रे नित का मधुमय भोजन,
दुख के तम को खा-खा कर
भरती प्रकाश से वह मन, -2

1- पल्लव - पृ- 19
2- गुन्जन- पंत पृ 20

हम जीवन को सुख दुःख में विभाजित कर हर्षित-विमर्षित होते हैं किन्तु जीवन इन अपेक्षित सीमाओं से निर्लिप्त एक अखण्ड प्रवाह है।

सुख दुख के पुलिन डुबा कर
लहराता- जीवन सागर -1

पल्लव की 'परिवर्तन' कविता में कवि का विश्वास यह था कि संसार में कोई भी चीज़ स्थायी नहीं है। कवि की खोज यह थी कि इस अनित्य जगत में कोई नित्य सत्य है या नहीं। कवि ने इसके लिये दर्शन शास्त्र का सहारा लिया था। यह प्रश्न आध्यात्मिक और सांसारिक दोनों क्षेत्रों में उठा था। गुंजन में कवि इसका समाधान पाता है देखिए -

अस्थिर है जग का सुख दुख
जीवन ही नित्य चिरंतन।
सुख दुःख से ऊपर मन का,
जीवन ही रे अवलम्बन। -2

कवि को यह 'नित्य सत्य' जीवन की अखण्डता एवं व्यापकता में मिल गया। जीवन ही अपनी अखण्डता में महान और चिरन्तन वास्तविकता है। जीवन की चिरन्तन वास्तविकता का भान तब लग जाता है जब जीवन में सुख और दुःख का सामंजस्य होगा। कवि की सुख-दुख की यह सापेक्ष अनुभूति ही उसके जीवन में एक नवीन आशा का संचार कर देती है।

जग जीवन में हैं सुख दुख
सुख दुख में हैं जग जीवन - 3

इस लिए कवि जीवन में दुःख की आवश्यकता पर बल देता है। सुख मय जीवन से मनुष्य अवश्य वाह्य सन्तोष का अनुभव करता है परन्तु वह अंतर्जगत की गरिमा का महत्व नहीं जानता। दुःख ही मनुष्य को अधिक संवेदनशील बनाता है हृदय को विस्तृत करता है। दुख से अन्तः शुद्धि और आत्मत्याग की प्रेरणा मिलती है।

1- गुंजन - पंत ~~वही वही~~ पृ - 20
2- वही वही पृ- 20
3- वही वही पृ0 18

कवि की यह धारणा ही उसे आत्मसाधना की ओर ले जाती है । कवि मानता है कि आत्मसाधना से ही लोकसाधना संभव है । व्यक्तिगत स्तर पर सुख-दुःख का जो समन्वय आत्मसाधाना है वही सामाजिक स्तर पर लोक साधना है । लोक साधना की दृष्टि से कवि कहता है-

जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित है अति सुख से
मानव जग में बाँट जावें
दुख सुख से और सुख दुख से -।

दुख वास्तव में मधुमय है, जाज्वल्यमान है क्यों कि उसके तम को खाकर मन प्रकाशमान हो जाता है । कवि दुख को अपनाना चाहता है, परन्तु कवि अब भी उसे अपनाने में समर्थ नहीं हुआ ।

वन की सुखी डाली पर
सीखा कलि ने मुसकाना,
मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना । -2

परन्तु कवि का दृष्टिकोण वास्तव में समाज के नव-निर्माण के लिये ललायित है । यह मानव जीवन अपूर्ण है । समाज की नयी पीढ़ी नये जीवन के लिये उन्मन है । कवि भी अपने मनोजगत के जिस सुरम्य लोक को साकार देखना चाहता है उसे पृथ्वी पर प्रत्यक्ष न पाकर उन्मन और विकल है । इस मानव-जीवन को पूर्ण बनाने के लिये एक तरफ, सांस्कृतिक स्तर पर उत्थान आवश्यक है, मानव -मानव की आत्मसाधना और अन्तः जगत का विकास अनिवार्य है । इस 'अंतः प्रकाश से घुली मिली आत्म कल्याण एवं मानव कल्याण की वह भावना भी है, जिसके कारण ही 'गुञ्जन' का स्वर स्निग्ध, अक्लुष आनन्द का स्वर बन गया है । -3

1- ~~वही वही~~ गुञ्जन - पृ0 16
2- वही वही पृ0 21
3- सु0 पंत - जीवन और साहित्य -शांति जोशी पृ0 293

'गुंजन' में प्रकृति और उसका सौन्दर्य ही उन्हें इस आह्लाद और हर्ष के लिये प्रेरणा देती है । प्रकृति को हर्षित -प्रफुल्लित देख कर कवि का मन भी नव-नव इच्छाओं से भर जाता है । इस लिये इस काव्य में मनुष्य और प्रकृति में तादात्म्य दर्शित होता है । पंत ने बड़ी कुशलता के साथ प्रकृति सौन्दर्य का अंकन किया है और वैसी ही निपुणता के साथ ही मानवीय सौन्दर्य का अंकन किया है । पंत काव्य में कहीं प्रकृति मानवी बन गयी है कहीं मानव का प्रकृतीकरण हुआ है, एक उदाहरण देखिये -

मुसकुरा दी थी क्या तुम प्राण ।
मुसकुरा दी थी आज विहान ?
आज गृह-वन-उपवन के पास
लोटता राशि राशि हिम-हास,
खिल उठी आंगन में अवदात
कुन्द कलियों की कोमल प्रात । -1

लगता है कि गुंजन में आकर कवि की कल्पना अधिक संयमित हो गयी है और उसके सौन्दर्य-बोध में अधिक प्रौढ़ता आ गयी है । प्राकृतिक दर्शन में एक विशिष्ट जीवन-दर्शन को खोजने का प्रयास यहां देखा जा सकता है । प्रारंभ कालीन शिशु-सुलभ आकांक्षा शान्त करने के लिये, बाद में कवि का प्रौढ़ मन मनन-रत है । इसके परिणामस्वरूप पंत के प्रकृति चित्रण में एक रहस्यमयी चेतना की अभिव्यक्ति होने लगती है । वह प्रकृति के कण-कण में एक अज्ञात सत्ता का भान करने लगता है ।-

रिक्त होते जब जब तरु-वास
रूप धर तू नव-नव तत्काल
नित्य नादित रखता सोल्लास
विश्व के अक्षय वट की डाल -2

कवि जीवन और जगत को नियंत्रित करनेवाली एक शक्ति पर विश्वास करता है । प्रकृति के प्रति कवि का यह दृष्टिकोण प्राकृतिक रहस्यवाद कहा जा सकता है । यहाँ प्रकृति के प्रति कवि का दृष्टिकोण सत्ता का न होकर

1- गुंजन - पंत - पृ0 -46
2- वही - वही - पृ0 -[illegible]

दार्शनिक का है, उपासक का न होकर विचारक एवं साधक का है। 'पहले जहाँ मानव का चित्रण प्रकृति से अभिभूत था वहाँ अब प्रकृति का मानव की कल्पना से अभिभूत है। आरंभ में प्रकृति पंत की जीवन साधना रही है और अब वह उनकी जीवन साधना का माध्यम बन रही है।'-1

चिन्तनशील तथा प्रकृति प्रेम की अनुभूतियों से उत्फुल्ल कविताओं के अतिरिक्त 'गुंजन' में 'भावी पत्नी के प्रति' तथा 'अप्सरा' नामक दो तीन कविताएँ मिलती हैं जिसमें कवि की सुकुमार अतीन्द्रिय भावना और सौन्दर्य का पुट मिलता है। किन्तु इसकी और एक विशेषता यह है कि इसमें वासनाजन्य प्रेम का स्पर्श नहीं है। अतएव गुंजन में आकर उनकी सौन्दर्य कल्पना में भी गांभीर्य आ गया है। कवि जहाँ नारी रूपपर प्रकृति सौन्दर्य का आरोप करता है वहाँ नारी की रहस्यमयी शक्ति तथा भास्वर सौन्दर्य का अलौकिक अंकन कर सका है। नारी का केवल बाह्य सौन्दर्य ही नहीं उसकी आन्तरिक शोभा सुषमा ही कवि को आकर्षित करती रही। इसलिए पंत की कविताओं में सौन्दर्य की मांसल निविड़ता कम दृष्टिगोचर होती है। शान्तिप्रिय द्विवेदी जी के शब्दों में 'कवि का सौन्दर्य संकुचित नहीं, उसमें जीवन की समष्टि सुषमा का समावेश है। देह से लेकर आत्मा तक व्यक्ति से लेकर विश्व तक क्षणों से लेकर दिगन्त तक के सचेतन निर्माण की सुपरिणति सौन्दर्य में है।' -2

ज्योत्सना :-

यह पंत की प्रतीकात्मक नाटिका है। परन्तु काव्य के विश्लेषण, विवेचन के अवसर पर इसकी चर्चा अनिवार्य है क्यों कि आगे की कविताओं की पृष्ठ भूमि 'ज्योत्सना' नाटिका में लक्षित होती है। यद्यपि इसमें कवि की कोमल कल्पनाएँ सर्वाधिक रूप में जागरूक हुई हैं तथापि विचारक कवि का चिन्तन पक्ष भी इसमें स्पष्टतः झलक उठा है। पंत के स्वर्णकाव्य का चेतनात्मक वैभव तथा पृष्ठभूमि मुख्यतः ज्योत्सना ही में मिलती है। कवि ने कहा है 'मेरे काव्य-दर्शन की कुंजी

1- आधुनिक हिन्दी कविता का मूल्यांकन - इन्द्रनाथ मदान - पृ0 - 199
2- ज्योति विहग- शान्ति प्रिय द्विवेदी - पृ0 - 47.

निश्चय ही ज्योत्सना है ।' -1 'इस नाटक में पंत जी का मुख्य उद्देश्य भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय है । यह समन्वय उन्हें अन्तश्चेतना के माध्यम से सम्भव प्रतीत हुआ है और इसलिए 'अन्तश्चेतना' (Intuition) के महत्व पर उन्होंने विशेष प्रकाश दिया है ।'-2 सामाजिक यथार्थ और अध्यात्मवाद के समन्वय की प्रवृत्ति पंत जी में गुंजन काव्य से प्रकट है । जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति 'ज्योत्सना' में हुई है । ज्योत्सना के विषय में पन्त जी ने लिखा है - 'मैंने जीवन मुक्ति के लिए छटपटाती हुई अपनी जीवन-कामना तथा रंग-भावना को 'ज्योत्सना' के रूपक में अधिक व्यापक, सामाजिक, वैयक्तिक तथा मानवीय धरातल पर अभिव्यक्त करने की चेष्टा कर व्यक्तिगत जीवन-साधना के प्रति- जिसकी क्षीण प्रतिध्वनियाँ 'गुंजन' में मिलती है - विद्रोह प्रकट किया और अपने परिवेश की सामाजिक चेतना से असंतुष्ट होकर, एक अधिक संस्कृत, सुंदर एवं मानवोचित सामाजिक जीवन का स्वप्न प्रस्तुत किया ।' -3

'ज्योत्सना' पंत की प्रतीकात्मक नाटिका है। ज्योत्सना सम्राट इन्दु की पत्नी है जिसको इन्दु इस मंगलाशा से पृथ्वी का भार सौंपना चाहता है कि वह भूलोक में सुख और शांति का साम्राज्य स्थापित कर देगी ।

पंत का सुधारवादी दृष्टिकोण ज्योत्सना के अनेक कथनों में स्पष्ट झलकता है । कवि को लगता है कि मानव अपनी आध्यात्मिक आस्था का कोई भी मूल्य नहीं समझता है । भौतिकता की जड़ता में मानव जाती धँस गयी है । कवि ने यह बात 'ज्योत्सना' के मुख से इस प्रकार कहलवाई है :- 'मनुष्य जाति अपने ही मोदों के भुलावे में खो गई है । इस अनेकता के भ्रम को आत्मा की एकता के पाश में बांध कर, समस्त विभिन्नता को एक विश्व जीवन स्वरूप देकर नियंत्रित करना ही अनियंत्रित प्रकृति विकृति-मात्र है ।' -4

पंत ने इस नाटिका में और एक विचार प्रकट किया है कि मानव मन में जो

1- शिल्प और दर्शन - पंत - पृ0 - 131

2- पंत का काव्य दर्शन - प्रतापसिंह चौहान - पृ0 - 23

3- शिल्प और दर्शन - पंत - पृ0 - 93

4- ज्योत्सना - पंत - पृ0 - 36

पाशविक या आसुरी वृत्तियाँ जन्म ले रही हैं ; इसका शमन तभी हो सकता है जब हम प्रेम के उदात्त भाव को व्यापक रूप में अपनावें । स्नेह , करुणा, ममता आदि सद्भाव प्रत्येक व्यक्ति में निहित है, इनको जगाना चाहिए ।

जिस प्रकार पंत ने कोरे भौतिकवाद को घातक माना है उसी प्रकार आध्यात्मिक अतिवाद को भी वर्जनीय माना है । 'ज्योत्स्ना' में कवि ने इस सम्बन्ध में कहा है - 'इस युग के मनुष्य का ध्यान भूत प्रकृति की ओर गया है । संसार की भौतिक कठिनाइयों से परास्त होकर, उसके दुखों से जर्जर होकर, मनुष्य की समस्त शक्ति इस समय केवल बाह्य प्रकृति के अत्याचारों से मुक्ति पाने की ओर भागी है, जिसके लिए उसने भूत विज्ञान की सृष्टि की है । वह देश काल और भौतिक शक्तियों से संघर्ष कर रहा है । यह भूत प्रकृति ही उसके कष्टों का कारण या कुछ और भी इसका ठीक-ठीक निर्णय उसने नहीं कर पाया । मानव क्षेत्रों एवं विभागों को संगठित एवं सीमित कर अपने आन्तरिक जीवन के लिए उदासीन होकर मनुष्य अपनी आत्मा के लिए नवीन कारा निर्मित कर रहा है ।' -1 अतएव निष्कर्ष यह निकला जा सकता है कि जीवन को शान्ति तथा सुख प्रदान करने के लिए भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय परम आवश्यक है । कवि न जगत को पूर्ण निषेधात्मक मानता है और न उसकी पूर्ण स्वीकृति में विश्वास करता है । उसे इस सुख-दुःखात्मक जगत से अत्यंत अनुराग है । वह राग और विराग के समन्वय का पक्षपाती है । 'इन्हीं राग और विराग की लहरों पर पंत जी का तन, मन, प्राण सदा लहराता रहा है । पंत जी की पंक्ति-पंक्ति में, कविता-कविता में, रचना-रचना में इसी राग और विराग की लय मौजूद है, और यही लय मौजूद है उनके जीवन की हर घड़ी में, हर अवस्था में, हर दशा में । मुझे इसी राग-विराग की लय, इसी के संभोग, इसी के संघर्ष और इसी के संतुलन में पंत के जीवन और काव्य की कुंजी मिली है ।' -2

1- ज्योत्स्ना - पंत - पृ0 - 5।

2- पल्लविनी - भूमिका - बच्चन - पृ0 - 37.

2- समाज बोध का युग

युगान्त :

'गुंजन' का कवि 'युगांत' में बाह्य जीवन के कुछ और भी निकट पहुँच गया है। 'युगान्त' में पिछले युग की समाप्ति और नवयुग के आगमन का अभिनन्दन है। इसलिए कवि अपने गीत खग से कहता है कि तुम जगत के जनपथ कानन में अनादि गान गाओ और चिर शून्य, शिशिर पीड़ित जग में अपने अमर स्वरों के प्राण - स्पन्दन भर दो, जिससे कि मानव स्वप्न से जागेंगे और जीवन के निशीथ में प्रभात की ज्वाज्वालमान किरण बिखर पड़ेगी -

जगती के जन - पथ कानन में
तुम गाओ विहग,' अनादि गान
चिर शून्य शिशिर पीड़ित जग में
निज अमर स्वरों से भरो प्राण। -1

यहाँ कवि आनन्द का पूर्ण प्रसार सब कहीं देखना चाहता है। जीवन में आनन्द और उल्लास को ही स्वीकार करने वाला कवि युगांत में आकर जीवन के कुत्सित अथवा असुन्दर पक्ष से भी परिचित हो गया। कविता के स्वप्न भवन को छोड़कर कवि खुरदुरे यथार्थ पथ पर खड़ा हो गया। समाज की शोषित जनता की भावनाओं पर कवि की आर्द्र दृष्टि पड़ी। कवि आशा करता है कि आगामी युगों में इन जड़ संस्कृतियों का अन्त होगा और समरसता की स्थापना हो जाएगी, जीवन मंगलमय हो जाएगा। कवि का विश्वास है कि-

ये डूबेंगी - सब डूबेंगी,
पा नव मानवता का विकास
हँस देगा स्वर्णिम वज्र लोह,
छू मानव - आत्मा का प्रकाश। -2

प्रकृति और मनुष्य के बीच का सम्बन्ध चिर पुरातन है। अतएव 'युगांत' का कवि प्रकृति सौन्दर्य के सामने मनुष्य को नहीं भूलता। यहाँ वह मानव - प्रेमी

1- युगांत - पंत - पृ0 - 23
2- युगांत - पंत - पृ0 - 25

भी है। वह देखता है कि प्रकृति के प्रफुल्लित प्रमुदित रूप के आगे मानव-मुख अब भी म्लान और फीका है। मानव श्री हीन बन गया तथा मानव की संस्कृति विकृत बन गयी जिससे कि मनुष्य-मनुष्य के बीच की एकता तथा स्नेह सम्बन्ध नष्टप्राप्त हो गया है। इतना ही नहीं :-

मानव जग में गिरि कारा सी
गत युग की संस्कृतियाँ दुर्धर
बंदी की है मानवता को
रच देश जाति की भित्ति अमर। -1

इन जर्जरित जीवन की भित्तियों को तोड़कर एक दिन प्रकाश की किरण फूटेगी, इस पृथ्वी पर मानव स्वर्ग की स्थापना करेगा। परन्तु इसकी कल्पना मानव तभी कर पायेगा जब पशु मानव में मनुष्यत्व का विकास होगा। प्रत्येक मनुष्य का आदर करना उसके अस्तित्व और मूल्य को समझना, लोक मंगल की दृष्टि से अनिवार्य है। पंत का यह दृष्टिकोण ही उन्हें महात्मा गाँधी के आदर्शों तथा सिद्धान्तों की ओर ले गया। उनकी दृष्टि में गाँधी जी युग द्रष्टा थे और वे सत्य की खोज करने यहाँ आए, इस जर्जरित युग में एक महान आत्मा के रूप में वे अवतरित हुए। मानव कल्याण तथा लोक मंगल की भावना लेकर वे भारत की जनता के बीच कर्म निरत रहे। अपनी इस साधना को लक्ष्य पर पहुँचाने के उद्देश्य से उन्होंने सत्य, अहिंसा आदि आदर्शों को अपना लिया -

इस भस्मकाय तन की रज से
जग पूर्णकाम नव जग जीवन
बीनेगा सत्य अहिंसा के
ताने बानों से मानवपन - 2
पशुबल की कारा से जग को
दिखलाई आत्मा की विमुक्ति
विद्वेष घृणा से लड़ने को
सिखलाई दुर्जय प्रेम युक्ति। -3

1- ~~वही - वही~~ युगांत - पंत - पृ० - 25

2- वही - वही - पृ० - 61

3- वही - वही - पृ० - 63

यहाँ पंत की यह विशेषता लक्षित होती है कि वे जितने अधिक प्रकृति पर मुग्ध हैं उतने ही इस मानव-जीवन पर भी। पंत मानते हैं कि इस जगत में सब से अधिक सुन्दर सृष्टि मानव ही है। मानव, सुमन, विहग या अन्य किसी भी जीव से उत्कृष्ट है, पावन है -

सुंदर है विहग, सुमन सुंदर,
मानव तुम सबसे सुंदरतम,
निर्मित सब की तिल सुषमा से,
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम। -1

युगान्त में कवि पंत के विचारात्मक रचनाओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी कविताएँ भी हैं जो प्रकृति-प्रेम से उदभूत उत्कृष्ट विचारों का द्योतन करती हैं। वे हैं 'वसन्त', 'तितली', 'संध्या', 'शुक्र', 'छाया', 'बाँसों का झुरमुट' आदि। परन्तु यहाँ उनके प्रकृति-प्रेम में कुछ अंतर आ गया है। युगान्त में प्राकृतिक दृश्यों के मात्र ऐन्द्रिक चित्र उपस्थित कर कवि सन्तुष्ट नहीं होता, यहाँ वह प्रकृति के रूप चित्रण के साथ ही प्रकृति के तात्त्विक सत्य पर प्रकाश डालता है। बाह्य प्रकृति की अन्तरात्मा को पहचानने के लिए कवि उत्सुक है। उदाहरण के लिए, तितली इस प्रकार क्यों उल्लसित है, इस प्रश्न का उत्तर कवि ने यों दिया है - 'वह स्वर्ग छिपा उर के भीतर।'-2 इस प्रकार कवि मनुष्य में भी ईश्वरीय शक्ति का दर्शन करता है -

मानव दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन
वह न देह का नश्वर रज - कण। -3

यद्यपि 'युगान्त' में कवि मानव जीवन के कुत्सित पक्षों का अवलोकन करता है तथापि वह दुखवादी नहीं बनता। वह आशावाद और मानवतावाद पर बल देता है। प्रकृति के समान मानव को भी हृदयोल्लास से रहने का आह्वान वह देता है। 'अँधियाली घाटि' में खद्योत जिस प्रकार अपने 'हरित स्फुलिंग' को विकीर्ण करता है उसी प्रकार जीवन के घने अन्धकार में मानव अपनी आत्मा का प्रकाश फैला करे, यही इच्छा कवि प्रकट करता है। इस प्रकार प्रकृति के प्रतीकों के द्वारा मानव व्यक्तित्व को प्राणान्वित करने के लिए कवि प्रयत्न करता है।

1- ~~वही - वही~~ युगांत - पंत - पृ० - 55
2- वही - वही - पृ० - 58
3- वही - वही - पृ० - 17

'बाँसों का झुरमुट' कविता में चिड़ियाँ की टी-वी-टी-टुट्-टुट् शब्द, जीवन-कर्म से श्रांत-क्लांत लोक समुदाय पर, संध्या के एकांत में, मंगल आशीर्वाद की वृष्टि करते है।

इस प्रकार 'युगांत' की कविताएँ मानव-जगत की मंगलाशा से ओत-प्रोत है। 'इन कृतियों में कवि जगत के जीर्ण उद्यान में मधु-प्रभात लाने की शुभाकांक्षा बार-बार करता है। वह मानवता के विकास द्वारा जीवन की पूर्णता स्थापित करने की शुभेच्छाओं से आकुल है।' -1

युगवाणी :

'युगवाणी' का प्रकाशन सन् 1939 में हुआ। 'युगान्त' के बाद इस में पन्त के समाज चेतना को स्पष्ट वाणी देने का सफल प्रयास हुआ है। इसके युग-जीवन को स्पष्ट देखा है, परन्तु कवि ने कभी भी प्रगतिवाद का सहारा लेकर चलने का प्रयास किया नहीं था। "जिन लोगों ने पंत काव्य को ऐतिहासिक क्रम से नहीं देखा है, उनके मन में यह प्रभाव है कि पंत जी पहले कल्पना के कवि थे, तब वे मार्क्सवादी हो गए, और वे मार्क्सवाद से भी निराश हो जाने पर मन से वे पांडिचेरी में वास करने लगे है। किन्तु यह मत मुझे निराधार मालूम होता है।------------पंत जी के विचारों में आकस्मिक परिवर्तन कभी नहीं आता। कम से कम उनके विचारों में क्रांति जैसी कोई घटना नहीं हुई है। वे स्वाभाविक गति से वर्धित और विकसित होते रहे है।----------युगवाणी उस अभियान की पहली सीढ़ी है जो अब 'स्वर्णकिरण' 'उत्तरा' और 'अतिमा' तक पहुँच चुका है।2

यहाँ वे वर्तमान जीवन को विभीषिकाओं की समाप्ति चाहते हैं और इस प्रकार एक नवीन युग की प्रतिष्ठापना के लिए मानव के अन्तर्मन की शुद्धि और साधना के महत्त्व को स्वीकार करते है। एक सुव्यवस्थित सांस्कृतिक पीठिका के निर्माण के लिये प्रत्येक व्यक्ति को इस प्रकार की साधना करनी चाहिये। युगान्त युगवाणी, ग्राम्या आदि कृतियों के रचना काल में पंत जी को अनेक नवीन सामाजिक

1- सु0 पन्त डॉ० नगेन्द्र - पृ 123

2- पंत, प्रसाद, मैथिली शरण-दिनकर पृ0 101-102

सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विचारों ने प्रभावित किया है। इसीलिए मार्क्स और गांधी दर्शन से प्रभावित कवि में भौतिक जीवन की समस्याओं के प्रति सजगता तथा लोक मंगल की कामना सर्वत्र परिलक्षित होती है। मार्क्स दर्शन से प्रभावित होकर कवि आध्यात्मिक भौतिकवाद का समर्थन करता है। चिदंबरा की भूमिका में उन्होंने लिखा है - 'मेरी दृष्टि में युगवाणी से लेकर वाणी तक मेरी काव्य चेतना का एक ही संचरण है, जिसके भौतिक और आध्यात्मिक चरणों की साधकता द्विपद मानव की प्रगति के लिए सदैव ही अनिवार्य रूप से रहेगी।' कवि ने मानव जीवन के विकास के लिए भौतिक आध्यात्मिक दोनों मूल्यों की अनिवार्य आवश्यकता बतलाई है -

भूतवाद उस धरा स्वर्ग के लिए मात्र सोपान,
जहाँ आत्मदर्शन अनादि से समासीन अम्लान। -2

इस प्रकार भौतिकवाद और आध्यात्मवाद का समन्वय ही कवि का ध्येय है। वे न कोरे मार्क्सवादी हैं अथवा कोरे गांधीवादी। भौतिकवादी विचारधारा का समर्थन करते समय भी कवि अन्तर्मुखी बन जाता है। क्योंकि मार्क्सवाद को अपनाने से विश्व की क्षति हो जाती है। मार्क्स साधना की शुद्धि पर बल न देकर साध्य की सिद्धि पर अधिक बल देते हैं। मार्क्स की यह क्रान्तिकारी भावना कवि को अभीष्ट नहीं है। स्पष्ट है कि पन्त कट्टर मार्क्सवादी नहीं है। मार्क्स का आदर्श ग्रहण करने पर भी वे समाज का कल्याण शान्तिपूर्ण रीति से चाहते हैं। सामाजिक, आर्थिक जीवन के परिवर्तन के साथ मनुष्य की अन्तश्चेतना का परिवर्तन होना आवश्यक है। गांधीवाद, आंतरिक संगठन, आत्म-विकास, आत्म बोध आदि के लिए आवश्यक साधन है तो मार्क्सवाद सामाजिक एवं बाह्य संगठन के लिए। मानव अपनी संस्कृति और मन के क्षेत्र में आत्मोत्कर्ष लाने से ही भू जीवन को वरेण्य, सुन्दर तथा मंगलमय बना सकता है। अवास्तविक, पारलौकिक समाज-निरपेक्ष गगनचुम्बी आदर्श व्यर्थ और त्याज्य है। इस प्रकार युगवाणी जैसी

1- चिदंबरा - पंत - भूमिका - पृ0 - 20
2- युगवाणी - पंत - पृ0 - 19

मध्यवर्ती रचनाओं में कवि जीवन के सामाजिक धरातल पर उतर आया, युगवाणी तक आते आते वह कल्पना और सौन्दर्य की आकाशचुम्बी उड़ान छोड़ कर कवि के पैर जैसे यथार्थ के धरातल पर टिक जाये । रामचन्द्र शुक्ल जी का कहना है - शब्द चाटने वालों और गुलाब की रूह सूंघनेवालों को चाहे इसमें कुछ न मिले, पर हमें तो इसके भीतर चराचर के साथ मनुष्य के संबन्ध की बड़ी प्यारी भावना मिलती है । 'शंखा में नीम' का चित्रण भी बड़ी स्वाभाविक पदधति पर है । पंत जी को 'छायावाद' और 'रहस्यवाद' से निकल कर स्वाभाविक स्वच्छंदतावाद की ओर बदलते देख हमें अवश्य संतोष होता है । -।

'युगवाणी' में कवि का मन अवश्य ही लोकमंगल तथा सामाजिकता की ओर प्रवृत्त रहा है । वह नये युग के निर्माण के लिये जन-संगठन तथा परिश्रम की आवश्यकता पर भी बल देता है । इस जगत के छोटे से छोटे कीड़े भी अपने जीवन में परिश्रम करते है । चींटी कविता में कवि ने यही संदेश दिया है-

वह सरल विरल, काली रेखा
तम के तागे-सी जो हिल डुल
चलती लघुपद पल पल मिल जुल
वह है पिपीलिका पाँति । - 2

प्रस्तुत काव्य संग्रह में कवि नारी-जागरण पर भी जोर देता है । नारी समाज का एक अंग है- वह केवल प्रेम और राग की पिटारी मात्र नहीं है वह मन से पवित्र तथा पावन है । नर और नारी के सम्बन्ध को मात्र रागात्मक धरातल पर आंकना उचित नहीं है । दोनों का सम्बन्ध उच्च धरातल पर, किसी विशिष्ट साधिकता का रूप धारण करता है अतएव इसे मानवता के विकास तथा विश्व कल्याण का सोपान मानना चाहिये -

---

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास- पृ- 679
2- युगवाणी पंत पृ0 27

मुक्त करो नारी को मानव
चिर बंदिनी नारी को,

x x x

पुरुष वासना की सीमा में
पीड़ित नारी जीवन

xx x x

उसे मानवी का गौरव दे
पूर्ण सत्य दो नूतन
उसका मुख जग का प्रकाश हो
उठे अंध अवगुण्ठन । -1

इन कविताओं के अतिरिक्त 'युगवाणी' में विविध विषयक कतिपय रचनाएं भी हैं । 'अनामिका के कवि के प्रति' तथा 'आचार्य द्विवेदी के प्रति' ये कविताएं निराला और द्विवेदी से उनके उन्मुक्त सौहार्द तथा आदर की सूचक हैं। 'पुण्य प्रसू', 'पलाश के प्रति', 'ओस के प्रति' 'गंगा का प्रभात' 'कविता, ग्रैया पापी', 'बदली का प्रभात,' 'जलद' आदि भावात्मक रचनाएं हैं और चित्रात्मक कविताओं की भी कमी नहीं हैं । 'गंगा की सांझ' तो स्पष्ट रूप से चित्रात्मक और सैद्धान्तिक है । इसप्रकार चित्रण और चिन्तन की समन्वयात्मक अभिव्यक्तिकरने में भी 'युगवाणी' का कवि दक्ष है । अस्तु मुख्यतः युग का जीवन दर्शन प्रस्तुत करना ही चाहे वह आध्यात्मिक हो या भौतिक उसका ध्येय लक्षित होता है । परन्तु इन सैद्धान्तिक विचारों में कोई छिछलापन या दिखावा दिखाई नहीं पड़ता । कवि का उद्देश्य राजनीति न रह कर लोक-जीवन की मंगल कामना है । इन रचनाओं में जो विचार अभिव्यक्त हुआ वह न तो अत्याधिक है या आश्चर्यजनक । कवि के अंतरतम मन में उदित इस विचारधारा को युगवाणी में वाणि मिली अतएव इसने समस्त जनता को एक दिशा संकेत का कार्य किया । देश के स्वाधीनता संग्राम और सामूहिक जीवन में मार्क्स के साम्यवादी भावना ने एक नयी मान्यता प्रदान कर दी

1- युगांत-युग वाणी - पृ0 64

यह प्रगतिकामी दृष्टि वास्तव में मानवता की प्रतिष्ठा तथा सत्य को यथार्थ की पीठिका में प्रतिष्ठित करने का महान् उद्देश्य लेकर चलती है।

ग्राम्या :

'ग्राम्या' पंत की 39 - 40 में रचित कविताओं का संकलन है। ग्राम-जीवन और ग्राम-मानस से सम्बन्धित विचारधारा की अभिव्यक्ति इसमें हुई है। ग्राम जीवन की विकृति और बीभत्सता को उन्होंने पैनी दृष्टि से देखी। उन्होंने अपने को ग्राम जीवन का एक अविच्छिन्न अंग बनाकर जनता की विषमताओं कठिनाइयों को दूसरों के सामने रखने का सफल प्रयत्न किया है। आचार्य शांतिप्रिय द्विवेदी के शब्द में 'ग्राम्या सचमुच जन-साहित्य है। पंत ने जिस सजीवता, स्वाभाविकता और विश से ग्राम जीवन और वहाँ की प्रकृति का चित्रण किया, उस सम्पूर्णता से द्विवेदी युग के कवि भी (जो मूलतः ग्रामीण थे) नहीं कर सके।[1] उस समय के गाँव के जीव का इतना यथार्थ, स्वाभाविक वर्णन अत्यन्त सहज तथा सुगठित रूप में अन्यत्र नह देख सकते। एक आदर्शपूर्ण, जन-मंगलकारी विचारधारा से ओत-प्रोत यह काव्य सचमुच कवि की विशिष्ट देन है।

'ग्राम्या में एक ओर गाँव के उल्लास, उत्सव और त्योहारों का वर्णन है तो दूसरी ओर वहाँ के दुख-दारिद्र्य का हृदयद्रावक चित्रण है। ग्राम्या का प्रमुख ध्येय दरिद्रनारायण की परिस्थितियों पर अच्छा प्रकाश डालकर उसके कल्याण के लिए सामूहिक प्रयास करने की अनिवार्यता पर बल देना है।[2] ग्रामीणों के दुःख दारिद्र्य से कवि का मन अत्यन्त व्याकुल हो उठता है, वह किसी न किसी प्रकार दुःख का दमन तथा जनता का उद्धार करना चाहता है। जनता के रूढ़ि-रीति जर्जर जीवन का कवि केवल चित्रण मात्र न करता है, वह इसका कारण मानवता के सुप्त सामाजिक बोध बताता है —

> मानवता अब तक देश काल के थी आश्रित,
> संस्कृतियाँ सकल परिस्थितियों से थीं पीड़ित।
> गत देश काल मानव के बल से आज विजित,
> अब खर्व विगत नैतिकता मनुष्यता विकसित।[3]

1- ज्योतिविहग - द्विवेदी - पृ० - 334

2- सुमित्रानंदन पंत जीवन और साहित्य - शांति जोशी - पृ० - 423

3- ग्राम्या - पंत - पृ० - 62.

पंत ने सामूहिक व्यक्तित्व के जागरण का सन्देश 'ग्राम्या' में दिया है।

> पुंधे घरौंदों में मिट्टी के, अपनी-अपनी सोच रहे जन,
> क्या ऐसा कुछ नहीं, फूँक दे जो सब में सामूहिक जीवन ? -1

प्रकृति और सौन्दर्य के कवि 'ग्राम्या' जैसी मध्यवर्ती रचना में मानव और मानवता के कवि बन गया है। पन्त के लिए गाँव का जीवन नवीन नहीं है परन्तु वहाँ के दुःख-दर्द से वे परिचित नहीं थे। दूसरे विश्व-युद्ध के बाद संपूर्ण भारत में फैले अकाल और दुर्भिक्ष, और तज्जन्य सांस्कृतिक पतन ने कवि को सचेत किया। 'ग्राम्या' में उन जर्जरित पीड़ित मानव जाति का चित्रण है, जो जीवन्मृत है। उस समय का सर्वहारा वर्ग कृषक है। कवि अपने आशावादी स्वर से इस जनता को भवि की ओर देखने की प्रेरणा देता है। उद्बोधन कविता में कवि ने गाया है —

> खोलो जीर्ण विश्वासों, संस्कारों के शीर्ण वसन,
> रूढ़ियों रीतियों, आचारों के अवगुंठन,
> छिन्न करो पुराचीन संस्कृतियों के जड़ बंधन,
> जाति वर्ण, श्रेणी वर्ग से विमुक्त जन नूतन
> विश्व सभ्यता की शिलान्यास करो भव शोभन,
> देश राष्ट्र मुक्त धरणी पुण्य तीर्थ हो पावन।
> मोह पुरातन का बाधना है। वासना दुस्तर,
> खोलो सनातनता के शुष्क वसन
> नारी नर। -2

'ग्राम्या' के रचनाकाल में पंत मार्क्स की विचारधाराओं से अत्यधिक प्रभावित हुए थे। वे मार्क्सवाद को इसलिए स्वीकार करते हैं कि 'विज्ञान-ज्ञान' के सामूहिक सदुपयोग के लिए इस आदर्श की स्वीकृति अनिवार्य है, साथ ही साथ पंत यह भी मानते हैं कि सामूहिक जीवन के कल्याण के लिए व्यक्ति और व्यक्ति साधना के महत्व का समर्थक गान्धीवाद आदेश रहेगा।

(ड) आध्यात्म चेतना का युग

ग्राम्या तक की पंत की मध्यवर्ती रचनाओं में ऐतिहासिक भौतिकवाद के दर्शन हम कर सकते हैं। वे इस दृश्य जगत के आर्थिक, सामाजिक, नैतिक

1- ~~वही वही~~ ग्राम्या पंत - पृ - 67

2- ग्राम्या पंत पृ -99

उन्मयन को मान्यता देकर, मानव समूह की प्रगति का स्वप्न देखते है और नूतन मानवता का निर्माण तथा नये युग की स्थापना चाहते है। भारत की वर्तमान दुर्दशा का नाश और उसके स्थान पर स्वर्णिम युग की प्रतिष्ठा करने का आह्वान वे ऊंचे स्वर मे करते रहते है। 'इस विकृत और अत्याचारपूर्ण स्थिति को देख कर भी कवि के हृदय मे कोमलता की शक्ति की जय का भाव प्रबलता पूर्वक उदित हुआ है। उसने हिंसा का विरोध किया है, उसने जड़ता का विरोध किया है। उसने मनुष्य के विभेदों का विरोध किया है। xxxx वह ऊर्ध्वमानव और 'मनुष्यत्व' के भावी रूप दर्शन के आनन्द से ज्योतित हो उठा है, स्थान-स्थान पर उसी चेतन मानव की कल्पना के मधु से उसके काव्य का कटु भी मधुर हो उठा है।[1] इस विचार धारा को पुष्टि के लिये कवि ने अरविंद दर्शन को स्वीकार कर लिया। उसके परवर्ती स्वर्णकाव्य पर अरविन्द दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित है।

कवि का विश्वास है कि युग की प्रगति और सुधार के लिये केवल लोक संगठन का कार्य अपेक्षित नहीं है, व्यक्ति को अपने मन संगठन पर भी ध्यान देना है। तभी लोक-जीवन सुव्यवस्थित तथा शान्तिपूर्ण बन जायेगा। राजनितिक आन्दोलन सांस्कृतिक आन्दोलन मे बदल जायेगा। इस का उद्देश्य यह होना चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी भीतरी चेतना के विकास के लिये प्रयत्न करते रहे। अरविंद के दर्शन का भी यही उद्देश्य दिखाई पड़ता है।

अरविन्द ने सक्रिय राजनीतिक संघर्षों को त्याग दिया, विप्लव और आक्रमण से बिलकुल दूर रहने का प्रयास किया। वे आदर्शवादी दार्शनिक एवं संपूर्ण योग के प्रचारक बन गये थे। अरविन्द दर्शन पंत की विचारधारा के अनुकूल सिद्ध हुआ। कवि ने स्वयं लिखा है 'अरविन्द को मै इस युग की अत्यन्त महान तथा अतुलनीय विभूति मानता हूं। उनके जीवन दर्शन से मुझे पूर्ण सन्तोष हुआ। उनसे अधिक व्यापक ऊर्ध्व तथा अतल स्पर्शी व्यक्तित्व जिनके जीवन दर्शन मे अध्यात्म का सूक्ष्म, बुद्धि अग्राह्य सत्य, नवीन ऐश्वर्य तथा महिमा से मण्डित हो उठा है, मुझे दूसरा कहीं देखने को नही मिला।

1- सुं पन्त - काव्य कला और जीवन दर्शन - संपादिका शचिरानी गुर्टू - पृ. 18

विश्व कल्याण के लिये मैं श्री अरविन्द की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ। उसके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणु शक्ति की देन अत्यन्त तुच्छ है। अरविन्द का सिद्धांत संक्रान्ति काल के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा अमूल्य कार्य कर सकता है। इस युग में व्यक्ति की मानसिक दासता कभी भी टूट नहीं गई है इसलिये वह राजनीतिक क्षेत्र में मुक्ति का प्रयास करता आया है। अरविन्द का विश्वास है कि हमको पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये अथवा बाहरी और आन्तरिक स्वाधीनता को साथ-साथ पाने के लिये मन को ऊर्ध्व मुखी करना चाहिये।

अरविन्द के जीवन-दर्शन से कवि में एक परिपूर्ण तथा संतुलित अन्तर्दृष्टि उदय हुआ है। इस लिये कवि अरविन्द के आदर्शों का सहारा लेकर आगे बढ़ता है। 'ग्राम्या' के प्रणयन के बाद वे कुछ समय रोग ग्रस्त रहे। फिर उदय शंकर के संस्कृति-केन्द्र में रहते समय, उन्हें श्री अरविन्द के 'लाइफ डिवाईन' का प्रथम भाग पढ़ने का अवसर मिला। मन और मस्तिष्क से उन्हें कवि का उस समय थोड़ी सी शान्ति मिली। उसमें नूतन आशा तथा प्रेरणा का संचार हुआ। कवि को अरविन्द के जीवन दर्शन ने प्रेरणा तथा बल प्रदान किया। उसकी शंकाएँ दूर होने लगी और उसका आन्तरिक ज्ञान परिपुष्ट होने लगा। इतना ही नहीं अपनी उत्तरवर्ती रचनाओं के समय पंत जी के सामने अनेक प्रश्न थे, उनका उत्तर पाने के लिये अरविन्द के उपदेशों से उन्हें सहायता मिली। इस प्रकार कवि ने अपने जीवन में अरविन्द को आदर्श पुरुष मान लिया तथा अरविन्द दर्शन को अपनी भावना, कल्पना और साधना का अभिन्न अंग बना लिया।

यह भी ज्ञातव्य है कि अरविन्द के दर्शन से प्रभावित हिन्दी के एकमात्र कवि सुमित्रानन्दन पन्त हैं। जिन्होंने उसका बहुमुखी प्रचार अपने काव्य के माध्यम से किया। कवि का परवर्ती काव्य इसका उदाहरण है। अरविन्द दर्शन की ओर यह झुकाव आश्चर्य जनक या अप्रत्याशित नहीं है क्योंकि पहिले ही उसकी विचारदृष्टि में आध्यात्मिक चेतना का प्रस्फुटन हुआ है। और कहना होगा कि प्रौढ़ मन के अब गौरव के साथ उसे पा लिया। विश्व संक्रान्ति काल के बीच जन्मे और पले कवि एक न एक प्रकार संसार में शान्ति तथा व्यवस्था स्थापित करना चाहता था। अतएव युगानुरूप वह कहीं कवीन्द्र-रवीन्द्र ------

---

1:-, उत्तरा - प्रस्तावना :- पृ0 22-23

तथा स्वामी विवेकानन्द के आदर्शों से प्रभावित हो गया और उसने युगपुरुष गांधी तथा साम्यवादी मार्क्स को आदर्श नेता मान लिया, बाद में उससे भी बढ़कर योगी अरविन्द के दर्शन को अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये सर्वमान्य समझ लिया। कवि की आगामी रचनाओं इसी दर्शन से प्रभावित है। डा० सत्येन्द्र ने पंत के इस चरण के काव्य के सम्बन्ध में कहा है- इस महान कवि ने आज अपने काव्य के लिये कुछ विचार भूमि प्राप्त कर ली है। वह शुद्ध मानवता का पुजारी बन गया है और कोमल- मधुर कल्पनाओं से उसका काव्य मानव मन में सत्, प्रिय और शान्त किन्तु कर्मठ संकल्पों का उन्मेष कर रहा है। कवि की यह वाणी अवश्य ही कल्याणकारी सिद्ध होगी।-।

स्वर्ण किरण:-

इसका प्रकाशन सन् 1947 में हुआ। इसमें 38 कविताएँ संग्रहीत है। इसकी अधिकांश कविताओं में अरविन्द दर्शन की व्याख्या है। कवि के मन में रूढ़ मूल आध्यात्मिक चेतना 'स्वर्णकिरण' में प्रौढ़ रूप धारण करती है। इसके साथ ही कवि समाज, संस्कृति क्रान्ति मानवता के विकास आदि पर अपना विचार प्रकट करता है।

स्वर्ण शब्द चेतना का प्रतीक है और स्वर्ण किरण के रूप में ब्रह्म शक्ति का आरोप भूत जीवन में होता है तो वह अत्यन्त चैतन्य-मय तथा ज्योतिपूर्ण बन जाता है। 'स्वर्णकिरण की पहली दो रचना 'अभिवादन' और 'सम्मोहन' में कवि ने अरविन्द दर्शन के इस पक्ष को प्रस्तुतकिया है। स्वर्ण किरण के रूप में चेतना के उस ज्योति संस्पर्श से सारे जगत के अणु अणु पर चैतन्य व्याप्त हो गया-

जगे तरु, नीड़ सकल
खगों की भीड़ विकल
पवन में गीत नवल
गगन में पेख चपल -2

1- सु० पंत काव्य कला और जीवन दर्शन सं० शचीरानी गुर्टू -पृ० 189
2- स्वर्ण किरण पृ० -।

चेतनाओं में बिकीर्ण पड़ी है, उसमें विविधता

निर्गुण चेतना अथवा परमचेतना विविध होने पर भी एकता वर्तमान है।
'स्वर्णकिरण' की 'ऊषा' उसी परमचेतना का प्रतीक है -

लो वह आई विश्वोदय पर
स्वर्णकलश ब्रह्माजी पर धर।
ऊर्ध्व विवृत कर ज्योति-द्वार-पट,
ज्वलित रश्मियों की अंजलि भर। -1

उस परम चेतना का अस्तित्व सत्य शिव और सुंदर के बिना असंभव है।
वह विश्व में अवतरित होकर जीवन की विविध दिशाओं में मनुष्य की
विविध चेतनाओं को प्रभावित करती है। वह परम चेतना क्या है? -

विश्व चेतना में प्रकाश, तम,
परम चेतना में न द्वन्द्व भ्रम। -2

उस चेतना के संस्पर्श से प्रत्येक वस्तु एक विशिष्ट आभा और अनुपम सौन्दर्य
से प्रोद्भासित हो उठी है। ऊषा की झलक देखिए -

ऊषा की लाली से कल्पित नव वसंत के कोंपल,
सौरभ बाष्पों पर पुष्पों के शत रंग खिलते प्रतिपल।
शशि किरणों के नभ के नीचे, उर के सुख से चंचल,
तुहिनों की छाया वन कंपता रहता नित तारोज्वल। -3

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने अरविन्द दर्शन के उस मूल सिद्धान्त का विवेचन
किया है कि जड़ और चेतन दोनों ब्रह्म के चैतन्य तत्व से अनुस्यूत हैं। मात्र
आवरण और विक्षेप के कारण भेद हो गया है। जड़ में चेतन तत्व, इसी
विक्षेप तमस के रूप में परिव्याप्त है, उसके अवचेतन में प्रसुप्त है। ब्रह्म की चेतन
किरण जब उसको अपना स्पर्शदान देती है तो वह तमस नष्ट हो जाता है और
जड़ में अन्तर्निहित चैतन्य जाग्रत हो उठता है।

इतना ही नहीं उस परम शक्ति ने सारे जड़ चेतन जगत को अपूर्व सुन्दरता
प्रदान की और इसका कारण है कि प्रभु जगत को अत्यधिक प्यार करते हैं।
इस प्रकार जगत में नव जीवन, नव स्फूर्ति तथा नव-जागरण आलोक दिखाई

1- स्वर्णकिरण - पृ 5। 2- वही पृ0 175 3- वही पृ0 3।

पड़ता है। इस समय पृथ्वी की क्या दशा होती है इसकी अभिव्यक्ति कवि ने यों की है —

> जादू बिछा दिया जन भू पर
> तुमने सोने की किरणों की
> जीवन हरियाली बो बो कर
> फूलों से उड़ फूल, रंगों से
> निखर सूक्ष्म रंग उर के भीतर
> बुनती स्वप्न मधुर सम्मोहन
> स्वर्ण रुधिर से सुंदर धार-धार । -1

अरविंद का दर्शन समन्वय का समर्थक है। वे जगत और ब्रह्म को अलग नहीं करते। ब्रह्म के ही दो रूप है जीवात्मा और जगत। इसलिए उन्होंने भौति के साथ आध्यात्मिकता के सम्बन्ध पर बल दिया है। मानव को अपनी मानवता व गौरव समझ लेने के साथ ही उस आध्यात्मिक शक्ति का ज्ञान करना चाहिए और तभी वह जीवन में सुख और शान्ति प्राप्त कर सकता है। केवल भौतिक जीवन पर आधारित प्राणी भी एकाकी बनता है और इस प्रकार आध्यात्मिक प्राणी भी। अतएव आध्यात्म और भौतिकता का समन्वय आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। हमारे कवि ने 'स्वर्णकिरण' में आध्यात्मिक मानववाद की कल्पना सर्वत्र की है —

> जन मन के विकास पर निर्भर सामाजिक जीवन निश्चित,
> संस्कृति का भू स्वर्ग अमर आत्मिक विकास पर अवलंबित । -2

इस प्रकार कवि ने आध्यात्मिकता के परिवेश में भौतिकता की स्वीकृति को 'नव मानव जीवन' अथवा 'नव मानव संस्कृति' के रूप में स्वीकार किया है। वास्तव में आध्यात्मिकता और भौतिकता के समन्वय मे ही जीवन और संस्कृति की सम्यक् परिभाषा निहित है। पूर्ण मानव का लक्षण भी इसी समन्वय तत्व में निहित है। "पंत जी ने इन रचनाओं में मानव विकास के लिए अन्तर-विकास पर विशेष बल दिया है। अविकसित चेतना एकांगी होती है।

1- स्वर्ण किरण - पृ0 - 3

2- स्वर्णकिरण - पृ0 - 46

इसलिए उन्होंने भूत और चेतन, अध्यात्म और भौतिकता, हृदय और मस्तिष्क के समन्वय में पूर्ण मानवता का विकास माना है। -1

'स्वर्णकिरण' की 'इन्द्रधनुष' शीर्षक कविता में कवि ने यह बताया है कि जगत में आत्म चेतना की व्याप्ति के कारण जड़ और चेतन, परम चेतन (ब्रह्म) बनने की आकांक्षा से सतत ऊर्ध्वमुख है। वह अज्ञ, तमस और मृत्यु को पारकर अमृत होना चाहता है, ईश्वर होना चाहता है। अरविन्द का सिद्धान्त है कि परम चेतन (ब्रह्म) और चेतन (जीव) में कोई भेद नहीं, किन्तु जड़ता अथवा माया के कारण वह (जीव) ब्रह्म से भेद मान बैठा है। कवि ने इसका समर्थन यों किया है —

छोड़ो जड़ता छिन्न करो भव भेदों का तम
तुम हो मुझसे एक, एक तुम भूतों से सम। -2

'स्वर्णकिरण' की अन्तिम कविता में कवि ने राम और सीता की कहानी प्रतीकात्मक ढंग से वर्णित की है। एक रूपक काव्य का आधार इसको मिला है। कवि की प्रतिभा की अनुगूंज कविता में सर्वत्र परिलक्षित होती है। कवि ने कुशल ढंग से अरविन्द दर्शन को प्रस्तुत किया है। राम ब्रह्म का प्रतीक रूप है। सीता ब्रह्म की चेतन शक्ति है और राम से परिणीत भी है। रावण तो भौतिक जीवन का प्रतीक है जिसने ब्रह्म की शक्ति को दिव्य न माना। और ब्रह्म की चेतन शक्ति सीता को बन्दी बनाया है। परन्तु ब्रह्म अपनी सारी शक्ति सज्जित करके जड़-सभ्यता रूपी रावण के हाथों में छटपटाती, सीता रूपी अपनी चेतना शक्ति को मुक्ति प्रदान करते हैं। इस प्रकार कवि ने भौतिक जड़ता के सामने जीवन की आध्यात्मिक चेतना की विजय दिखायी है। साथ ही जन— संस्कृति के अग्रदूत के रूप में राम के अवतार को माना है।

प्रस्तुत रचना में कवि अरविंन्द दर्शन की व्याख्या करने में दत्तचित्त है। 'स्वर्णोदय' नामक कविता इस दृष्टि का उत्तम उदाहरण है। इसमें कवि ने अतिमानस और अधिमानस की स्थिति का वर्णन किया है। मानव की जीवन-यात्रा की दार्शनिक व्याख्या कवि ने इस प्रकार की है कि जन्म, शैशव, कैशोर, यौवन और वृद्धावस्था क्रमशः अन्न, प्राण, मन, अतिमानस और अधिमानस रूप है। सृष्टि में निहित चेतन का ऊर्ध्वमुखी विकास इसी क्रम से हो रहा है।

1- पंत का काव्य-दर्शन - प्रतापसिंह चौहान - पृ0 - 55. (2) स्वर्णकिरण . पृ. 41

अधिमानस की स्थिति में पहुँचकर मानव अध्यात्म और भूत को समान रूप से प्राप्त करेगा। दार्शनिक कवि की कुशलता का प्रमाण है 'स्वर्णोदय'। स्वर्णोदय' में कवि ने एक संपूर्ण जीवन का सांगोपांग निर्माण दिखलाया है। निबन्ध के सीमित कलेवर में यह खड़ी बोली का महत्तर मानव काव्य है, गागर में सागर है। आज का प्रगतिशील मानव समाज इसे पढ़ कर प्रकृतिस्थ हो सकता है, सर्वहारा सर्वस्व पा सकता है।' -।

स्वर्णधूलि :-

इसका भी प्रकाशन 1947 में ही हुआ। अरविन्द दर्शन के संदर्भ में लिखी गयी दूसरी रचना है 'स्वर्ण धूलि'। यहाँ भी कवि ने चेतन काव्य के परिवेश में कविता को सजाया संवारा है। प्रस्तुत कविता संग्रह की पहली कविता ही पंत के आध्यात्मिक बोध की परिचायक है। कवि की प्रार्थना है कि :

मुझे असत् से ले जाओ तुम सत्य ओर
मुझे तमस से उठा, दिखाओ ज्योति छोर
मुझे मृत्यु से बचा, बनाओ अमृत भोर,
बार बार आकर अंतर में हे चिर परिचित
दक्षिण मुख से, रुद्र, करो मेरी रक्षा नित।-2

यहाँ भी कवि मानव-संस्कृति की रक्षा तथा मानवता की प्रतिष्ठा चाहता है, इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिये आत्म-संस्कार और व्यक्तिमुक्ति को अपनाने का आह्वान कवि करता है। अतएव कवि ने भाव-सत्य और वस्तु-सत्य के समन्वय से ही मानवता की मुक्ति संभव मानी है। इनमें से किसी एक के अभाव में जीवन में का सन्तुलन बिगड़ जायेगा। श्री अरविन्द द्वारा प्रतिपादित भौतिक आध्यात्मिक संगठन का समर्थन करते हुये कवि ने कहा है कि भाव सत्य और वस्तु सत्य के समन्वय सुन्दर ढंग से होने से जीवन में सन्तुलन आ सकता है।

।-। ज्योतिविहग-शांति प्रिय द्विवेदी - पृ0 404
2- स्वर्णधूलि -पंत पृ 2

पंख खोल सपने उड़ जाते,
सत्य न बढ़ पाता गिन गिन पग
सांमजस्य न यदि दोनों में
रखती मैं, क्या चल सकता जग ? -1

और साथ ही

वही सत्य कर सकता मानव जीवन का परिचालन
भूतवाद हो जिसका रज, तन प्राणिवाद जिसका मन,
और आध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गम्भीर चिरन्तन।-2

'स्वर्णधूलि', 'स्वर्णकिरण' की कविताओं के बारे में डा. नगेन्द्र का मन्तव्य है' अनेक कविताओं का धरातल सामाजिक है, कुछ कविताएं आत्मगत है जो परिष्कृत मधुर रस से अभिषिक्त है, कतिपय कविताएँ प्रकृति र भी है, परन्तु अधिकांश कविताएँ आध्यात्मिक हैं -3 स्वर्णधूलि की सामाजिक कविता के अन्तः सूत्र में भी समाज का सांस्कृतिक उन्नयन और विश्वमंगल की कामना वर्तमान है। जाति-वर्ण-धर्म निरपेक्ष समाज का स्वप्न कवि देखता है क्यों कि उसे निश्चित है कि ऐसी परिस्थिति में ही मानव-संस्कृति का निर्माण तथा लोक मंगल की साधना पूर्ण होगी। भौतिक-आध्यात्म के समन्वय का समर्थन 'स्वर्ण किरण' के समान 'स्वर्णधूलि' की कतिपय कविताओं में भी कवि ने किया है।

'चौथी- भूख' शीर्षक कविता में उन्होंने मानव मन की भूख की चर्चा की है। मानव मन की प्रथम भूख तन की है। इसमें भोग वृत्ति प्रधान रहती है। दूसरी भूख है मन की जिसमें मानव मन आत्म गौरव और कीर्ति चाहता है, तीसरी है आत्मा की जिसमें मन के संयम करके वह पूर्ण सन्तुष्टि और शान्ति का अनुभव करता है। पहले तीनों भूख एकांगी होने के कारण मानव के लिए अधिक हितकर नहीं है लेकिन चौथी भूख एकांगी नहीं है।

1- ~~वही - वही~~ स्वर्णधूलि पंत - पृ0 - 104
2- वही - वही - पृ0 - 101
3- सु0 पंत - डा0 नगेन्द्र - पृ0 - 167

कवि ने 'छायाभा' में छाया और आभा को सुख दुख के प्रतीक के रूप में माना है। सुख दुख को समान रूप से अपनाने से ही मानव 'अतिमानव' हो जाता है क्यों कि ये दोनों ब्रह्म के ही रूप है और अविच्छिन्न है —

यह छायाभा है अविच्छिन्न,
यह आँख मिचौनी चिर सुंदर,
सुख दुख के सुरधनु रंगों की
यह स्वप्न सृष्टि अक्षय अमर। -1

उत्तरा :-
=====

उत्तरा का प्रकाशन 1949 में हुआ। इसमें कवि ने श्री अरविंद द्वारा प्रतिष्ठित अन्तश्चेतना (Intuition) का व्यापक प्रयोग किया है। इसमें ऐसी कुछ कविताएँ भी सम्मिलित है जो मात्र प्रकृति सम्बन्धी है और कुछ जीवन सम्बन्धी और कुछ विप्रलंभ शृंगार सम्बन्धी। कुछ प्रार्थना परक गीत भी इसमें है। सिद्धान्तों के विवेचन में कवि का भाववादी दृष्टिकोण अधिक मुखरित हुआ है। अन्तर्जगत की क्रान्ति की आवश्यकता पर बल देने के साथ ही कवि ने ब्रह्म की शक्ति और विकास को दर्शाया है। कवि ने उत्तरा की भूमिका में स्वीकार किया है — "मैं बाहर के साथ भीतर (हृदय) की क्रान्ति का भी पक्षपाती हूँ जैसा कि मैं ऊपर संकेत कर चुका हूँ। आज हम बाल्मीकि तथा व्यास की तरह एक ऐसे युग शिखर पर खड़े है जिसके निचले स्तरों में धरती के उद्वेलित मन का गर्जन टकरा रहा है और ऊपर स्वर्ग का प्रकाश, स्वरों का संगीत तथा भावी का सौन्दर्य बरस रहा है। ऐसे विश्वसंघर्ष के युग में सांस्कृतिक सन्तुलन स्थापित करने के प्रयत्न को मैं जाग्रत चैतन्य मानव का कर्तव्य समझता हूँ। ----------अतएव मेरी इन रचनाओं में पाठकों को धरा-शिखर के इसी संगीत की तथा नवीन चेतना के आविर्भाव सम्बन्धी अनुभव की क्षीण प्रतिध्वनियाँ मिलेंगी -2 कवि बाह्य क्रान्ति के साथ आन्तरिक क्रान्ति का स्वागत करता है जिससे कि इस संघर्ष-रत युग में सांस्कृतिक सन्तुलन बनाये रख सकता है।

1- वही स्वर्णधूलि - पंत - पृ0 - 67

2- उत्तरा - भूमिका - पृ0 - 29

'उत्तरा' की प्रस्तावना में, और एक जगह कवि का यह दृष्टिकोण स्पष्ट झलकता है — 'सत्य-अहिंसा के सिद्धान्तों को मैं अन्तः संगठन (संस्कृति) के दो अनिवार्य उपादान मानता हूँ । अहिंसा मानवीय सत्य का ही सक्रिय गुण है । अहिंसात्मक होना व्यापक अर्थ में संस्कृत होना या मानव बनना है ।'-[1] उत्तरा में कवि के अभीष्ट सांस्कृतिक मानव का ही युग जन्म ले रहा है —

'जन युग के कटु हाहाकार में
मानव युग का होता उदभव' -2

कवि चाहता है कि वर्तमान अन्धकार तथा अशान्ति दूर हो।वह मानव के विकास तथा मानवता के नूतन जीवनादर्श की प्रतिष्ठा की कामना करता है । उस भावी युग को कवि अपने सम्मुख देखता है —

संभव है, नभ में छाएँ करुणा घन
अंतर मन में भर जाए युग क्रंदन,
बरसाए उर भू पर आभा के कण
हो ही मानव के प्रति विद्ध हो ही बन । -3

इस धरती पर स्वर्ग लाने के लिए प्रत्येक मानव में ईश्वरीय चेतना जागृत होनी चाहिए, ईश्वर वास्तव में मानव का ही चरम विकास है । उस चेतना की विकास हर एक बिन्दु में सुशोभित होकर पृथ्वी को स्वर्ग बना देता है —

हो रहा स्वर्ग से धरणी का
जड़ से चेतन का रहस - मिलन
भू स्वर्ग एक हो रहे शनैः
सुरगण नर तन करते धारण । -4

नवीन चेतना को कवि ने अनेक प्रतीक बिम्बों के रूप में देखा है । प्रतीकों का रूप इस प्रकार है — 'शोणित चेतन', 'स्वप्नों की ज्वाला', 'ज्वाल गर्भ शोणित', 'ज्योति', 'विद्युतज्वाला', 'शोभा की लपट'आदि । स्वर्णधूलि और स्वर्णकिरण के समान उत्तरा में भी अन्न, प्राण, मन, अतिमानव तथा

1- उत्तरा -प्रस्तावना - पृ० - 31
2- उत्तरा - - पृ० - 14
3- वही - पृ० - 8
4- वही - पृ० - 75

अधिमानस की स्थिति का वर्णन किया गया है। भौतिकता तथा आध्यात्मिकता के अद्भुत समन्वय पर भी कवि की दृष्टि पड़ी है। परन्तु इन सब में कवि की एक ही विचारधारा अधिष्ठित है। "कवि की विशद मानवता में अहम् का विसर्जन और सोऽहम् का संवेदन है। कवि का समष्टिवाद केवल वर्ग-मुक्त जनवाद (जड़वाद) नहीं है, बल्कि उसमें मनुष्य की लौकिक और अलौकिक सभी रचनात्मक प्रवृत्तियों का सर्वोदय है। इसे हम भौतिक रहस्यवाद अथवा आध्यात्मिक भौतिकवाद कह सकते हैं। इसमें न तो मध्यकालीन रहस्यवाद का 'निष्क्रिय शून्य जीवन-वर्णन' है और न आधुनिक भौतिकवाद की जलन या द्वेष। -1

'उत्तरा' के कवि ने ऊर्ध्व-चेतना के विकास का यथातथ्य वर्णन किया है। इस चेतन का विकास मन पर होने से अनेक परिवर्तनों का आना संभव है और इसका विवेचन कवि ने इस प्रकार किया है, देखिए —

उमड़ रही लहरों पर लहरें
घिरते घन पर फिर घन
रजत स्वर्ण बालुका पुलिन से
टूट रहे मन के प्रण
टकराते शत स्वप्न निरन्तर
रहर ध्वनित कर आकुल अम्बर
संशय भय के कूलों पर भर
नव प्रतीति का प्लावन। -2

अन्तः जीवन में चेतना के विकास के लिए जड़-चेतन, आस्तिकता-नास्तिकता बाह्य आभ्यन्तर आदि का समन्वय आवश्यक है। मानव मन में इस चेतना का अपूर्ण विकास ही होता है, इसका कारण यह है कि वह इस प्रकार के समन्वय के लिए समर्थ नहीं है। वह बुद्धि तथा तर्क के फेर में पड़कर रह जाता है, जड़ और चेतन के बीच में ही पड़ा रहता है। श्री अरविंद का मत है कि मानवता का विकास अन्न से प्राण, प्राण से मन तक हो चुका है। अब उसका अग्रिम कदम अधिमानस की स्थिति है,

---

1- ज्योति विहग - शांतिप्रिय द्विवेदी - पृ0 - 44।
2- वही - उत्तरा - पृ0 - 25

जिस स्थिति पर पहुँचकर मानवता में प्रेम आदि गुण आ जाऐंगे। सारा जगत भी उस परिस्थिति में अद्‌भुत रूप से परिवर्तित हो जायेगा। 'रूपान्तर' शीर्षक रचना में कवि ने इस परिवर्तन को देखा है —

आज शिखर सब उच्च उच्चतर
ज्योति प्रवित ढह रहे धरा पर,
रक्तोज्ज्वल चेतना ज्वार में
नव स्वप्नस्थ दिशा क्षण।
उतर तुम्हारी आभा चेतन
नव मानव मन करती धारण,
भावी की स्वर्णिम छायाएं
भू पर करती विचरण।
नव प्रकाश रेखाओं से भर
मन स्वर्ग नव उठा अब निखर
अन्तर्विभाव से तुम निर्मित
करते नव मानवपन। -1

'उत्तरा' में कवि का मुख्य प्रतिपाद्य अन्तर्जगत के विकास ही है। इसके अतिरिक्त अरविंद दर्शन के मूल सिद्धान्तों की विशद व्याख्या भी की गयी है।

युगपथ।

इसका प्रकाशन भी 1949 में हुआ। 'युगान्त' और 'युगान्तर' दोनों को मिलाकर कवि ने 'युगपथ' नाम से प्रकाशित किया। युगान्त का विवेचन पहले हो चुका है।

'युगपथ' का दूसरा भाग है युगान्तर। इसकी पहली सोलह कविताएं गांधी जी के निधन पर लिखित है। उसमें कवि ने गांधी जी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उनकी प्रशंसा की है।

1- ~~वही - वही~~ उत्तरा पंत - पृ0 - 49.

युगपथ की अन्तिम कुछ कविताएँ पन्त के आध्यात्मिक चिन्तन का समर्थन करती है। गांधी, रवीन्द्र, अवनीन्द्रनाथ, मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा अरविंद आदि से सम्बन्धित प्रशस्ति परक कवितायें भी इसमें मिलती है।

अतिमा :-

अतिमा 1955 में प्रकाशित काव्य-संग्रह है। कवि के शब्दों में अतिमा की कुछ कविताएँ युग जीवन के अनेक स्तरों को स्पर्श करती हुई चलती है। इसमें कवि ने नवीन रूपकों और प्रतीकों का प्रयोग किया है। इसमें प्रकृति सम्बन्धी कविताएँ भी उपलब्ध है परन्तु इन दोनों विषयों के अतिरिक्त कुछ अन्य विषयक रचनाएँ है — जैसे नेहरू युग, अभिवादन, लोकगीत, सहस्थिति, पंचशील आदि।

अतिमा की व्याख्या कवि ने इस प्रकार की है कि —

यह अतिमा
तन से जा बाहर
जग जीवन की रज लिपटाकर,
अचेतन के कर्दम में धंस
पायल खोलों में घुस हंस - हंस
अंधकार को छू जाती। -1

इससे स्पष्ट होता है कि अतिमा वह प्रकाश किरण (ज्योति) है जो अन्धकार को छूती है। अथवा अतिमा चेतना की वह ज्योति है जो जड़, अंधकार और अचेतन से ऊपर उठकर अचेतन-अतिचेतन से परे ऊर्ध्वगम में विकसित होती जा रही है। 'अतिमा' में भी कवि ने इस ज्योति को अनेक रूपकों में प्रस्तुत किया, वे है - कौए, बत्तखें, मेंढक, प्रकाश, पतिंगे, छिपकलियाँ, केंचुए, स्वर्णमृग, दीपक आदि।

कवि ने इन प्रतीकों के माध्यम से चेतना के विभिन्न स्तरों को स्पष्ट करना चाहा है। कौए, बत्तखें और मेंढक निम्न वृत्तियों के ही प्रतीक है जो ऊर्ध्व चेतना का संस्पर्श पाकर रूपान्तरित हो गए है। इन को इसलिए श्रेष्ठ मानना चाहिए कि वे सदा ऊर्ध्वमुखी चेष्टा के लिए लालायित है और अन्त में वे अवश्य इस स्थिति तक

1- अतिमा - पृ० - 2

पहुँच पायेंगे । 'सोन जुही' शीर्षक कविता में निम्न चेतना के परिवर्तन की व्याख्या की गयी है ।

अरविंद दर्शन इस सिद्धान्त का समर्थन करता है कि जगत, जीव और ब्रह्म एक ही चेतना से अनुस्यूत होने के कारण एक ही है । कवि ने इसको स्वीकार किया है —

तुच्छ सतह से उच्च ज्योति तक
एक सृष्टि सोपान निरन्तर
जटिल जगत, गति गूढ़, मुक्ति स्थिति,
तीनों सत्य व्याप्त जगदीश्वर । -1

अतिमा की प्रकृति सम्बन्धी कविता में सर्वश्रेष्ठ है कूर्माचल के प्रति, आ धरती कितना देती है आदि ।

वाणी :-
=====

'वाणी' का प्रकाशन सन 1957 में हुआ । इसकी कतिपय रचनाएँ अरविंद दर्शन से प्रभावित है और वहाँ भी कवि की विश्व मंगल की कामना स्पष्ट झलकती है । 'बुद्ध के प्रति' शीर्षक रचना में शंकर के मायावाद का खण्डन कर अरविंद दर्शन की प्रतिष्ठा का आग्रह लक्षित होता है —

जड़ से चेतना, जीवन से मन
जग से ईश्वर को वियुक्त कर
जिस चिन्तक ने भी युग - दर्शन
दिया भ्रांति वश जन - मन दुस्तर, -
किया अमंगल उसने भू का
अर्ध सत्य का कर प्रतिपादन,
जड़ - चेतना, जीवन - मन आत्मा,
एक अखंड, अभेद्य संचरण ।

x x x x

1- अतिमा - पृ0 - 62 .

अर्थ : स्वर्णिम नवचेतन में
आज प्रवृत्ति निवृत्ति समन्वित
वही प्रबुद्ध अन्तः स्थित निश्चय
जो जन भू जीवन में स्थित । -1

'अतिमा' में प्रतिपादित दर्शन सम्बन्धी विचार भी यहाँ दुहराया गया है । जड़ का ऊर्ध्वमुखी विकास, मानव का अंतःसंगठन, नूतन संस्कृति की प्रतिष्ठा, भौतिक और अध्यात्म का समन्वय शान्ति की स्थापना आदि विचार दृष्टियों का प्रतिपादन इस में भी मिलता है । इसके अतिरिक्त 'आत्मिका' शीर्षक रचना में कवि ने अपने जीवन दर्शन की व्याख्या की है ।

कला और बूढ़ा चाँद :-
===============

सन् 1959 में पंत जी का एक नवीन काव्य - संग्रह 'कला और बूढ़ा चाँद' प्रकाशित हुआ । कवि ने इसे रश्मिपदी काव्य कहा है । इसमें 90 कविताएँ संग्रहित हैं । कवि का दार्शनिक विचार, आत्मिक अनुभूति और जीवन साधना की अभिव्यक्ति इसमें हुई है । इस की रचनाएँ सहज स्फुरण से प्राप्त सत्यों की अभिव्यंजना करती हैं । कवि ने इसी अर्थ में इसे 'रश्मिपदी काव्य' कहा है ।

दार्शनिक विचारों में विशेष नवीनता न मिलने पर भी प्रतीकों का प्रयोग और उनकी अर्थ - गहनता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी है । कवि ने कहा भी है —

मैं शब्दों की
इकाइयों को तोड़कर
संकेतों में
प्रतीकों में बोलूँगा
उनके पंखों को असीम पार
फैलाऊँगा । - 2

सहज स्फुरण के साथ अभिव्यक्त करने के कारण भाषा का माध्यम आवश्यक नहीं, और अरविंद के अनुसार इस प्रकार की कविता सर्वश्रेष्ठ है जिसे 'मंत्र' कहा जा सकता है । यहाँ बिम्बों और प्रतीकों के द्वारा कवि ने भावों को मूर्त करने का

1- वाणी - पृ० - 97
2- कला और बूढ़ा चाँद - पृ० - 192-193 .

सफल प्रयत्न किया है। इस प्र कार की अनुभूति विज्ञानमय कोष की उपलब्धि है। इसकी अवस्थिति अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोष से ऊपर होती है। अन्य स्तरों की स्थितियों को भाषा के माध्यम से वाणी प्रदान की जा सकती है। विज्ञानमय कोष की अनुभूति बिम्बों और प्रतीकों के सहारे अभिव्यक्ति होती है।

प्रस्तुत काव्य संग्रह के विश्लेषण के समय यह उक्ति ठीक लगती है कि 'कला और बूढ़ा चाँद' एक नये माध्यम को लेकर आया है। मैं ने उसे गद्य-काव्य कहा है, पर हिन्दी के पिछले गद्य-काव्य में यह डूब नहीं सकता। मानसिक अनुभूतियों की असाधारणता, विचित्रता और सूक्ष्मता, सहज स्फुरण द्वारा नये ताजे आकर्षक प्रतीकों का संचयन और शब्दों को अभिव्यंजना की चरम सीमा पर ले जाकर छोड़ देने की कला ने 'कला और बूढ़ा चाँद' में एक अद्भुत कृति हमारे सामने रखी है।... दस वर्ष के व्यस्त जीवन में काव्य को इतने गुण रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ पंत जी की सृजन शक्ति निस्सन्देह असाधारण है। -1

जैसे पहले कहा गया है कि अरविंद ने नये मानव की स्थिति अतिमानस में मानी है। 'देन' शीर्षक कविता में पंत ने इसके स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया है—

> काल नाल पर खिला
> नया मानव
> देखा धूलि में सना नहीं।
> × × ×
> एक है वह
> अतः स्थित
> बाह्य संतुलन
> भविष्य मुखी
> रश्मि पंख
> प्राण विहग,—
> सूर्य कमल।
> अतः प्रबुद्ध
> बहिः शुद्ध

1- कवियों में सौम्य संत - बच्चन - पृ0 - 169.

पूर्व पश्चिम का नहीं,
काल की देन,
अत्याधुनिक
अंतर्विकसित
चैतन्य पुरुष
ज्योति पदम । ¹

अरविंद के अनुसार ब्रह्म की शक्ति जिस प्रकार नीचे से ऊपर की ओर जाती है (आरोहण) उसी प्र कार वह शक्ति ऊपर से अवतरित होकर नीचे की ओर जाती है (अवरोहण) इस क्रिया को दोहरा सोपान (Double Ladder) कहा गया है 'कला और बूढ़ा चाँद' का 'अवरोहण' शीर्षक कविता में इसका प्रतिपादन हुआ है।

काव्य रूपकः-

कविवर पंत ने 1951 से 1957 तक भारतीय आकाशवाणी में परामर्शदाता के रूप में कार्य किया । इस अवसर पर कवि ने कतिपय काव्य-रूपकों की सृष्टि, रेडियो की दृष्टि में रखकर की है । कवि के काव्य विकास के परिवर्तनों और परिवर्धनों के ज्ञान के लिए इन काव्य रूपकों का अध्ययन विशेष महत्व का है । कवि के चिन्तन और विचारों का प्रभाव इन काव्य रूपकों पर कहाँ तक हुआ है इसका अध्ययन करना हम अभीष्ट मानते हैं । उनके काव्य रूपक-संग्रह तीन हैं - रजतशिखर, शिल्पी और सौवर्ण ।

रजतशिखर :-

प्रस्तुत रूपक संग्रह में विभिन्न समयों में लिखे गए 6 रूपक संग्रहीत हैं, जिनका प्रकाशन पुस्तक के रूप में सन् 1951 में हुआ था । इन रूपकों के नाम इस प्रकार हैं —

1- रजत शिखर 2- फूलों का देश 3- उत्तरशती 4- शुभ्र पुरुष
5- विद्युत वसना 6- शरद चेतना ।

उपर्युक्त सारे रूपक प्रतीकात्मक है । इसमें विशेष रूप से कवि ने

1- कला और बूढ़ा चाँद - पृ0 - 164

अरविंद के विचारों का विवेचन करना चाहा । इस नाटक का पात्र अरविंदवादी है जिसने 'निष्काम कर्म' और आत्म के प्रति अनुराग की आवश्यकता पर बल दिया है जिसके द्वारा समृद्धि तथा शान्ति प्राप्त हो सकती है —

आओ हम अन्तः प्रतीति को धर्म बनायें,
आओ हम निष्काम कर्म को धर्म बनायें । -1

फूलों का देश :-

यह 'रजतशिखर' का दूसरा रूपक है । बच्चन जी ने इसके बारे में लिखा है - 'फूलों का देश । सांस्कृतिक क्षेत्र का प्रतीक है । इस रूपक में कवि ने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि संसार में फैले विभिन्न वादों में समन्वय - अध्यात्मवाद, भौतिकवाद, आदर्शवाद, वस्तुवाद में करने का काम केवल कलाकार या कवि का है ।'-2 इस में भी अरविंद के समन्वयवादी विचारधारा की झलक है । इस रूपक में समतल संचरण का प्रतिनिधि राजनीतिज्ञ और निम्न संचरण का प्रतिनिधि युवक-वृद्ध है जो मनोविश्लेषक है । युवक साधक ही युग का प्रतिनिधि कवि है, जो निम्न संचरणमार्गी को अवरुद्ध करके शेष दो में समन्वय करता है ।

उत्तरशती :-

'रजतशिखर' का तीसरा रूपक है उत्तरशती । यहाँ भी कवि की आध्यात्मिक चेतना का प्रसार द्रष्टव्य है।यह चेतना मानवीय गुणों का प्रतीक बनती है । कवि कहता है कि आज का संघर्ष आनेवाले युग की तैयारी के लिए है —

टकराती है नव चेतना की हिल्लोलें,
युग मन की निश्चेष्ट बधिर पाषाण शिला पर
ललकारों से, आघोषों से समुच्छ्वसित,
विश्व क्रान्ति की ओर आरोहण करती । -3

1- रजतशिखर - पृ० - 41
2- कवियों में सौम्य संत - पृ० - 128-129
3- रजतशिखर - पृ० - 81

शुभ पुरुष :-

इसमें कवि ने महात्मा गाँधी की प्रशस्ति गाई है और उसके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है। 'शुभ पुरुष महात्मा जी के तपः पूत व्यक्तित्व का शुभ प्रतीक है। महात्मा जी भारतीय चेतना के आधुनिकतम रजत-संस्करण हैं।'[1] राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक आदि क्षेत्र में गाँधी जी के सिद्धान्तों का प्रभाव अवश्य पड़ा है। देखिए उस महापुरुष का चित्र —

> 'मधुर अहिंसा का सन्देश सुनाने भू को
> धन्यमर्त्य के अमर पांथ, तुम निखिल धरा को
> बांध गए नव मनुष्यत्व के स्वर्णपाश में।' -2

विद्युतवसना :-

यह स्वाधीनता के विषय पर लिखा गया रूपक है। इसमें कवि ने यह आह्वान किया है कि बाहरी जीवन में स्वाधीनता के साथ ही आन्तरिक निर्भरता तथा एकता को भी ध्येय मानना चाहिए।

शारदचेतना :-

इसमें शारदचेतना के अवरोहण की बात बतायी गयी है। हेमंत, शिशिर वसंत आदि ऋतु रूपी ऊर्ध्व चेतना, पृथ्वी पर उतरकर चारों ओर सुख और शां[ति] का संचार करती है। यहाँ भी कवि ने अरविंद के दोहरे सोपान की स्थिति को प्रस्तुत किया है।

शिल्पी :-

रजतशिखर के समान 'शिल्पी' भी कवि पंत का एक सिद्धान्तवादी काव्य-रूपक संग्रह है। इसमें तीन रूपक संकलित हैं — शिल्पी, ध्वंसशेष और अप्सरा। इस रूपक में कवि ने अरविंद दर्शन के सिद्धांतवादी तत्वों का समन्वि[त]

---

1. रजतशिखर वही - पृ० - 105
2. वही - पृ० 116

करने के साथ ही आर्ष भारत के पौराणिक मान्यताओं का भी दर्शन किया है । इस का मूल स्वर नवीन जीवन निर्माण और संघर्ष का नाश ही है । आज के संघर्ष वास्तव में भौतिकवाद की सबल प्रतिष्ठा तथा बुद्धिवाद के एकांगी दृष्टिकोण के कारण है । इनमें से मुक्ति मिलने का उपाय श्री अरविन्द की दृष्टि में जीवन को समग्र दृष्टि से देखने समझने और अन्तर्बाह्य विचारों को संगठित और समन्वित करने का प्रयत्न है । कवि ने शिल्पी को रूपक बना कर अपनी इस विचारधारा को मूर्त करने का प्रयत्न किया है ।

शिल्पी मूर्ति निर्माण में तत्पर दिखाई पड़ता है । शिल्पी के मन में यह भाव सूझता है कि अपनी अभीष्ट मूर्ति का निर्माण " बहिरंतर की जटिल विषमताओं में " -1 " नव समत्व भरने "2 पर ही संभव होता है ।

शिल्पी आस्थाहीन होने के कारण अनेक परिश्रम करने पर भी मूर्ति निर्माण में सफल नहीं होता , तब उसके हृदय में ईश्वर के प्रति आस्था उत्पन्न होती है और सहसा ही मूर्ति सजीव हो उठती है-

> ईश्वर ' अब जाकर पाषाण सजीव हुआ कुछ
> युग विप्लव की पृष्ठभूमि साकार होगई । -3

शिल्पी ने आस्था शील मन से एक दम मुरलीधर, गौतम -बुद्ध की प्रतिमाएं बनाई । साथ ही उसने चन्द्रकौमुदी, मेघ दामिनी और पूर्ण चन्द्र सागर वेला की प्रतिमाएं भी निर्मित की । शिल्पी में मूर्तियों के माध्यम से खड़ीबोली हिन्दी कविता का संपूर्ण इतिहास ही एक प्रकार से आँखों के सामने लाया गया है । शिल्पी की अंतिम मूर्ति पंत की अभिनव कविता की मूर्ति है । -4

1- शिल्पी - पृ० - 34
2- वही - पृ० - 34
3- वही - पृ० - 14
4- कवियों में सौम्य संत - पंत बच्चन - पृ० - 134

निश्चय, यह जन के मन मन्दिर की प्रतिमा है,
जन आकांक्षा की प्रतीक, जन जीवन मय है ।
सामूहिक चेतना हो उठी मूर्तित इसमें,
शक्ति, स्फूर्ति विश्वास भरेगी यह जन मन में । -।

कवि कहता है कि इस भौतिकवादी युग में चेतना के पुनः जागृत होने से ही अटूट आस्था निहित रहने पर ही जनता का उद्धार संभव है । कला में भी सजीवता इसी अन्तर्चेतना से आ जाएगी । बाह्य और आभ्यन्तर के समन्वय के लिए कवि ने द्वितीय अंक में आह्वान दिया है । अरविन्द के भौतिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय रूपी वाद को ही यहाँ कवि ने समर्थन किया है । अरविन्द वाद की स्थापना तथा मार्क्सवादियों के संकीर्णतावाद की निन्दा यहाँ हुई है ।

ध्वंसशेष :-

इसमें कवि ने विश्वयुद्ध के विध्वंसकारी परिणामों पर आशंका प्रकट की है । मानव पर वैज्ञानिक आविष्कारों का बहुत बड़ा असर पड़ा है । इसलिए इस युग में अनेक विनाशकारी युद्ध हो रहे हैं और इन संकटों से मुक्त रहने के लिए इस यांत्रिक सभ्यता का पुनः निर्माण करना चाहिए। यांत्रिक सभ्यता के कारण ही मानव के हृदय की पवित्र और शुद्धता का नाश हुआ है । कवि के मत में ऊर्ध्वचेतना के धरातल पर समन्वय भावी सुख प्राप्त किया जा सकता है । उस भविष्य में ही लोकतन्त्र का सच्चा रूप देख सकता है ।

अप्सरा :-

शिल्पी में संग्रहीत तीसरा 'काव्य-रूपक' अप्सरा है । इस रूपक के माध्यम से कवि ने 'सौन्दर्य चेतना' के रूपक को व्यक्त किया है । सौन्दर्य के परिवेश में सत्य और शिव को भी स्वीकार किया गया है । वास्तव में काव्य की अभिव्यक्ति सुन्दर के ही माध्यम से होती है । कदाचित कवि ने इसी कारण 'अप्सरा' के समान सुन्दर प्रतीक को अपने अभिव्यंजन के लिए चुना है । कवि की सौन्दर्य चेतना परम चेतना ही है :-

---

।- शिल्पी - पृ0 - 44

केवल न प्रकृति ही का प्रांगण
मैं रंग सृष्टि में नहलाती,
मैं अन्तर जग को भी अपनी
स्वप्निल सुषमा में लिपटाती । -1

इस काव्य रूपक के चार दृश्य है भावोद्वेलन, मानसिक संघर्ष, उन्मेष और रूपांतर । शीर्षक इतने सार्थक निकलते है कि कवि अपने विचारों को इन प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यंजन करने में सामर्थ्य होता है ।

प्रथम दृश्य भावोद्वेलन में कवि ने समग्र समर्पण की आवश्यकता पर बल दिया है । यह आत्मसमर्पण बिना प्रेम से असंभव है । 'ज्योत्स्ना' कहती है --

मैं आत्म समर्पण के क्षण में
निर्झर प्रकाश के बरसाती । -2

मानसिक-संघर्ष -- द्वितीय दृश्य है । इसमें मानसिक विकृतियों का चित्रण मिलता इन कुरूप तत्वों को कवि ने कुंठित-काया, छाया, विदग्धात्मों की मृग-तृष्णा, गिरगिट, जीवन- कर्दम के दादुर आदि प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है । इन कुरूप तत्वों के कारण नव्य चेतना विकसित नहीं होती । (विकसित हो जाती है। कवि का कहना है कि इस नव्य-चेतना) अंत में दोनों के घोर संघर्ष के बाद नव चेतना को जन मानस में प्रतिष्ठित करने का काम मध्यवर्ग के जीवन शिल्पी पर है ।

आज नया दायित्व भार है मध्यवर्ग के
सृजन प्राण युग जीवन-शिल्पी के कंधे,
धरती की सौन्दर्य-चेतना का प्रतिनिधि जो
युग मन के बिखरे अनगढ़ उपकरणों को ले
मनुष्यत्व की नव प्रतिमा कल्पित कर उसको
प्राण प्रतिष्ठित करना है जन मन्दिर में ।[3]

तृतीय दृश्य 'उन्मेष' है जिसमें कवि ने धरा - चेतना को धेनु के प्रतीक रूप में चित्रित किया है । यह एक पौराणिक रूपक के आधार पर लिया गया है ।

1- वही - पृ0 - 95-96
2- वही - पृ0 - 97
3- वही - पृ0 - 101

पुराणों में धर्म की ग्लानि होने पर जिस प्रकार धरा धेनु का रूप धारण कर भगवान के आगे विनती करती है कि वे अवतार लेकर उसका भार हटाएँ । उसी प्रकार यहाँ भी चेतना रूपी धरा अपनी मुक्ति चाहती है और भगवान के सम्मुख प्रार्थना करती है —

मेरे मूक हृदय में प्रीतिक्षण
जगता रहता स्वर्गिक स्पन्दन
अमर चेतना से कण मंडित
होंगे मृत्यु विलासी -।

अन्त में चेतना स्वयं आश्वासन करती दिखायी पड़ती है कि भगवान और जीवन भिन्न नहीं है जीवन निश्चय ही ईश्वर का ही अंश है । अरविंद दर्शन के अनुसार जगत ईश्वर का एक रूपांतर मात्र है जो ऊर्ध्व संचरण करता हुआ, जड़ से अर्द्धचेतन और फिर चेतन स्थिति को प्राप्त करता है । परन्तु इस चेतन स्थिति पर अधिक समय तक ठहर नहीं सकता इसलिए उसमें अवश्य रूपान्तर होता है और अधिमानस स्थिति पर पहुँच जाता है । कवि ने 'धरा-चेतना' रूपक के द्वारा इस सिद्धान्त का ही समर्थन किया है ।

चतुर्थ और अन्तिम दृश्य रूपान्तर में कवि ने सौन्दर्य चेतना को स्वीकार करने के साथ ही मानवता की विकास सरणि को उपस्थित किया है । चेतना का ऊर्ध्व संचरण देखिये —

उच्च उच्चतर सोपानों पर चढ़ अधिमन के
अतिमानस के दिव्य विभव से अभिप्रेरित हो,
मनुज चेतना अवचेतन की अन्ध गुहा को
अवगाहित कर रही निखिल कल्मष कर्दम से ।
विगत अहन्ता का विधान विकसित वर्धित हो
मुक्त हो रहा राग द्वेष, कुत्सा स्पर्धा से ।
भेद भाव मिट रहे, छंट रहा संशय का तम,
उदय हो रही अन्तर्मुख भावना साम्य की ।

x x x

।- वही - पृ० - 105 ,

संयोजित हो रहा मनुज मन नव प्रकाश में
जन्म ले रही नव मनुष्यता हृदय क्षितिज में । -1

सौन्दर्य चेतना ' जगजीवन की अंतर तम स्वर संगति 'ही है ।
अर्थात् बाह्य और अन्तर का ऐक्य पंत के दर्शन का मूल मंत्र है । यही विचार उनके परवर्ती काव्य में मुखर हो उठा।

सौवर्ण-
======

सौवर्ण में दो रूपक संग्रहीत है 'सौवर्ण' तथा 'स्वप्न और सत्य' । सौवर्ण का अर्थ है सुवर्ण का । पंत ने स्वर्ण का प्रयोग अपनी परवर्ती कविता में बहुत अधिक मात्रा में किया है और वह एक उत्कृष्ट और उज्जवल अर्थ को ध्वनित करता है । बच्चन जी के अनुसार ' पंत जी का सौवर्ण श्री अरविन्द का 'डिवाईन मैन - मानव ईश्वर है ।' -2

मानव को ईश्वर बनाने की अभिलाषा ले कर कवि ने इसकी रचना की है सौवर्ण की कथा वस्तु इस प्रकार है - हिमालय शिखर पर, जहां विश्व संस्कृति का मूल आधार स्थित है , देव -देवता एकत्र होते हैं । वे विश्व का निरीक्षण कर इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अब चेतन और अवचेतन समान रूप से सक्रिय है । उन्हें अनुभव होता है कि यह संक्रमण काल है और सृष्टि- विकास का एक अध्याय समाप्त हो गया है तथा अब उसके अन्तर्बाह्य में नव्य संयोजन होने वाला

स्वर्दूत और स्वर्दूती धरातल पर उतर कर विकास की दो प्रणालियों को देखते है । प्रथम में मानव केवल अन्तर्विकास को प्रकर्ष देता है और द्वितीय में सामाजिक प्रसार को महत्व देता है । ये दोनों एंकागी होने के कारण दोनों का समन्वय जरूरी है । तब सौवर्ण का आगमन होता है जो एक साथ ही अग्निपुरुष है , प्राण पुरुष है ; लोक पुरुष है । वही एक मात्र जननायक है जिसने जीवन की विषमताओं के बीच सन्तुलन प्राप्त कर लिया है । अतः वह आज का प्रतिनिधि युवक है । युवक स्वयं कहता है -

नव मानव में नव जीवन गरिमा में मण्डित -3

1- वही पृ0 -108 2- कवियों में सौम्य संत - पृ 147

युग मानस का पद्म खिला जो धरा पंक में,
जड़ चेतन जिसमें सजीव सौन्दर्य संतुलित ।[1]

इस क्रान्ति द्रष्टा ऋषी 'सविर्ण' महर्षि अरविन्द ही होंगे - ।
यहाँ नवमानव की परिकल्पना के लिये कवि ने चेष्टा की है । कवि का उद्देश्य यह निकलता है कि आदर्श मानव, आदर्श समाज और आदर्श संसार की स्थापना सर्वांगत समन्वय पर ही संभव हो सकती है ।

प्रस्तुत रूपकों के द्वारा कवि ने एक मंगलमय संसार की कल्पना की है । कवि का आशावादी दृष्टिकोण इस संघर्षरत अंधकार मय जगत में एक लौ के समान प्रज्वलित रहता है ।

स्वप्न और सत्य । यह 'सविर्ण' का और एक रूपक है। इस रूपक में भी कवि ने विश्व शान्ति की समस्या पर विचार किया है। वर्तमान युग में अति-भौतिकता के कारण जीवन में संघर्ष चल रहा है । जीवन आध्यात्मिकता की ओर से अति -भौतिकता को ओर जा रहा है और इस विपर्यय के बीच सामंजस्य लाने के लिये कवि ने चित्रकार का माध्यम लिया है ।

इस रूपक में तीन दृश्य है । पहला जागृतावस्था का और बाकी दोनों स्वप्नावस्था के है । प्रारंभ में कलाकार-चित्रकार अपने भावलोक में खोया रहता है । इस समय चित्रकार के दो मित्र आते है । एक चित्रकार पर व्यंग्य करता है और उस पर पलायनवादी होने का आरोप लगाता है । पहले मित्र के लिए जग की समस्या का हल वर्ग - क्रांति और समाजवाद में दिखाई पड़ता है । दूसरा मित्र अन्तश्चेतनावादी है । कला के संबंध में उनके बीच वाद-विवाद चलता है । दोनों के चले जाने पर कलाकार स्वप्नावस्था में पहुँच जाता है । उस अवस्था में चित्रकार प्राचीन महापुरुषों से मनस साक्षात्कार करता है और स्वर्ग लोक पर विचरण करता है । तब वह विभिन्न धर्म एवं दर्शनों के अनुसार कल्पित स्वर्गों के अनेक स्तर देखता है । चित्रकार को नीलोज्ज्वल प्रकार का स्वर्ग ही प्रिय है परन्तु अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि "स्वर्ग

1- सविर्ण - पृ0 - 16.

न रहता कभी चिरंतन'। इसका मूल कारण ही मानव मन की सीमा ही है। जीवन को परिपूर्ण बनाने से ही स्वर्ग होगा। इस प्रकार मानव जीवन की सार्थकता तब निकलती है जब वह इस पृथ्वी में स्वर्ग को उतार सके।

स्वप्नावस्था के दूसरे दृश्य में चित्रकार नरक के भी अनेक स्तरों को देखता है। यहाँ निराशावाद, नियतिवाद, हास्यवाद, जातिवाद, संप्रदायवाद, अर्थवाद आदि सब जीवन के सघर्ष मेघ बना रहे हैं। इस पृथ्वी भी नरक के समान कष्टदायक है। यहाँ के सांस्कृतिक साहित्यिक जीवन में भी इसकी प्रतिच्छाया लक्षित है।

इन्हीं विचारों में डूबा हुआ चित्रकार पुनः निद्रित होता है और उसके अन्तर्मन में सूक्ष्म जगत जाग्रत हो उठता है। इस स्थिति में उनको अरविन्द के दोहरे सोपान वाले सिद्धान्त का ज्ञान होता है और स्पष्ट देखता है कि निम्न चेतना ऊपर चढ़ रही है और ऊर्ध्व चेतना नीचे उतरती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस काव्य रूपक में कवि ने चेतना के संचरण द्वारा अन्तर्बाह्य के समन्वय को आदर्श जीवन के सुप्रभात के रूप में देखा है।

लोकायतन :-

'लोकायतन' नामक महाकाव्य में कवि ने चार विभागों के बारे में चर्चा की है। यह काव्य दो खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड को 'पूर्वस्मृति' या 'आस्था' नाम दिया है। दूसरा खण्ड अन्तश्चैतन्य है। प्रथम खण्ड को उन्होंने चार भागों में विभक्त किया है — पूर्व स्मृति, आस्था, जीवन द्वार, संस्कृति द्वार और मध्य बिन्दु, ज्ञान। द्वितीय खण्ड के तीन भाग हैं — कला द्वार, ज्योति द्वार तथा उत्तर स्वप्न, प्रीति।

कथानक :-

काव्य में कथानक के अंतर्गत मूल कथानक तथा उपकथानक भी आ सकते हैं। लोकायतन की मूल कथावस्तु अपेक्षाकृत सीमित और संक्षिप्त है। इसके साथ अनिवासी उपकथावस्तु मूल कथानक को संचालित करती है जहाँ गाँधी जी और

उनके अनुयायी इसके पात्र है ।

प्रमुख कथावस्तु वंशी, हरि आदि पात्रों को लेकर चलती है । वंशी एक भविष्य द्रष्टा कवि है, हरि उनका घनिष्ठ मित्र है जिनकी एक बहिन है सिरी । इन तीनों के परिश्रम से गाँव में एक शिविर आयोजित होता है । स्त्री तथा पुरुष इसके सदस्य हो सकते है । इन सदस्यों के जीवन में सांस्कृतिक तथा आर्थिक उन्नयन लाने के उद्देश्य से ये छोटे - छोटे उद्योगों का संचालन करते है । उस समय गाँधी जी के राजनीतिक आन्दोलन का खूब प्रभाव इन पर पड़ता है । यहाँ माधो गुरु और उनके साथी-शिष्य, वंशी तथा हरि के विरोध में संगठित होते है । ये गाँधी जी की विचारधाराओं का भी खूब विरोध करते है और आगे चलकर वे प्रतिक्रियावादी पक्ष का भी पोषण करते है ।

भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के साथ-साथ कथानक का पहला भाग समाप्त हो जाता है और द्वितीय भाग में दूसरा दृश्य उपस्थित किया जाता है । स्वतंत्रता के पश्चात् गाँधी जी का निधन हो जाता है और भारत की प्रगति रुक जाती है । इस समय वंशी तथा हरि ग्राम शिविर के स्थान पर एक वृहत् सांस्कृतिक संस्था की स्थापना करते है । यहाँ हर तरफ के लोगों को शिक्षा दी जाती है । कला, सहयोग धंधों, राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में कार्य करनेवाले इस संस्था के द्वारा लाभ उठा सकते है ।

कथानक में और एक भाग भी है जहाँ शंकर और सिरी का प्रेम विवाह में परिणत हो जाता है । वंशी, इन दोनों को सुन्दरपुर जाने का आदेश भी देता है ।

वंशी तथा हरि के सामाजिक क्षेत्र के कार्य कलाप कथानक को आगे ले जाते है । माधव गुरु के स्वास्थ्य बिगड़ जाने के बाद इन घटनाओं का अंत हो जाता है ।

मूल कथानक से असंम्बद्ध कुछ घटनाएं बाद में देख सकते है । आत्मानंद का सन्देशवाहक के रूप में आना तथा वंशी को विदेश यात्रा वास्तव में अप्रासंगिक है ।

सिरी अपने भाई के विरह में प्राण त्याग करती है । वंशी का कहीं

अन्तर्धान भी होता है । अंत में तुलसी, मेरी संयुक्ता, शंकर आदि अविकसित पात्रों के द्वारा केन्द्रीय कथानक चलता है और वहीं समाप्त होता है ।

लोकायतन का सर्गगत अध्ययन :-

लोकायतन के कथानक का क्रम उपर दिया गया है, परंतु मूल कथा के अतिरिक्त प्रस्तुत काव्य के सर्ग गत अध्ययन करना आवश्यक है, जिससे कवि की वैचारिक गति का पता चल सकता है ।

काव्य के दो खण्डों में प्रथम खण्ड 'पूर्व स्मृति' काव्य की भूमिका के रूप में आता है । इस सर्ग के प्रारंभ में कवि ने दार्शनिक विचारों को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्न किया है । नव युग में नवीन जीवन बिताने का बोध पाठकों को देने के साथ ही उन्होंने राम, सीता, लक्ष्मण, उर्मिला, ऋषि वाल्मीकि आदि पात्रों का सहारा लेकर भागवत धर्म का परिचय दिया है ।

राम के वनवास का कारण यह बताया गया है कि प्रत्येक मानस क्षुद्रता के आवरण में पड़ा है । इस क्षुद्रता के आवरण को हटाने पर ही मानव का उत्थान संभव है । सीता के सौंदर्य का चित्रण कवि के दार्शनिक ढांचे में ढाला हुआ दिखाई पड़ता है । सीता में परा और अपरा शक्तियों का निवास होता है इसलिए वह पूजनीय है । वह व्यक्त जगत् की संचालिका है, सीता रूपी परम चेतना का स्पंदन देशकालोत्तर भी है । राम के मुंह से ही सीता का वर्णन देखिए

मूल प्रकृति तुम, धरा योनि में धँस कर
अनघ विदध रह, मुक्त-प्रीति, आत्मस्थित
करो, पा स्पर्शों से जड़ भू- मानस के
अंध स्तरों को करती रही प्रकाशित ।
× × ×
नाम रूप गुण, देश-काल में भी स्थित । -।

सीता और राम में अंतर केवल इतना है कि राम अव्यक्त है तो सीता व्यक्त और अव्यक्त दोनों है । देश-काल से मुक्त होकर भी वह देश-काल में स्थित है । सीता चेतना का प्रतीक है । पंत जी का यह प्रतीकात्मक प्रयोग अवश्य ही नवीन है

1- लोकायतन - पृ0 - 14-15 .

'सीता का ऐसा प्रतीकार्थ या सीता की ऐसी सम्यक व्याख्या सीता से संबद्ध पूर्ववर्ती साहित्य-ऋग्वेद, रामायण, महाभारत, उत्तररामचरित, रघुवंश, रामतापनीय उपनिषद, अध्यात्म रामायण, रामायण मंजरी, उदार राघव, जानकी परिणय इत्यादि से लेकर वैदेही वनवास और साकेत तक मे हमें नहीं मिलती है।'[1]

सीता के चित्रण में ही नहीं, राम, लक्ष्मण, उर्मिला, भरत, हनुमान और बाल्मीकि के प्रतीकों में भी कवि की नवीनता द्रष्टव्य है। इन प्रतीकों में कवि का संकेत कृषि सभ्यता के आदर्शों का निरूपण ही है। लोक जीवन का परिष्कार करने के लिए वर्तमान युग में अन्तश्चेतना की जड़ शक्तियों को नये आलोक और नवीन ज्योतिकिरणों से स्पन्दित कर चिन्मय करना है। कवि ने यही व्याख्या करने के लिए उपरोक्त प्रतीकों का आविष्कार किया है।

आगे कवि शिव और पार्वती की वन्दना करता है। शिव आह्वान करता है कि सत्य तत्व की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। यहाँ भी कवि अधिक वैचारिक तथा दार्शनिक हो गया है। 'लोकायतन' में बाल्मीकि शिक्षा देते हैं कि प्राचीन भारतीय आदर्शों को नवयुग के अनुरूप रूपायित करना चाहिए। कवि ने यहाँ पर आध्यात्मिक और भौतिक जीवन के समन्वय को बल दिया है।

प्रस्तुत सर्ग के अंत में कवि आनेवाले पात्रों को एक पृष्ठभूमि के सहारे उपस्थित करता है। वंशी, हरि, सिरो आदि प्रमुख पात्रों की एक झांकी प्रस्तुत करता है। इस खण्ड में कवि ने 'कामायनी' का अनेक बार खण्डन भी किया है। पंत की राय है कि 'कामायनी' का जीवन दर्शन वास्तव में जीवन के नवीन यथार्थ तथा सत्य को अभिव्यक्ति नहीं दे सका है।

प्रथम खण्ड का दूसरा भाग 'जीवन द्वार' है। यहाँ से कवि की दार्शनिकता और प्रकृति प्रेम का आभास मिलता है। दूसरी भूमिका में लोकायतन का मूल कथानक प्रारंभ होता है। 1925-30 के आसपास की भारत की स्थिति की पृष्ठभूमि में इसका निर्माण किया गया है। भारत की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय अवस्था पर पहुँच गयी है कि सारी जनता एक कष्टपूर्ण जीवन बिता रही है। जनता में हर तरफ से जागृति लाने के उद्देश्य से वंशी और हरि का आगमन हुआ है। सांस्कृतिक संस्था भी इसी लक्ष्य में स्थापित की

1- आधुनिक हिन्दी काव्य - डा० कुमार विमल - पृ० 143.

गयी । तीसरी भूमिका में महात्मा गांधी का स्वतन्त्रता संग्राम चित्रित है जिसे 'मुक्तियज्ञ' शीर्षक रख दिया है । इसे गांधी सर्ग भी कह सकते हैं। इसमें विशेषतः गांधी जी के नमक सत्याग्रह आन्दोलन और उनकी डाण्डी यात्रा को केन्द्र में रखा गया है । 1925-30 के भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में गांधी जी प्रमुख नेता थे । गांधी जी के निधन के बाद भारतीय जनता फिर भी विनाश की ओर जा रही थी, इस पर भी कवि ने दृष्टि डाली है । पश्चिम देश के भौतिकवादी लोगों की खूब भर्त्सना भी कवि ने यहां की है ।

'आत्मदान' शीर्षक सर्ग में कवि ने संपूर्ण भारतीय परिवेश का निरीक्षण करके अपने विचार तथा अनुभव की अभिव्यक्ति की है,। उन दिनों घटित अनेक घटनाओं को उन्होंने विदूषणा के साथ विवरण किया है ।भारत-पाकिस्तान सम्बन्ध, भारत का ह्रासकालीनइतिहास भारत का दर्शन आदि पेरी भी उन्होंने चर्चा की है । दार्शनिक क्षेत्र पर उनका मुख्य आरोप यह है कि इन दार्शनिकों ने वैयक्तिक मुक्ति का सन्देश देकर सामाजिक जीवन को विजड़ित कर दिया ।

'विघटन' शीर्षक के अन्तर्गत भारत को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों तथा भाषागत वाद-विवादों का खूब वर्णन किया गया है । 'मधुस्पर्श' सर्ग में एक बार और भी कवि ने 'कामायनी' की आलोचना की है । 'कामायनी' को लोक मुक्ति का सन्देश नहीं कहा जा सकता, उसे व्यक्ति मुक्ति के तत्वों के पर आधारित काव्य मानना चाहिये ।

इसके पश्चात् 'मध्यबिन्दु' नामक सर्ग में अरविन्द दर्शन के मूल तत्वों को कवि ने प्रस्तुत किया है । इसे अरविंद सर्ग कहें तो उचित होगा । प्रस्तुत सर्ग में कवि स्वर्गीय चेतना के अवतरण का आह्वान करता है जिसके आने से मानव जगत् एक दूसरी ही भूमि पर पहुंच जायेगा, वह भूमि की पृथ्वी पर ईश्वर के प्रवेश और प्रसार की भूमि होगी । कवि समझता है कि पृथ्वी पर एक नया संगीत जन्म ले चुका है और इसे पुष्ट करते रहना वह अपना मुख्य कार्य मान लेता है ।

लोकायतन का दूसरा अध्याय बाह्य परिवेश या अन्तश्चेतन्य है। इसके आरंभ में कवि ने दार्शनिक तथ्य का उल्लेख किया है। मानव के बीच में महान् जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा करनी है तथा सामाजिक जीवन में संस्कृति का द्वार उन्मुक्त करना है। इस पर उन्होंने जोर दिया है। कवि आधुनिक वर्ग संघर्ष तथा उसके भौतिक आधारों के प्रति अपना विरोध प्रकट करता है और सहयोग के मार्ग से, न कि संघर्ष के माध्यम से, विश्व का विकास संभव बताता है।

'द्वन्द्व' नामक सर्ग में सत् और असत् के बीच के द्वन्द्व का वर्णन हुआ है। कवि ने सत् और असत् दोनों को एक तत्त्व का ही रूप माना है। माधोगुरु, एक रूढ़िवादी कवि के रूप में इस सर्ग में प्रवेश करता है। वह संसार को माया कहता है और वह एक तरफ से धार्मिक क्षेत्र के रूढ़ तत्त्वों के प्रति आस्था प्रकट करता है।

माधव गुरु के तत्त्वों के ठीक विरुद्ध, धर्म का आख्यान करने वाला व्यक्ति आत्मानन्द है। इसके द्वारा कवि ने धार्मिक क्षेत्र में सुधार का आह्वान किया है। आत्मानन्द जी शांति आश्रम के प्रतिष्ठाता हैं। वे सांख्य, योग, मीमांसा आदि प्राचीन दर्शनों की नवीन व्याख्या करते हैं।

इसके बाद विज्ञान सर्ग का प्रारंभ होता है। कवि का विश्वास है कि वैज्ञानिक आविष्कार से जीवन के बाह्य पक्ष की ही समृद्धि बढ़ सकती है उसके साथ आन्तरिक दुविधाएं कम नहीं होती। कवि ने यहां पर पूंजीवाद की समाप्ति तथा प्रजातन्त्रवाद का आगमन दिखा कर मार्क्सवादी विचारधारा का समर्थन किया है। यूरोप में उस प्रकार आयी हुई प्रगति की प्रशंसा कवि ने की है और यह भी बताया है कि जगत में एक नवीन आंतरिक जागृति की आवश्यकता है। मात्र वैज्ञानिक आविष्कार से यह प्रगति संभव नहीं है।

इसके पश्चात 'ज्योतिद्वार' नामक सर्ग आता है जिसमें अन्तर्विकास, अन्तर्विरोध और उत्क्रांति नामक तीन भाग रखे गये हैं। प्रथम भाग के अन्तर्गत कवि की मूलभूत धारणा यह निकली है कि मानव सभ्यता का उत्थान

उसके आंतरिक उन्नयन से ही सम्भव होगा । यहां प्रकृतिक सुन्दरता के वर्णन के साथ साथ कवि का ध्येय यह रहा है कि मानव समाज पर प्रकृति का प्रभाव हुआ है ।

अंतर्विरोध नामक दूसरे सर्ग में नवीन मानव समाज की सुन्दर कल्पना की गई है । वंशी इस नवीन समाज का सूत्र संचालक है । वंशी का दृढ़ विश्वास है कि इस मानवता को उच्चतर मानसिक धरातल पर पहुंचाना बड़ा कठिन कार्य है परन्तु यह नितांत आवश्यक भी है, क्यों कि राष्ट्रों का निःशस्त्र कराना या युद्धों का वर्णन करना मात्र हमारा ध्येय नहीं है, इससे भी बढ़ कर मानव के मानसिक धरातल पर उच्च आदर्शों को स्थापित करना है । नहीं तो इस पृथ्वी पर कभी भी शांति की प्रतिष्ठा नहीं होगी

काव्य के इस प्रसंग पर कवि ने यह दिखाया है कि प्रगतिशील और प्रतिक्रिया वादी दोनों के बीच वाद-विवाद तथा संघर्ष चल रहा है। माधवगुरु और शिष्यों द्वारा आहत हो हरि मृत्यु कवलित हो जाता है । इस संपूर्ण घटना को कवि भू-मन का विप्लव कहता है । यह अंधा नियति का सहज कार्य है जिसका कवि ने पहले ही संकेत कर दिया था ।

उत्क्रांति नामक सर्ग में प्रकृतिक वर्णन को बहुधा स्थान मिला है जिसमें एक दार्शनिक आवरण का आभास मिलता है ।

'उत्तरस्वप्न नामक अंतिम सर्ग के आरम्भ में कवि ने एक आंशिक अणुरण का उल्लेख किया है। यहां संसार का एक भाग ध्वस्त हो जाता है । आश्रमवासी सुन्दरपुर को छोड़ कर हिमालय की तलहटी में आ जाते हैं मेरी नामक एक युवती ने यहीं आकर संयुक्ता नाम रख दिया और वह यहां पर नयी भूमि का निर्माण करती है । इस सर्ग में मेरी और स्तुत दो ही पात्र आते हैं ।

उत्तरस्वप्न के शेष भाग में कवि ने मानव समाज के सांस्कृतिक उन्नयन की सभी दिशाएँ प्रदर्शित की हैं । जीवन के सामाजिक, धार्मिक दार्शनिक सभी क्षेत्रों में पुरानी विधियों का अंत हो रहा है और नवीनता का संचार हो रहा है । कवि ने प्राचीन संस्कारों और साधना-विधियों पर

कोई आह था नहीं दिखाई है, इसके एकांगीपन के कारण उन्होंने इसका घोर विरोध ही किया है। पुराने संस्कारों को कवि ने इसलिए उपेक्षित किया है कि उसमें केवल व्यक्ति - मुक्ति की प्रधानता है और मानव आत्मा की कोई प्रधानता नहीं है। सामूहिक मुक्ति की कल्पना करनेवाले कवि पुरानी साधना के विरोधी ठहरता है।

प्रस्तुत सर्ग में प्रतिपादित तीसरा मुख्य तथ्य यह है कि संपूर्ण मानवीय मूल्यों का रूपांतरण हुआ है। इसका मूल कारण यह है कि मानव की चेतना उर्ध्वमुखी होती जा रही है। गीता के 'कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' को भी कवि ने यहाँ निराकृत करने की चेष्टा की है। कवि का तर्क यह है कि मानव समाज सहज रूप से फलासक्ति रहित हो गया है। नये भागवत् धर्म की कल्पना करनेवाले कवि की मूल विचारधारा का रेखांकन भी इसी सर्ग में हुआ है। कवि ने कल्पना की थी कि मन को उर्ध्व संचरण करके उस दिव्य भूमि तक पहुँच जाना चाहिए जिससे कि मनुष्य देवता बन जा सकता है। ईश्वर और मनुष्य में कोई अंतर नहीं होगा प्रस्तुत सर्ग में इन स्वप्नों को साकार होता हुआ दिखाई पड़ता है। मानव समाज चेतना के उर्ध्व स्पर्शों से अनुप्राणित होकर नवीन भगवद् जीवन बिताने लगे हैं। उनकी जीवन प्रक्रिया में काफी परिवर्तन आ गया है। सब कहीं दिव्य आलोक फैल गया है —

> इस प्रकार सांस्कृतिक कल्प नव
> भू जीवन में होता विकसित
> एक चेतना रस सागर में
> विविध रूप उठ होते अवसित।
> प्रथम बार अब जगत ब्रह्म में,
> ब्रह्म जगत में हुआ प्रतिष्ठित,
> मुक्त भेद मन से भू जीवन
> चिद् चित् पट में हुआ समन्वित।[1]

1- लोकायतन - पृ० 680.

शशि की तरी :-

'शशि की तरी' 1971 में प्रकाशित रचना है। इसमें 51 रचनाएँ संग्रहीत हैं। कवि ने इसे 'स्मृति गीत' की संज्ञा दी है। कवि ने अनुपमा नामक एक चार साल की लड़की की स्मृति में इन गीतों की रचना की है। अनुपमा इलाहाबाद के बाल भवन की लड़की थी जिसे देखते ही कवि के मन में गहरा वात्सल्य उमड़ आया था। कवि ने स्वयं उसे 'स्तुति' नाम दिया था और 'स्तुति' नामक एक कविता भी लिखी है। कवि उसके शिक्षा-दीक्षा करने की तैयारी में था। दुर्भाग्यवश घुटने के रोग के आपरेशन के अवसर पर उनका निधन हो गया। इस घटना का गहरा आघात कवि के हृदय पर पड़ा।

लड़की के निधन से उसका हृदय सदा कातर हो उठा है। उसकी छवि अब भी कवि के मन से गयी नहीं है। 'शशि की तरी' की कविताएँ उस लड़की की याद में कवि ने लिखी हैं। प्रकृति की सुन्दर वस्तुएँ अब उस लड़की की याद दिलाती हैं :-

तरु छाया कँप - कँप
जाने क्या करती इंगित
स्पर्श तुम्हारे ही भावों का
मिलता अविदित ।[1]

शंख ध्वनि :-

यह 1971 में प्रकाशित रचना है। इसमें 97 कविताएँ संकलित हैं। 'शंखध्वनि' में कवि के अपने शब्दों में 'नये जागरण के स्वरों को तथा विश्व जीवन के भीतर उदय हो रहे नये मनुष्यत्व की रूपरेखाओं[2] की अभिव्यक्ति हुई है। कवि का सैध्दान्तिक पक्ष-मानव की आंतर संस्कृति और बाह्य यथार्थ के परिणय का आग्रह - इसमें काफी सशक्तता से अभिव्यक्त है। कवि ने माना है कि मार्क्स का भौतिकवादी दृष्टिकोण एकांगी है। आदर्श और यथार्थ का समन्वय ही कवि का मुख्य उद्देश्य है जिससे महत् संस्कृति का निर्माण कर सकें। कवि निकट भविष्य में इस संस्कृति के आने की आशा करता है।

1- शशि की तरी - पृ0 34
2. शंख ध्वनि पृ. 1

वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ ही मानव मूल्यों पर इसका बुरा प्रभाव कवि ने यहाँ दिखाया है । इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत सुख दुःख की कुछ कविताएँ शंखध्वनि में प्राप्त हैं । ये हैं 'राजु' तथा 'पुरस्कार' । शंखध्वनि में ऐसी रचनाएँ भी बहुत मिलती हैं जिनमें भावबोध अधिक समृद्ध और रंगोज्ज्वल है,, उदा॰ - आत्मकथा, मेरी वीणा, सूर्य बोध आदि कविताएँ ।

समाधिस्ता :-

यह 1973 में प्रकाशित काव्य संग्रह है । इसमें 101 नवीन कविताएँ संकलित है । समाधिस्ता की कविताओं की भूमिका कवि की नवीन दृष्टि और चिंतन की साक्षी है । इसमें संकलित कविताओं के बारे में विचार करते समय यह ज्ञातव्य हो जाता है कि कवि ने अपनी मूलभूत धारणा को कहीं खोने नहीं दिया है । उसके काव्य विकास में आदि से अंत तक एकसूत्रता विद्यमान है । पंत जी ने अपनी नवीनतम रचनाओं में आध्यात्मिक विचारधारा को सर्वाधिक आत्मसात किया है । भौतिकवाद तथा आध्यात्मवाद दोनों का समन्वय मानव मंगल के लिए उन्होंने आवश्यक समझा । समाधिस्ता में पंत का यह दृष्टिकोण रहा है ।

मानवतावाद और मानवत्व की प्रतिष्ठा प्रस्तुत संग्रह का मर्म है । ये कविताएँ कवि के आत्मबोध से निसृत है जो अपनी आध्यात्मिकता और आत्मतल्लीनता के कारण अधिक भौतिक परक बौधा जीवन के वातावरण से कहीं दूर रह गयी है । सहज चिंतन ही उसका चिर साथी दीख पड़ता है । प्रत्येक मानव अपने तन, मन और प्राण न्योछावर करके ईश्वर तुल्य बन सकता है । ईश्वर मानवीय रूप धारण करके पृथ्वी पर स्वर्ग लाता है । जीव और ईश्वर में सचमुच फ़रक नहीं है --

भेद नहीं जग में ईश्वर में ।
प्रज्ञा हो जो विकसित ।
भू पर पर ईश्वर ही प्रतिक्षण ।
विचरण करता निश्चित ।[1]

1- समाधिस्ता - पृ0 8

पंत जी केवल सुंदर के ही नहीं, सत्य और शिव के भी अन्वेषी है सत्यं, शिवं, सुन्दरं का समन्वय उनकी कविता में दृष्टिगत होता है। जो सुंदर है उसमें सत्य और शिवं निहित ही है। कवि सौंदर्य के माध्यम से सत्य और शिव की खोज करता है --

नव खिलती कलियों से
जो सौंदर्य सांकेता-
वही तत्वतः शाश्वत।
क्षण भंगुर माध्यम मुखरा
पीले पत्तों में परिणत।
भंगुर ही में रचपच कर
शाश्वत का रहना संभव,-
जो शाश्वत को पृथक खोजते
रीता उनका अनुभव।
जन को मध्ययुगीन दृष्टि से
उठना निश्चय उ,पर,-
सत्य दृष्टि जीवन मंगलमयी,।
इह - पर युगपत निर्भर।

कवि पहले ही सुख-दुःख दोनों के मधुर मिलन में ही जीवन की परिपूर्णता मानता आया है। कवि ने प्रस्तुत संग्रह में इसका भी परिचय दिया है।

यहाँ नारी के कल्याणी रूप भी कविता के प्रतिपाद्य रूप में आया है। समाधिस्था में कवि का सौंदर्य बोध, राग बोध तथा मानवबोध किसी न किसी प्रकार अभिव्यंजित होकर आया है चाहे उसके बाह्य आवरण में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य आये हो। यहाँ पंत की अभिव्यक्ति उनके अरविन्द दर्शन की कविताओं की अपेक्षा बहुत कुछ सरल तथा ललित बन गयी है।

1- वही - पृ0 12

आस्था :- 'आस्था' पंत जी की 1973 में प्रकाशित काव्य संग्रह है। इसको कवि के नवीन चेतना काव्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इसमें 105 कविताएँ संग्रहीत है।

इसकी कविताएँ अधिकांशतः पंत जी के प्रौढ़ चिंतन की परिचायिका है, जहाँ कवि सांस्कृतिक ह्रास से अत्यधिक विचलित दिखायी पड़ते है। एक ओर सभ्यता के विकास ने मानव जीवन में जीवंत प्रभाव डाला है तो दूसरी ओर जनता की सांस्कृतिक वृद्धि लगभग नष्टप्राय हो गयी है। जीवन का बाहरी पक्ष पग पग पर अभिवृद्धि पा रहा है और बाहरी मूल्य का ध्यान विशेष रूप से किया जा रहा है। परन्तु उसकी आंतरिक शक्ति का एक दम ह्रास ही हुआ है। इस विषय पर कवि का ध्यान विशेष रूप से गया है जिससे प्रेरित होकर आस्था की अधिकांश कविताओं की रचना हुई है।

अरविंद दर्शन का विचार तथा नव अध्यात्म का परिचय 'आस्था' में भी मिलता है जहाँ नव मानव का पूर्ण मानव की प्राप्ति मुख्य स्वर रहा है। अरविंद के 'नया संसार' की कल्पना इसमें लक्षित है। कवि ने नव स्वर्ग बनाने के लिए आडम्बर पूर्ण जीवन का निषेध किया है। साथ ही उन्होंने मध्ययुगीन आध्यात्मिकता को कोरा पलायन माना है। संतों और भक्तों की आध्यात्मिकता को उन्होंने पलायन इसलिए बताया है कि इससे साधारण जनता का उद्धार असंभव है। वे इस भूखे नंगे जनों को नव अन्नोदय का रंगीन स्वप्न दिखला कर भ्रमजाल में फँसा देते है। 'आस्था' पंत की इन्हीं विचारधाराओं से ओत-प्रोत है।

निष्कर्ष :-

सौन्दर्य चेतना, समाज-चेतना और अध्यात्म चेतना से संपृक्त पंत जी की विभिन्न काव्य कृतियों के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उनकी काव्य-कृतियों में आद्यन्त लक्षित होने वाली कथ्य प्रकृति है। प्रकृति को पंत जी ने विभिन्न कोणों से देखा है और समझा है। निःसन्देह वे हिन्दी के सबसे बड़े प्रकृति प्रेमी कवि है।

अध्याय चार

पंत की कविता का भावपक्ष

भावपक्ष का अभिप्राय :

कवि साधारण मनुष्य की अपेक्षा कुछ अधिक भावुक और विचारशील होता है किन्तु वह अपने अनुभव को अपने तक सीमित नहीं रखना चाहता है। वह अपने हृदय का रस दूसरों तक पहुँचाकर उनको भी अपनी तरह प्रभावित करने को उत्सुक रहता है। कवि की अनुभूति यहाँ मूलभूत कार्य करती है। भाव पक्ष का सम्बन्ध अनुभूति से है। कविता में कल्पना का नियोजन जितना उत्कृष्ट और उदात्त होगा उसकी महत्ता उतनी ही अधिक होगी। इसका तात्पर्य यह है कि कवि के मन से निकलनेवाली कल्पनाएँ जितना ही सृजनात्मक तथा सुचारु हो वह कविता उतना ही श्रेष्ठ तथा मंगलकारी रह जाती है।

काव्य की आत्मा के सम्बन्ध में आचार्यों में मतभेद है। किसी ने रस को काव्य की आत्मा माना है तो और किसी ने अलंकार को। वक्रोक्ति को भी काव्य की आत्मा के अन्तर्गत रखने में कुछ आचार्य हिचकते नहीं थे। रीति, ध्वनि आदि पर विशेष बल देकर उसे आत्मा मानने में कुछ आचार्य तैयार हो गए। पण्डितराज जगन्नाथ ने काव्य की परिभाषा देते हुए कहा है कि 'रमणीयार्थ : प्रतिपादक : शब्द : काव्यम्'[1] जिससे स्पष्ट होता है कि काव्य में रमणीयअर्थ का प्रतिपादन आवश्यक है। इस रमणीय अर्थ का सम्बन्ध भाव से है। वर्डसवर्थ ने भाव को प्रधानता देते हुए कहा है कि काव्य शान्ति के समय में स्मरण किए हुए प्रबल मनोवेगों का स्वच्छन्द प्रवाह है।[2] वस्तुत : काव्य की आत्मा उसका भाव ही है। दूसरे ~~अनेक~~

1- रस गंगाधर - पण्डितराज जगन्नाथ

2- 'Poetry is the spontanious overflow of powerfull feelings and emotions recollected in tranquillity'. Lyrical Ballads. Ref: A history of English Literature-Edward Albert P.295.

तत्व उस पर निर्भर रहते हैं । यद्यपि अनुभूति और अभिव्यक्ति का सामंजस्य आवश्यक है तथापि अनुभूति की महत्ता या आवश्यकता अधिक है । अतएव कविता के अध्ययन अनुशीलन से उसके केन्द्रीय मूल्य की पहचान होती है ।

छायावादी कविता के अध्ययन करने पर इनके कतिपय केन्द्रीय मूल्यों की पहचान होती है जिसमें काल्पनिकता, स्वातंत्र्य, वैयक्तिकता, विषयनिष्ठता, अनुभूति की प्रतिष्ठा, वेदना की विवृत्ति, प्रेमानुभूति, सौन्दर्य बोध, प्रकृति की ओर प्रत्यावर्तन, राष्ट्रीयभावना, विश्वमानवतावाद, लोकमंगल आदि प्रमुख है । छायावादी कविता की ये प्रवृतियाँ उनकी प्रेम और सौन्दर्य की विशिष्ट अनुभूति पर निर्भर रहता है । इनकी दृष्टि प्रेम और सौन्दर्य के विषय में विशिष्ट रूप धारण करती थी । आलोच्य कवि सुमित्रानन्दन पंत की कविता के बारे में यह बात लागू हो सकती है । पंत की कविता के भाव-जगत् को स्पष्ट रूप से समझने के लिए उसकी मूलभूत मनोवृत्ति प्रेम और सौन्दर्य के स्वरूप का परिचय पाना आवश्यक है । पंत के भावपक्ष के अन्तर्गत मुख्यतः दो तत्व उल्लेखनीय है । (1) प्रेम (2) सौन्दर्य । वस्तुतः पंत काव्य के भावपक्ष का प्रमुख कथ्य प्रेम और सौन्दर्य है ।

प्रेम निरूपण :-

प्रेम अत्यंत व्यापक मनोवृत्ति है, अतः यह परिभाषातीत है । प्रेम का सम्बन्ध मानव से है । मानव का जीवन क्षेत्र विशाल है इसी कारण प्रेम के भी विभिन्न रूप दीखते है । काव्य में प्रेम निम्न लिखित रूप में वर्णित है ।

1- स्त्री-पुरुष प्रेम
2- देश - प्रेम
3- मानव - प्रेम
4- प्रकृति - प्रेम

स्त्री - पुरुष प्रेम :-

कवि पंत की प्रेम सम्बन्धी धारणा बहुत व्यापक है । उन्होंने प्रेम को सर्वव्याप्त और जीवन के लिए सबसे आवश्यक वस्तु माना है । प्रेम जीवन की हर

अवस्था से सम्बद्ध है । प्रेम के भिन्न भिन्न रूप का प्रकाश मानव-जीवन पर विकीर्ण पड़ा है । रुदन, क्रीड़न, आलिंगन, मरण, सेवन, आराधना-1 सब कहीं प्रेम का रूप शशि की सी कलित कला के समान विलक रह जाता है । उच्छ्वास में पंत ने गाया है -

> यही तो है बचपन का हास, खिले यौवन का मधुप विलास
> प्रौढ़ता का वह बुद्धि विलास, जरा का अन्तर्नयन प्रकाश
> जन्म दिन का है यही हुलास। मृत्यु का यही दीर्घ निश्वास ।-2

कवि की प्रेम भावना में स्त्री -पुरुष सम्बन्धी प्रेम को प्रधानता मिली है । मनुष्य की सहजात वृत्तियों में सबसे प्रधान स्थान रति का है, क्यों कि इसी के कारण मनुष्य की वंश-परंपरा अक्षुण्ण रहती है । इस लिये अनादि काल से मनुष्य के क्रियाकलापों में इसकी महत्ता होती आयी तथा काव्य में भी इससे सम्बन्धित भावना का चित्रण करता आया । पंत ने गाया

> ' नारी गूढ़ समस्या जग की
> नर-नारी हर का हो परिणय
> राग चेतना का विकास ही
> निखिल प्रकृति का सार, न संशय । ' -3

पंत की कविता में लौकिक प्रेम का चित्रण होने पर भी प्रेमके आदर्शवादी रूप को ही जीवन के दर्शन के रूप में उन्होंने आत्मसात् किया है । प्रेम को इस आदर्शवादी स्वरूप में स्वभावतया इसकी शृंगारी भावना का तिरस्कार मिलता है । निश्चय ही लौकिक तथा अलौकिक की सीमा रेखा के टह जाने पर भी कवि की प्रेम भावना उदात्त और पवित्र प्रेम के स्तर तक संचरण करती हुई दिखाई पड़ती है । उनकी कविता में लौकिक क्षेत्र के प्रेम वर्णन में भी वासनात्मक रूप का चित्रण विरले ही मिलता है । अतएव

1- पल्लव पंत पृ. 7
2- वही वही पृ 7
3- लोकायतन - पृ -61

उन्होंने आन्तरिक धरातल की पावन प्रवृत्ति के रूप में इसको स्वीकार किया है। प्रेम को आत्मा के गुण के रूप में कवि ने देखा है -

अनिल सा लोक लोक में
हर्ष में और शोक में
कहाँ नहीं है प्रेम, साँस सा सब के उर में। -1

इस तरह मानव के शारीरिक मांसल सौन्दर्य की जगह उनके अतीन्द्रिय मानसिक और काल्पनिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति उनकी कविता में हुई है। प्रिया के सूक्ष्म शारीरिक सौन्दर्य का उद्घाटन कवि करता है तो उससे उसका तादात्म्य भी हो जाता है। देखिये -

नील नलिन सी है वह आँख।
जिसमें बस उर का मधुबाल
कृष्ण कनी बन गया विशाल
नील सरोरुह सी वह आँख। -2

भावुक हृदय के लिये प्रेम की अनुभूति केवल स्थूल भावाभिव्यक्ति नहीं है। वह एक आध्यात्मिक अनुभव है। इस अनुभव को वाणी देकर स्वयं आनंदित होना और अन्य सहृदयों को आनन्दित करना प्रेमी कवियों का कार्य है। पंत ने इस अनुभूति को बड़ी स्वाभाविकता के साथ वाणी दी है। कवि की कोमल कल्पना की मोहकता यहां दर्शनीय है। 'गुंजन' में 'भावी पत्नी' नामक कविता देखिए -

मुकुल मधुपों का मृदु मास,
स्वर्ग, सुख, श्री सौरभ का सार
मनोभावों का मधुर विलास
विश्व सुषमा ही का संसार
दृगों में छा जाता सोल्लास
व्योम-बाला का शरदाकाश,
तुम्हारा आता जब प्रिय ध्यान,
प्रिये प्राणों की प्राण। -3

1- पल्लव-उच्छ्वास पृ0 7
2- गुंजन पृ0 45
3- गुंजन पृ0 41

प्रिया के साथ काल्पनिक प्रेम सम्बन्ध स्थापित करके कवि मिलन सुख का अनुभव करता है। यहां कवि अपने आदर्श के अनुरूप संसार में कोई प्रिया को न पाकर किसी अज्ञात सत्ता के रूप व्यापारों का आरोप करके उसके प्रति अपना प्रणयोद्गार व्यक्त करता है। निश्चय ही कवि मुग्ध हृदय से मिलन सुख का आनन्द अनुभव करता है।

छायावादी कविता की यह विशेषता है कि उसमें रति भावना का उदात्तीकरण हुआ। इन कवियों ने प्रेम के व्यापक चित्र को खींचा। प्रेम को उसके मध्ययुगीन आनुषंगों से मुक्त करना छायावाद की स्वातन्त्र्य भावना का ही अंग है। छायावादी कवियों ने वैयक्तिक प्रेम की अनेक मनोदशाओं के सूक्ष्म चित्रण के अतिरिक्त प्रेम नामक भाव को उदात्त रूप देकर उसे स्वतंत्र रूप से काव्य का विषय बना दिया और इस प्रकार छायावाद में प्रेम एक गंभीर जीवन दर्शन के रूप में प्रकट हुआ।-[1]
प्रेम व्यक्तिवादी धरातल को छूकर बढ़ने पर भी, बाद में वह प्रकृति प्रेम और फिर विश्व प्रेम में परिणित हो गया। कवि पंत यह भी चाहता है कि संसार के हर प्राणी के अन्तर प्रेम रूपी दिव्य वस्तु को उतारना है। कवि का लक्ष्य वहीं सफल हो जाता है।-

चार कोमल शब्दों को चुन-चुन मैं लिखता जन-जन के मन पर
मानव आत्मा का आद्य प्रेम, जिस पर है जग जीवन निर्भर।-[2]

स्त्री पुरुष प्रेम में प्रेमानुभूति का उद्गार कभी कभी विरह जन्य तड़पन में अधिक विश्वव्यापक हो जाता है। विरहावस्था में विरही की आत्मा कण-कण में व्याप्त हो जाती है। जीवन में उज्ज्वल गुणों और उदारता, ममता सहानुभूति आदि का विकास विरह में ही हो जाता है। इस लिये साहित्य में मिलन की अपेक्षा विरह का महत्व सर्वाधिक है। विरह के माध्यम से ही प्रेमी हृदय, जीवन के परम तत्व का अनुभव कर सकने में समर्थ होता है। भारतीय साहित्य में विरह वर्णन को खूब स्थान मिला है।

1- हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास- दशम- भाग सं० डा० नगेन्द्र पृ0140
2- युगवाणी पृ- 32

छायावादी कवियों ने भी विरह भावना को सर्वत्र स्वीकार किया है। पंत ने भी विरह वर्णन में अपनी दक्षता दिखायी है, क्यों कि उन्होंने माना है कि विरह के क्षणों की अनुभूति हृदय को दिव्य व उज्ज्वल बना देती है। 'ग्रंथि' में उन्होंने प्रेम को विरह की ज्वाला में जला-जला कर खरा कुन्दन बना दिया है। तात्पर्य यह है कि मिलन की भावना को व्यंजित करके उन्होंने जो उल्लास और आनन्द प्रकट किया है उससे भी बढ़ कर विरह ने कवि के हृदय को पावनता तथा उज्ज्वलता प्रदान की है। विरह की स्थिति में सात्विक प्रेम विशेष प्रकट होता है जिससे कि यह कोरे काम का लक्षण न होकर उदात्त प्रेम का सूचक बन जाता है। 'ग्रंथि' में प्रिया के अभाव में कवि का हृदय तीव्रता के साथ चीत्कार कर उठता है - 'हृदय सब भाँति तु कंगाल है'.[1] परन्तु उसी विरह वेदना ने उन्हें कवि बनाया और कवि ने वेदना को व्यापक माना -

> वेदना - कैसा करुण उद्‌गार है।
> वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह,
> तुहिन में, तृण में, उपल में लहर में,
> तारकों में - व्योम में है वेदना,
> वेदना - कितना विशद यह रूप है।
> यह अंधेरे हृदय की दीपक शिखा।
> रूप की अंतिम छटा। औ' विश्व की
> अगम चरम अवधि, क्षितिज की परिधि सी।-2

विरह में कवि को ऐसा लगता है कि अपना प्रिय चिर और अचिर दोनों से परे है और इस लिये वह उसमें अमर सौन्दर्य का दर्शन करता है।-

> तुम आए, गए, जगत का जाल, तुम हो तुम होगे सत्य अटल,
> रीता हो, भरे धरा अंचल, तुम परे अचिर चिर से सुन्दर।-3

1- ग्रंथि पृ० 128
2- वही - पृ० 131
3- वही - पृ० 140

पल्लव के 'उच्छ्वास' और 'आँसू' कविताओं में प्रेम का वियोग पक्ष मार्मिक रूप से चित्रित हुआ है। ~~बालिका के प्रेम से~~ प्रेमिका के वियोग की व्यथा दोनों कविताओं में वर्णित है। यहाँ भी वैयक्तिक वेदना कराह उठती है और कवि की आत्मस्वीकृति है कि वे 'कल्पनाओं में कल्पलता'[1] - ही हैं। 'उन्हें अनुभूति और कल्पना का वरदान प्राप्त है। वह भावनाओं को ऐसा रूप देते हैं कि उसे पढ़ कर हृदय में उनको कसक ज्यों की त्यों उतर आती है। इसका कारण यह है कि कवि की कल्पना वेदनामयी है उसके आँसुओं में गान-जीता सिसकता है और शून्य आहों में सुरीले छन्द हैं, ऐसा समन्वय होने के कारण ही मधुरिमा का कहीं अन्त नहीं होता।- 2 पन्त का वियोग पक्ष संयमित - शुद्धता और अनुभूति प्रद हुआ है।

2:- देश प्रेम:-

पन्त की कविता में देश प्रेम का उद्‌गार भी नवीन शैली में व्यक्त हुआ है। उन्होंने भारत माता के रूप में यथार्थवादी कल्पना की है। भारत गाँवों में बसता है। भारतीय गाँवों की दशा कितनी दयनीय है। उस दयनीयता को मूर्तिमान करने के लिये कवि ने भारतमाता का यह युगानुरूप करुण चित्र अंकित किया है।

भारत माता ग्राम वासिनी
खेतों में फैला है श्यामल, धूल भरा मैला सा आँचल,
गंगा-यमुना में आँसू जल, मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी।
दैन्य जड़ित अपलक नत चितवन अधरों में चिर नीरव, रोदन।
युग युग के तम से विषण्ण मन, वह अपने घर में प्रवासिनी,
तीस कोटि संतान नग्न तन, अर्धक्षुधित, शोषित, निरस्त्र जन,
मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन, नतमस्तक तरुतल निवासिनी। -3

1:- पल्लव उच्छ्वास पृ0 5
2:- आधुनिक हिन्दी कविता का मूल्यांकन- इन्द्रनाथ मदान - पृ0 200
3:- ग्राम्या - भारतमाता - पृ0 48

भारत की दशा का यह कितना करुण यथार्थ चित्र है। ग्राम्या में अनेक गीत ऐसे हैं जिससे भारत की दुर्दशा का परिचय पाठक प्राप्त कर सकते हैं। इसमें 'ग्राम', 'ग्राम दृष्टि', 'ग्राम चित्र', 'ग्राम नारी', 'कठपुतले', 'वह बुड्ढा' 'ग्राम वधू', 'ग्राम श्री', 'ग्राम देवता', 'मजदूरनी के प्रति', आदि स्फुट कविताएँ उदाहरण के रूप में ली जा सकती है। पंत की राष्ट्रीय भावना यहाँ अधिक सूक्ष्म दिखायी पड़ती है। इन कविताओं में पंत ने भारत की जनता की दुर्दशा पर विचार किया है। दीन-दलित ग्रामीणों के प्रति सहानुभूति तथा उनकी मुक्ति की आशा कवि प्रकट करता है।

पंत के देश-प्रेम का दूसरा रूप, भारत माता के जय गीतों में प्रकट है। उन्होंने इसमें भारत के गौरव और शक्ति की गाथा गायी है। भारत की व्यापक राष्ट्रीय भावना कवि की दृष्टि में महान है। सारे गुणों को अपने में समाहित किए हुए भारत का जय गान इसमें ध्वनित है।-

जय भारत माता
जगति ज्योति स्नाता।
शान्ति ध्वजा सा शुभ्र हिमालय
नभ में फहराता।
× × ×
विश्वप्रेम, करुणा - ममतामयी,
शक्ति पीठ, जीवन क्षमतामयि,
सिंहवाहिनी, दुष्ट दमन हित
चण्डी विख्याता -।

पंत अपनी जन्म भूमि भारत पर अवश्य ही गर्व करने वाले कवि है। कवि भारत के आन्तरिक गुण और बाहरी सौन्दर्य राशी पर एकदम मुग्ध है। एक समय ऐसा था जब भारत बाहरी दृष्टि से दुर्दशा ग्रस्त था उस समय भी देश की सौन्दर्य माधुरी तथा श्री शोभा से कवि मस्त होता रहता था।

1- किरणवीणा - पृ0- 148

देश के इन्हीं गुणों के कारण कवि इस के सामने नतमस्तक होकर उसका स्वागतगान उल्लास के साथ गाता रहता है :-

गगन चुंबी विजयी तिरंग ध्वज इन्द्रचापमय है,
कोटि-कोटि हम श्रम जीवि सुत संभ्रम युत नत है,

× × ×

समुच्चरित शत शत कंठों से जन युग स्वागत है,
सिन्धु तरंगित, मलय स्वसित, गंगाजल ऊर्मि निरत है ।[1]

पन्त जी की कविताओं में देश-प्रेम के दो रूप यथार्थवाद तथा आदर्शवाद लक्षित होते हैं । भारत की परतंत्रता के समय की परिस्थिति से प्रेरित कतिपय रचनाओं में भारतवर्ष के तत्कालीन दृश्यों की आवाज साफ सुनी जा सकती है । दलितों और दरिद्रों की दयनीय स्थिति से खूब परिचित होकर उसकी मुक्ति की आकांक्षा चाहनेवाली मनोवृत्ति के कारण ही कवि को कंठ से देश प्रेम से ओत प्रोत पढ़ा था । राष्ट्रीय चेतना के क्षेत्र में गांधी विचारधारा के साथ साथ समाज चेतना के क्षेत्र में साम्यवादी विचारधारा को अपनाने के मूल में कवि की यही मनोवृत्ति निहित है । राष्ट्रीय जागृति अथवा स्वतन्त्रता आन्दोलन के नारों से पंत की कविता समृद्ध न होने पर भी उन्होंने राष्ट्रीय-जागरण, तथा गांधी जी की विचारधारा के प्रचार का प्रयत्न किया है । 'लोकायतन' के अनेक पात्र ऐसे हैं जो स्वदेश के लिए जीने-मरनेवाले हैं तथा गांधी जी के आदेशों का शत - प्रतिशत पालन करनेवाले हैं । वस्तुतः कवि ने देश प्रेम का मार्मिक उद्गार व्यक्त किया है जिसमें कवि की उदार भावना की झलक मिलती है ।

3- मानव - प्रेम

मानव-प्रेम भारतीय साहित्य में पहले से ही चित्रित है । मानव-प्रेम भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है । इसे ईश्वर प्रेम का पर्याय कहा जा सकता है । मानवीयता ही मानव को मानव बना देती है । पंत जी ने इस मानवीयता का महत्व वर्णित किया है । उन्होंने माना है कि मानवीयता नारों

1- ग्राम्या - पृ0-54

में निवास नहीं करती । खरी मानवता दीन हीन व असहाय के पास मिलती है । सच्चा सहृदय कवि इसीलिए दीनों के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है । पंत ने समाज के पतितों को भी मानवी दुर्बलता के साथ देखा है :-

नंगे तन, गदबदे, सांवले, सहज छबीले,
मिट्टी के मटमैले पुतले - पर फुर्तीले ।
x x x
दौड़ पार आंगन के फिर हो जाते ओझल,
वे नाटे छः सात साल के लड़के मांसल
सुन्दर लगती नग्न देह, मोहती नयन मन,
मानव के नाते उर में भरता अपनापन ।[1]

मानवीय ममत्व और सहानुभूति की यह भावना कवि की ग्राम्या की अनेक कविताओं में प्रकट हुई है । युगवाणी में कवि ने मानव सभ्यता, मानव-संस्कृति और मानव जीवन की करुण गाथा गायी है । उसका मन पृथ्वी के पीड़ित-प्रताड़ित ग्राम जनता की ओर आकृष्ट होता है। वह उनके दुःखों से चिन्तित होने के साथ साथ, उनकी जीवन मुक्ति के उपाय भी खोजने की ओर अग्रसर होता है । उनके जीवन में सुनहला प्रभात फैलाने की तीव्र इच्छा वह करता है । जीवन में नया आलोक तब ही फैलाया जा सकता है जब मानव जीवन परंपरागत रुढ़ि-रीतियों के पाश से मुक्त हो जाएगा । इस दृष्टि से कवि का उद्बोधन है कि इस पृथ्वी के जीवन को संवारने एवं दुःख- दग्ध प्राणियों के उद्धार के लिए, धर्म, कला और संस्कृति को नये क्षेत्र में अधिष्ठित करो ।

नारी जागरण की आवश्यकता पर पंत की दृष्टि गयी तो इस कारण कि वे मानवता प्रेमी हैं, मानवता के विकास के लिए नारी-जागरण को अनिवार्य तथा महत्वपूर्ण मानते हैं । कवि के कथनानुसार कर्म निरत नारी का स्थान समाज में सदैव ऊँचा है, वह समाज का अंग है । मानव का उत्थान तथा विश्व-कल्याण की अनुष्ठापन लिए हुए कवि सर्वत्र खड़ा होता है । सचमुच मानवतावाद के पुनीत और व्यापक दृष्टिकोण पंत की अपनी विशेषता है। आज वे नवीन

1- आधुनिक कवि - दो लड़के - पृ० - 12

भावोन्मेष तथा लोक कल्याण से प्रेरित होकर तथ्यात्मक चित्रों का अंकन करते हैं। उनकी वाणी में मानव हृदय के सुख-दुःख और मानव जीवन के संघर्ष का स्वर मुखरित होता रहता है। उन्होंने मानव का महत्व बार-बार घोषित भी किया है। मानव जन्म तो सबसे श्रेष्ठ तथा मानवता सबसे महान है :-

सुंदर है विहग, सुमन सुंदर,
मानव तुम सबसे सुन्दरतम
निर्मित सब की तिल सुषमा से
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम।[1]

कवि के इस मानव-प्रेम में समाज बोध का स्वस्थ भावात्मक दर्शन देखने को मिला है। उन्होंने अपने काव्य विकास के तीनों आयामों में मानव प्रेम की भावना को अभिव्यक्त किया है। परन्तु समाज बोध के युग में इसका स्पष्ट एवं पुष्ट रूप देखने को मिलता है। वे अत्यन्त मानवता की श्रीवृद्धि चाहते हैं, जन-मंगल की आतुर भावना प्रकट करते हैं। कुछ आलोचकों का विचार है कि पंत के मानव प्रेम के मूल में उनकी बौद्धिक सहानुभूती ही है। उन लोगों का विचार है कि जन जीवन से दूर जीवन-संघर्ष से अछूते, स्वप्न जीवन में विचरण करने वाले कवि से इससे अधिक आशा क्या की जा सकती है? पंत का जन्म अल्मोड़ा के निर्धन गाँव में हुआ है। उन्होंने जीवन-संघर्ष झेला है, और आर्थिक अभाव का अनुभव भी किया है। जन्मभूमि के निर्धन पहाड़ी प्रदेश के दैन्य वातावरण का चित्र अपने आँखों से देखा है। उसी से प्रेरित होकर उन्होंने गाँव की दयनीय अवस्था का मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है। ग्रामीण जीवन का स्पंदन उनकी कविता में मिलता है। नए जीवन निर्माण के बल पर स्थापित गाँव का स्वस्थ रूप उनकी कविता में अंकित है :-

ग्राम नहीं वे ग्राम आज
लौह नगर न नगर जनाकर
मानव कर से निखिल प्रकृति जग
संस्कृत, सार्थक, सुंदर।[2]

1- युगान्त - मानव - पृ0 - 55
2- ग्राम्या - पृ0 - 11

कवि का यही मानव-प्रेम परवर्ती काल में 'नव मानवता' के रूप में रूपायित हुआ है ।

4- प्रकृति - प्रेम

प्रकृति पन्त काव्य का महत्वपूर्ण प्रतिपाद्य है । वे प्रकृति के उपजीवक है और उनका कवि हृदय प्रकृति के भक्त है । प्रकृति ने ही उन्हें कवि बनाया और प्रकृति की गोद में पलकर ही उनका विशाल विस्तृत भावुक हृदय का विकास हुआ है । प्रकृति के साहचर्य से कवि पंत की सृजन प्रतिभा का विकास हुआ । प्रकृति से उनका दृष्टिकोण व्यापक तथा गहरा बन गया । प्रकृति उनके सब कुछ थी । 'संसार के छोटे - मोटे संघर्षों तथा जीवन के कटु तिक्त अनुभवों के परे प्रकृति ने एक व्यापक पुस्तक की तरह खुलकर उनके भीतर अनेक सहानुभूतियों, सांत्वनाओं स्नेह, ममत्व की भावनाओं तथा अनिर्वचनीय अलौकिक, अपने को भुला देने वाली शक्तियों का बोध स्पर्श अंकित किया है'[1] इस प्रकार प्रकृति के सौन्दर्य और भव्यता ने कवि के कवि हृदय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रभाव डाला है । जीवन और साहित्य में प्रकृति उनके साथ रही । उनका प्रकृति प्रेम निम्नलिखित पंक्तियों से स्पष्ट होता है ।-

> छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया
> बाले तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन
> भूल अभी से इस जग को । -2

पन्त जी की प्रकृति और प्रकृति काव्य का विशद अध्ययन अगले अध्याय में प्रस्तुत करेंगी । अतएव यहाँ पर इस विषय पर काफी विस्तार से चर्चा करना आवश्यक नहीं है ।

5- श्रद्धा -प्रेम

इसके अन्तर्गत महापुरुषों , गुरुजनों , नेताओं के प्रति प्रेम श्रद्धा रूप में प्रकट की जाती है । यह भी प्रेम भावना के अन्तर्गत स्पृ. ठिव-छोकेमले-रति-भाव-----

---

1- सु. पंत - जीवन और साहित्य - शांति जोशी - पृ. 15-16.

2- आधुनिक कवि - २ - पृ0 ।

का परिष्कृत रूप है। इस प्रेम की अभिव्यक्ति के द्वारा कवि पूज्य एवं श्रद्धेय व्यक्तियों के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करता है। पंत जी ने गांधी,[1] अरविन्द,[2] जवाहर,[3] महावीर प्रसाद द्विवेदी,[4] रवीन्द्र नाथ ठाकुर,[5] मार्क्स[6] आदि सांस्कृतिक साहित्यिक महापुरुषों के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं।

इस दृष्टि से हम देखते हैं कि पंत के प्रेम चित्रण में विविधता आयी स्त्री-पुरुष प्रेम निरूपण भी रीतिकालीन वासनात्मकता से आक्रान्त नहीं है। किन्तु स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति से काल्पनिकता का समावेश उनकी कविता में हुआ है। परिणाम स्वरूप इसमें सप्राणता तथा लावण्य आ गयी है। अन्य छायावादी कवियों की तुलना में, राष्ट्रीय-जागरण का गीत पंत में विरले ही मिलता है। परन्तु अपनी प्यारी जन्मभूमि के प्रति श्रद्धा और गौरव की गाथा पंत के कंठ से मार्मिक ढंग से फूट निकली है।

2- सौन्दर्य निरूपण

सौन्दर्य का सम्बन्ध मनुष्य के भावात्मक संवेगों के साथ है। 'मानव अब अपनी जिन तीन प्रमुख प्रवृत्तियों से परिचालित है - जिज्ञासा, चिकीर्षा एवं सौन्दर्योपासना - इन्हीं तीनों की तृप्ति के लिए वह ज्ञान, कर्म और सौन्दर्य को खोजता है। ये ही प्रवृत्तियाँ उसे निरन्तर विकास की ओर लिए जा रही हैं। इन्हीं के सहारे सत्य के अन्वेषण में निरत रहता है। किन्तु ज्ञान दुर्बोध है, दुरूह है। कर्म कठिन है कठोर है। सौन्दर्य मृदु है, मधुर है। सुकुमार है अनन्त है तथापि सरल है'।[7] इस सौन्दर्य बोध के सहारे ही परम आनन्द का अनुभव होता है। मानव की आत्मा से सम्बन्धित परम आनन्द का आधार परम

1- ग्राम्या - महात्मा जी के प्रति - पृ० - 52
2- स्वर्णधूलि - अरविन्द के प्रति - पृ० - 24
3- स्वर्ण-किरण - श्री जवाहर लाल नेहरू के प्रति - पृ० - 36
4- युगवाणी - आचार्य द्विवेदी के प्रति - पृ० - 99
5- वाणी - रवीन्द्र के प्रति - पृ० - 101
6- युगवाणी - मार्क्स के प्रति - पृ० - 44
7- आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना - कु० शकुन्तला शर्मा - पृ० - 1

सौन्दर्य ही है। इस सौन्दर्य बोध के प्रति पर्याप्त सचेत रहने के कारण ही काव्य एवं कला मानव के अन्तःकरण को आनन्दातिरेक से विभूषित करती है। इसलिए कला एवं काव्य में सौन्दर्य का महत्वपूर्ण स्थान है और ललित कलाओं का मुख्य आधार भी यह है। उस परम सौन्दर्य का अंश जिन - जिन कृतियों में जितनी मात्रा में तथा जितनी सूक्ष्मता से अनुभूति का विषय होता है वह कृति उतनी ही सुन्दर होती है।

सौन्दर्य को द्रष्टा के मन में स्थित अनुभूति मानना चाहिए। सचमुच व्यक्ति का मन ही सौन्दर्य का आधार माना जाता है, वस्तु अथवा द्रव्य नहीं। 'किसी वस्तु को देख कर जो मूर्त भावना या कल्पना द्रष्टा के मन में उत्पन्न होती है वही उस वस्तु का सौन्दर्य है, क्यों कि वस्तु तो उपादान मात्र है और उसकी प्रतीति जड़ होती है किन्तु स्वंय प्रभज्ञान अथवा कल्पना एक साँचे की तरह है जो वस्तु की तरह परिवर्तनशील नहीं होती बल्कि शाश्वत और एकरस होती है। उसी स्वंयप्रभज्ञान के साँचे में वस्तु ढल कर सौन्दर्य का रूप धारण करती है'।[1] इस दृष्टि से सौन्दर्य द्रव्य से परे है। अतः सौन्दर्य भावना के इस व्यापक तथा सूक्ष्म मानदण्ड के आधार पर छायावादी सौन्दर्य बोध पनप उठा। यद्यपि छायावाद की दृष्टि सुन्दर पर विशेष जमी, तथापि सत्य और शिव भी सुंदर के रूप में प्रतीत हुए। इन कवियों की एक विशेषता यह है कि ये प्रकृति सौन्दर्य से चलकर मानव सौन्दर्य तक पहुँचे। सौन्दर्य भावना की अभिव्यक्ति के क्षेत्र में छायावाद का युग परिवर्तन का काल रहा। बाह्य सौन्दर्य से आत्मिक सौन्दर्य की ओर प्रत्यावर्तन छायावादी कविता की मुख्य विशेषता है। इसका आधार सृष्टि के बाह्य निरूपण से पराङ्मुख होकर हृदय की मानवीय अनुभूतियों के सूक्ष्म चित्रण ही रहा वस्तुओं के बाह्य गुणों के निरूपण के बजाय उसके आत्मिक गुणों की पहचान यों तो द्विवेदी काल के प्रमुख रचनाओं में हुई है तथापि इस प्रवृत्ति का सर्वाधिक उत्कर्ष छायावादी काल में ही देखने को मिला।

पंत की कविता में सौन्दर्य निरूपण

पंत ने सौन्दर्य चेतना की अभिव्यक्ति को इतना महत्व दिया है कि काव्य के

1- छायावाद युग - शम्भूनाथ सिंह - पृ0 - 89.

प्रमुख तत्व के रूप में इसको स्वीकार करने का भी आह्वान किया है। कलाकार का दायित्व भी पहले जगत और जीवन की कुरूपता को सौन्दर्य में परिणत करने में है, इसलिए वह सौन्दर्य का स्रष्टा है। 'पंत ने सौन्दर्य चेतना का सम्बन्ध कवि के अनुभूति समृद्ध अन्तर्जगत से माना है, जिसका एक छोर जग जीवन की अन्तरतम अर्थात् शिवतत्व से संबद्ध है और दूसरा छोर स्वप्नों के स्वर्णिम प्रवाह अर्थात् कल्पना से सम्बन्धित है'[1]। पंत ने सौन्दर्य की अनुभूति को काव्य सृजन के प्रेरणा स्त्रोत के रूप में ग्रहण किया है। परन्तु उन्होंने सौन्दर्य के साथ शिव का भी अटूट सम्बन्ध स्थापित किया है। शिव तत्व से पृथक सौन्दर्य चेतना का अंकन अवास्तविक तथा अस्वाभाविक है। सत्य से दूर शिव और सौन्दर्य का अस्तित्व भी असंभव है। वे सत्य और शिव को भी सुन्दर के रूप में प्रतीत करते हैं।

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप, हृदय में बनता प्रणय अपार,
लोचनों में लावण्य अनूप, लोक सेवा में शिव अविकार,
स्वरों में ध्वनित मधुर सुकुमार सत्य ही प्रेमोद्गार,
दिव्य सौन्दर्य,स्नेह साकार भावनामय संसार। -2

काव्य का सत्य सौन्दर्य के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। अर्थात् काव्य की आत्मा में सौन्दर्य चयन के अंकन करने में कवि लालायित है तो भी उसका काल्पनिक भावुक हृदय सत्य से अछूता नहीं रह जाता। कवि के अपने शब्दों में इस उक्ति की पुष्टि होती है कि 'सौन्दर्य विहीन सत्य शुद्ध दर्शन हो सकता है तथा आनन्दहीन शिव नैतिक अथवा आचार मात्र हो सकता है, पर काव्य नहीं। सत्य के अस्थिपंजर में हृदय का स्पंदन करने के लिए उसमें प्राणों की मधुर उष्णता तथा सौन्दर्य का परिधान अनिवार्य है'[3]। इस तरह पंत ने काव्य में ही नहीं सभी ललित कलाओं के मूल में प्रवृत्तिमूलक सौन्दर्य चेतना को स्वीकार किया है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से पंत के सौन्दर्य चित्रण को निम्नलिखित रूप में विभाजित कर सकती हैं :-

---

1- छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन - डॉ0 कुमार विमल - पृ0 - 71
2- पल्लव - परिवर्तन - पृ0 - 106-107
3- शिल्प और दर्शन - काव्य में सत्य - पंत - पृ0 - 280।

1- रूप सौन्दर्य
2- भाव सौन्दर्य
3- आध्यात्मिक सौन्दर्य
4- प्रकृति सौन्दर्य

रूप सौन्दर्य

रूप सौन्दर्य में भाव के विषय या आलम्बन के बाह्य आकृति - सौन्दर्य पर कवि का ध्यान रहता है । पंत की कविता में रूप चित्रण की अधिकता नहीं है । इसके अन्तर्गत कवि ने मानवीय सौन्दर्य का चित्रण ही अधिकतर किया है । नारी सौन्दर्य तथा पुरुष सौन्दर्य इस रूपचित्रण का मुख्य अंग रहे हैं । मानव में नारी और पुरुष दोनों सुन्दर सृष्टियां है । दोनों का सम्मिलित सौन्दर्य ही पूर्ण मानव सौन्दर्य है । स्त्री सौन्दर्य और पुरुष सौन्दर्य मानव सौन्दर्य के दो रूप है। ~~[illegible]~~ । नारी रूप पर उसका मन सहज ही आकर्षित हुआ है । कवि ने पूर्ण मनोयोग तथा उत्साह के साथ नारी सौन्दर्य का वर्णन किया है :-

अरुण अधरों की पल्लव - प्रात
मोतियों सा हिलता हिम - हास,
इन्द्रधनुषी पट से ढंक गात,
बाल विद्युत का पावस - लास । -1

अन्यत्र कवि ने प्राकृतिक उपमानों के संकलन द्वारा नारी रूप को प्रस्तुत किया है ·

खोल ऐंचोला भ्रू - सुरचाप - शैल की सुधियों बारम्बार,
हिला हरियाली का सद्‌कूल, झुला झरनों का झलमल हार,
जलद पट से दिखला मुख चन्द्र, पलक पल-पल चपला के मार,
भग्न उर पर भूधर सा हाय । सुमुखि । धर देती है साकार, -2

रूप के अलावा वस्त्र, सज्जा और अलंकार आदि का सम्बन्ध भी नारी सौन्दर्य से है , जिससे कि नारी मात्र के आदर्शों, व्यवहारों का परिचय मिलता है पंत जी आधुनिक नारी को सज्जा से परिचित सा दीख पड़ते है/ आज जहाँ परिष्कृत न

1- गुंजन - भावी पत्नी के प्रति - पृ0 41·
2- पल्लव - आँसू - पृ0 17·

के अंकन वे कर सके है। नारी रूप के चित्रण करने में उन्हें स्वाभाविक रुचि रहती है और उसे बड़ी कुशलता से कर देते भी है। नारी की बाहरी स्निग्धता तथा कोमलता के पुजारी कवि, उसके अन्तर्मन की सुन्दरता तथा पावनता में भी अच्छी भाँति परिचित है। पल्लव में पंत नारी का गुणगान करते नहीं अघाते —

तुम्हारे गुण है मेरे गान, मृदुल दुर्बलता ध्यान,

तुम्हारी पावनता, अभिमान, शक्ति, पूजन सम्मान -1

कवि का विश्वास है कि नारी अपने विभिन्न रूपों में ममतामयी है। हमें उसके अन्तः करण में प्रतिष्ठित ~~प्रबुद्ध~~ ममतामयी आत्मा को पहचानना ~~मौलिकता करनी~~ चाहिए। नारी मुक्ति के लिए भी कवि ने विशेष आस्था दिखायी है। निस्सन्देह कवि में नारी को आदर्श, पवित्र और मंगलमय रूप में सदा देखने की मधुर भावना निहित है।

नारी रूप सौन्दर्य का विस्तृत चित्रण उनकी कविता में मिलता है तो पुरुष सौन्दर्य उनको भावुकता से उपेक्षणीय नहीं रहा। कवि ने बड़े मनोयोग के साथ इनके रूप सौन्दर्य पर दृष्टि डाली है —

नंगे तन, गदबदे, सांवले, सहज छबीले,

मिट्टी के मटमैले पुतले, - पर फुर्तीले।

सुन्दर लगती नग्न देह, मोहती नयन मन,

मानव के नाते उर में भरता अपनापन

मानव के बालक है ये पासी के बच्चे,

रोम - रोम मानव, साँचे में ढाले सच्चे। -2

पुरुष सौन्दर्य का इतना विशद विश्लेषण न मिलने पर भी यहाँ कवि की सौन्दर्य भावना की व्यापकता का बोध होता है। कवि की इस संतुलित सौन्दर्य भावना निस्सन्देह गंभीर और भावात्मक हुई है।

भाव - सौन्दर्य

भाव सौन्दर्य में कवि के सचेतन अंतर्जगत से उद्बुद्ध विचार या भाव का

1- पल्लव - नारी रूप - पृ0 - 66.

2- आधुनिक कवि - दो लड़के - पंत - भाग दो - पृ0.

सौन्दर्य व्यंजित होता है । सौन्दर्य बोध जीवन की सह्लाद वृत्ति है । इसमें भाव सौन्दर्य का विशेष महत्व है। कहने का अभिप्राय यह है कि भाव सौन्दर्य के बिना व्यक्ति अपने सौन्दर्य चेतना का अंकन नहीं कर सकता । कवि की काल्पनिक अनुभूति से भाव या विचार का घनिष्ठ संबंध है, जिनके सांमजस्य स्थिति में वह स्वयमेव व्यंजित हो जाती है ।

पंत की कविता में भावना और कल्पना की प्रधानता मिलती है जहां भाव सौन्दर्य दोनों की सामजस्य स्थिति में पूर्णता प्राप्त करता है । इन्होंने स्वयं कहा है -

ज्यों झरते हरसिंगार झर झर
ज्यों हिम फुहार कण पहर पहर
मेरे मानस से सुन्दरता
निसृत होती त्यों निझर निझर । -1

पंत की प्रारंभिक कविताओं में इस प्रकार का सौन्दर्य भावन अधिक है । ये प्रकृति के उपादानों को अपनी पारदर्शी कल्पना के सहारे देखते हैं और उन पर अपनी गम्भीर भावनाओं का आरोप कर देते हैं ।

नग्न गगन की शाखाओं में
फैला मकड़ी का-सा जाल
अंबर के उड़ते पतंग को,
उलझा लेते हम तत्काल, -2

कवि के मनन-प्रवृत्ति का ही परिणाम है कि वह अपने सौन्दर्य बोध को एक विशाल -क्षेत्र में प्रसार करता है और इस प्रकार कला का सुन्दर रूप व्यंजित हो जाता है । पंत की कविता में कलागत सौन्दर्य का सुन्दर विधान इस दृष्टि से देखा जा सकता है । भावना और कल्पना के आवरण से जो रमणीयता प्राप्त होती है उसमें कला का सौन्दर्य रहता है । पंत जी इस दृष्टि से सुन्दर कलाकार है, कला के क्षेत्र में एक सौन्दर्य मूलक स्वच्छन्दता प्राप्त होती है । अभिव्यंजना पक्ष

1- चिदंबरा - पंत पृ0 62

2- पल्लव - बादल पृ0 80

चित्रण-शक्ति , कोमल शब्दों का व्यवहार, रंगों की पहचान, अलंकार विधान, बिम्ब-योजना छन्द आदि में यथानुसार माधुर्य, ओज और तारल्य पाया जाता है ।

3- आध्यात्मिक सौन्दर्यः

पंत जी की कविता में विशेषकर परवर्ती कविता में आध्यात्मिक सौन्दर्य का पुष्ट रूप मिलता है । उनका मानसिक सौन्दर्य ही आध्यात्मिक सौन्दर्य में परिणत हो गया है । उनकी सौन्दर्य चेतना विकास के पथ पर चलती रही है जहां पहुंचकर वह सूक्ष्मता और आध्यात्मिकता पर अधिष्ठित हो गयी । इन्हों ने स्वयं ही लिखा है - ज्योत्सना तक मेरे सौन्दर्य-बोध की भावना मेरे एन्द्रिक हृदय को प्रभावित करती रही है, मैं अब तक भावना ही से जगत का परिचय प्राप्त करता रहा , उसके बाद मैं बुद्धि से भी संसार को समझने की चेष्टा करने लगा हूं ।[1]

प्रारंभ में कवि ने सौन्दर्य को केवल भाव और संवेदन के धरातल पर ही अभिव्यक्त किया है । इस काल की कृतियों में भावना से विचरण करने वाले कवि व्यक्तित्व रहा है तो शायद उन्नीस सौ उनचास के बाद उनका मानसिक क्षितिज विस्तृत , स्पष्ट तथा भावग्राही बन गया था। अब उनकी कविताओं में सौन्दर्य के चित्रण ने बोध क्षेत्र से उतर कर मूल्यपरक रूप धारण किया । यहां उनके काव्य विकास की चरम परिणति लक्षित होती है । अतः यह कहना ठीक होगा कि पंत का संपूर्ण काव्य विकास अंतर्जीवन का गुणात्मक उन्नयन देने की ओर तथा सौन्दर्य -बोध को अंतर्मूल्य बनाने की ओर अग्रसर है[2]। इस विकास सूत्र में आत्मा या चेतना का विकास ही मूल भूत वृत्ति है । पंत जी मानते हैं कि इस चेतनात्मक सौन्दर्य से ही मानव मन चिरन्तन सात्विक उल्लास पा सकता है परन्तु पंत जी की आत्मिक चिन्तन की विशेषता यह है कि उसमें भौतिकता का तिरस्कार नहीं है दोनों के समन्वित जीवन की स्फूर्ति प्राप्त होती है ।

1- आधुनिक - भाग दो पृ0 15

2- हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास -दशभाग सं0 नगेन्द्र पृ0 199

4- प्रकृति सौन्दर्य

प्रकृति सौन्दर्य के अंकन की दृष्टि से पंत की कविता पर्याप्त संपन्न तथा पुष्ट है । पंत की कविता में प्रकृति एक मुख्य विषय रही है । प्रकृति के कोमल तथा कठोर रूप के निरीक्षण कवि करता है । यद्यपि उनकी कविता में प्रकृति के दोनों रूप चित्रित है तथापि कवि कोमल प्रकृति पर अधिक मुग्ध हुआ सा दीख पड़ता है । प्रकृति के सुन्दर दृश्यों को देख कर कवि का मुग्ध हृदय बोल उठता रहता है। पंत के प्रकृति चित्रण के पर अगले अध्याय में विस्तार से विवेचन किया जायेगा, इस लिये इस पर यहां संक्षेप में करना मैं उचित समझती हूं ।

पंत जी मुख्यतः प्रकृति सौन्दर्य के सुकोमल कवि और निसर्ग वैभव के सिद्ध ध कलाकार है । उनके प्रकृति सौन्दर्यो ल्लास का नमूना उनकी प्रारंभिक कवितायें है । । 'आत्मिका ' शीर्षक कविता इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है । कवि निसर्ग -वैभव पर इतना मुग्ध था कि उसने प्रकृति को अपना कर जीवन का अंग बनाकर रखा था । हिमालय के पर्वत प्रदेशों के सुन्दर वातावरण ने ही उन्हें कवि बनाया । सबसे पहले उनकी दृष्टि अपने चारों ओर के रूप व्यापारों की ~~ओर उठती~~ पड़ती है है । पृथ्वी, आकाश, समुद्र आदि की ओर कवि ने तल्लीन होकर देखा है। जन्मभूमि कूर्मांचल का सौन्दर्य उसने तल्लीन हो कर निखारा है । -

राजहंस-सा तिरता शशि मुक्ताभ नीलिमा जल में,
सीपी के पंखों की छवि रत्न छटा जल जाल में ।
धुली बाष्प पंखड़ियों में रंग भरते क्षण सुधर कर,
सुरधनु खड़ों में किरणों की अंकित कांति कर वितरित
रंग गंध के लता गुल्म से गिरि द्रोणी अति रंजित
देवदारु रज पीत सुलानी गरम वधू सी सुंदर । -[1]

अपनी जन्मभूमि कूर्मांचल के वर्णन में कवि विशेष रूप से रुचि प्रकट करता था और ये कवितायें, प्रकृति के साक्षात् सान्निध्य में लिखी गयी है, जिसमें निसर्ग का सहज सौन्दर्य उमड़ पड़ा है । 'वीणा' के बारे में ....

1- गंधवीथी पंत पृ0 58

निःसंकोच ढंग से कहा जा सकता है कि यह कृति प्राकृतिक दृश्यों के सहज उल्लास का मूर्तिमान रूप है। प्रकृति के प्रति स्वतन्त्र प्रेम की व्यंजना कहीं आलम्बन के रूप में, कहीं उद्दीपन के रूप में और कहीं परोक्ष सत्ता के रूप में हुई है। इस लिये प्रकृति के सौन्दर्यांकन में कवि ने विविध माध्यम चुन लिये हैं जिससे कि कविता में कभी मानवीकरण है तो कभी संश्लिष्ट चित्र विधान आया है।

प्रकृति के पदार्थों को कवि ने मनोयोग पूर्वक देखा है। इसके अन्तर्गत प्रकृति के कठोर रूप को भी कवि ने छोड़ा नहीं। कलाकार का दायित्व कुरूप को सुन्दर बनाने में है। प्रकृति के कठोर कुरूप वस्तुओं में कोमल सुन्दर का सम्बन्ध ठहरा सकता है। इस लिये कवि ने सुन्दर को ही नहीं कुरूप की भी महत्ता का उद्घोष किया है। सुन्दर और कुरूप के संतुलन में ही वह वास्तविक सौन्दर्य की अनुभूति करता है। वह जगत के प्रत्येक पदार्थ को सुन्दर और सार्थक मानने वालों के पक्ष में है।

> इस धरती के रोम रोम में भरती सहज सुन्दरता
> इसकी रज को छू प्रकाश बन मधुर विनम्र निखरता
> पीले पत्ते, टूटी टहनी, छिलके, कंकर, पत्थर
> कूड़ा करकट सब कुछ भू पर लगता सार्थक सुन्दर। -1

1- युगवाणी - पृ0 35

प्रकट है कि प्रकृति सौन्दर्यांकन के क्षेत्र में पंत की मानवीकरण की शैली विशेष समुन्नत रखती है। प्रकृति में नारी रूप का आरोप करके कवि ने प्रकृति की रंजक मूर्ति को संवारा है जिससे की सौन्दर्य की रमणीयता बढ़ गयी है। कवि के सौन्दर्य बोध की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि उन्होंने कहीं प्रकृति पर नारी रूप का आरोप किया है तो कहीं नारी रूप पर प्रकृति सौन्दर्य का आरोप। यही कवि के रागी मन ने बहुत ही सुसंस्कृत तथा कलापूर्ण ढंग से सौन्दर्य के संकल्प की कोशिश की है। उनके सौन्दर्य बोध की व्यापकता ही यही स्पष्ट दिखायी पड़ती है। सच पूछिये तो 'कवि का सौन्दर्य बोध संकुचित नहीं उसमें जीवन की समष्टि सुषमा का समावेश है'।[1]

पंत काव्य का विचार पक्ष।

काव्य में विचार पक्ष तब निखर उठता है जब उसके भाव-पक्ष का स्तर कुछ न कुछ दर्शन-चिंतन की ओर झुक जाता है। यदि भावपक्ष काव्य की आत्मा है तो विचार पक्ष उसको जीवन्त बनाये रखनेवाला साधन। जहाँ कवि भावुक से अधिक चिंतक बन जाता है वहाँ उसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति का मामला बहुत कुछ दार्शनिक छायातप से भरा रहता है। उत्कृष्ट काव्य में दार्शनिक चिंतन का पुट अवश्य मिल जाता है। सचमुच कविता ही वह उपयुक्त माध्यम है जिसकी सहायता से कठोर दार्शनिक विचार को अधिक ललित तथा सरल रूप में पाठकों के सम्मुख रखा जा सकता है। कविता में आकर गंभीर चिंतन भी जनता को सहृदय साध्य बन जाता है। इसलिए काव्य और चिंतन का अटूट सम्बन्ध विदित ही है।

भाव-पक्ष से विचार पक्ष को पृथक करना असंभव है। किंतु पंत जी की कविता के विश्लेषण के विशेष संदर्भ में, उनकी कविता के विचार पक्ष का अध्ययन आवश्यक होता है। पंत जी के भावात्मक दृष्टिकोण ने विकास की एक लंबी डगर तय की है। इनकी प्रारंभिक कतिपय कविताओं में काल्पनिक तथा

1- ज्योतिविहग - शांतिप्रिय द्विवेदी - पृ० 47.

भावात्मक उपादानों की अभिव्यक्ति करने की कवि का आग्रह द्रष्टव्य है। पर्वतप्रदेश के एकांत एकाग्र वातावरण ने इन्हें किशोरकाल में एकदम कल्पनाप्रधान बना दिया था। किन्तु बाद में जीवन, जगत् और बाह्य परिवेश से दृष्टिपात करने लगा। उनका कवि व्यक्तित्व निरंतर विकासशील रहा है और नवीनता की ओर झुकता रहा है। इसलिए उनका कल्पना प्रधान दृष्टिकोण धीरे - धीरे अन्तर्मुखी बनकर जीवन यथार्थ की ओर आकर्षित होता रहा।

एक छायावादी कवि के रूप में पंत का विशेष योगदान उनकी स्वच्छन्दतावादी दृष्टि के समन्वय से ही रहा है। 'परिवर्तन' जैसी कतिपय कविताओं को छोड़कर इन्होंने प्रारंभ में कल्पना और भावना से परिचालित होकर प्राकृतिक सौन्दर्य को आंका है। इसमें स्वच्छन्दतावादी कलारुचि का भी सुन्दर रूप सुरक्षित है और एक न एक प्रकार कवि की सौन्दर्य-लिप्सा की पूर्ति ही हुआ है। 'परिवर्तन' तक आते आते उनके मन में भावों और विचारों का मंथन हुआ। उस काल तक की किशोर भावना ने प्रौढ़ रूप धारण कर लिया और उन्होंने अपने बाल कवित्व से विदा भी ली —

स्वस्ति जीवन के छायाकाल,
सुप्त स्वप्नों के सजग सकाल,
मूक मानस के मुखर मराल,
स्वस्ति मेरे कवि बाल।

कवि के इस मानसिक परिवर्तन के लिए उसके गंभीर अध्ययन का विशेष हाथ रहा है। उपनिषदों और दर्शन शास्त्र का परिचय प्राप्त करने से उनके विचारों में अभूतपूर्व अभिवृद्धि हुई। उपनिषदों से प्रभावित होकर ही उनकी कतिपय कविताओं की सृष्टि भी हुई है। सौन्दर्य जगत् से सत्य जगत् की ओर प्रयाण करने के सफल माध्यम के रूप में कवि ने उसे स्वीकार किया। अतः इस सुन्दरम के अभूतपूर्व आंगन में खेले कूदे कवि अब सत्य जगत् की प्रकाशवान भूमि में विचरण करने लगा। दार्शनिक ग्रंथों के अध्ययन से उसके मन में जगत् के शाश्वत सत्य का आलोक बिखर पड़ा और कवि का अन्तःकरण एक अवर्णनीय आह्लाद से ओत प्रोत हो गया------। इन प्रौढ़ विचारों की झांकी इनकी कविता में मिलती है जैसे गुंजन की प्रसिद्ध कविता।

---

1. पल्लव - छायाकाल - पृ० 113.

'जग के उर्वर आंगन में बरसो ज्योतिर्मय जीवन' -1 उपनिषदों में व्यक्त ज्योतिवाद से प्रभावित है। 'शिल्प और दर्शन' नामक गद्य संग्रह में उन्होंने कहा है कि 'उपनिषदों के अध्ययन ने मेरी भौतिक विचारधारा में एक दम परिवर्तन कर दिया। इसलिए प्राकृतिक दर्शन सौन्दर्य प्रधान से भावप्रधान और उससे ज्ञान प्रधान बन गया' । -2

कवि के चिन्तनशील व्यक्तित्व के विकास में विवेकानन्द और रामतीर्थ के दार्शनिक विचारों का प्रमुख है। किशोर काल में ही उनके मानस पर इन दोनों दर्शनों का प्रभाव पड़ा। जैसे पहले कहा जा चुका है कि 'परिवर्तन' से उनके प्रौढ़ विचारों की अभिव्यक्ति होती आई। प्रकृति, ईश्वर और जीव की पहचान उन्होंने इस नवीन दृष्टिकोण के सहारे की। निष्कर्ष यह है कि प्रकृति के मोहमयी रूप के उपासक पंत जी उसके व्यापारों में चेतन सत्ता का आभास पाने लगे। चिंतन में सर्वचेतनावाद का दर्शन धीरे-धीरे झलकने लगा जहाँ उनका प्राकृतिक दर्शन का प्रौढ़ रूप लक्षित होता है। प्रकृति के प्रति जो कवि कभी जिज्ञासु था, भावनाशील था, वही अब उसकी नश्वरता-अनश्वरता का ज्ञान पहचान लेता है —

एक सौ वर्ष का उपवन, एक सौ वर्ष विजन वन
यही है तो असार संसार, सृजन सिंचन, संहार । -3

कवि ईश्वर की सत्ता मानने वालों के पक्ष में है। ईश्वर पर चिर-विश्वास है और इस विश्वास के सहारे ही सुखमय जीवन बिता सकता है। इस क्षण-भंगुर संसार में एक अज्ञात शक्ति का आभास कवि देखता है। विश्व के भिन्न-भिन्न गुणों-वस्तुओं में उसी का सौन्दर्य उसी का आनन्द व्याप्त है। एक मात्र वह शक्ति विविध रूप में प्रकट होती है। समस्त जगत में परिव्याप्त उस शक्ति का परिचय कवि ने इस प्रकार दिया है —

एक ही तो असीम उल्लास, विश्व में पाता विविधाभास
तरल जलधि में हरित विकास, शरत अम्बर में नील विकास
वही उर उर में प्रेमोच्छ्वास, काव्य में रस, कुसुमों में वास । -4

1- गुंजन - पृ० 8
2- शिल्प और दर्शन - पृ० 123
3- पल्लव - परिवर्तन -पृ० 101
4- वही वही - पृ० 106

प्रकृति में वह व्याप्त शक्ति उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करती है । कवि को अनुभव होता है कि स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब चकित शिशु के समान संसार की ओर पर अज्ञान स्वप्न विचरते हैं तब उसे नक्षत्रों से कोई मौन निमंत्रण देता जान पड़ता है । कवि विश्वास करने लगा कि इस प्रकृति में एक दैवी-सत्ता विचरण करता रहता है । इस गोचर जगत का परिचालन करनेवाली शक्ति सब कहीं वर्तमान है, इसी लिए ही उसे प्रकृति में एक भागवत-चेतना की दीप्ति बिखरी-निखरी सी दिखाई पड़ती है —

तुम स्वर्णिम मंजु फुहार सी झर
धरती पर आयी सहज उतर,
जीवन की हरियाली में हँस
बिछ गई धूलि पर बिखर, निखर । 1

पंत जी के चिन्तन पक्ष का दूसरा छोर जीवन के प्रति उनके रहस्यात्मक दृष्टिकोण में देख सकते हैं । वे मानने लगते हैं कि जीवन को पूर्ण बनाने के लिए मानव को उसके अन्तर प्रवेश करना चाहिए । तभी तो जीवन की सत्यता का भावन होता है और वह सुन्दर लगने लगेगा —

शाश्वत नभ का नीला विकास,
शाश्वत शशि का यह रजत हास
शाश्वत लघु लहरों का विलास
है जग जीवन के कर्णधार ।
चिर जन्म मरण के आर-पार
शाश्वत जीवन नौका विहार । -2

इस प्रकार संसार की अस्थिरता का आभास नहीं दिखाई पड़ता क्यों कि इस जगत में नित्य सत्य को वे पाने लगे। जीवन की अखण्डता और व्यापकता में ही उस चिरन्तन सत्य का भ्रम उन्हें मिल गया । अतएव जीवन को सुख या दुःख में न विभाजित करना चाहिए क्यों कि - सुख या दुःख के पुलिन डुबा कर लहराता जीवन-सागर । -3 इस दृष्टि से सुख-दुःख एक क्षणभंगुर वास्तविकता है ।

1- वाणी पृ. 48
2- गुंजन - पृ0 104
3- गुंजन - पृ0 20 .

जीवन ही अपनी अजस्रता में महान और चिरन्तन वास्तविकता है —

अस्थिर है जग का सुख - दुःख,
जीवन ही सत्य चिरंतन
सुख - दुःख से ऊपर, मन का
जीवन ही रे अवलंबन । -1

जीवन के प्रति कवि कभी भी निराश नहीं दीख पड़ता है। इसीलिए ही वे जीवन को निकट से देखने के लिए आतुर हो उठते हैं। जीवन में सुख दुःख की सापेक्ष अनुभूति रखने के कारण कवि जीवन में आशावादी स्वर गुंजित करने लगता है। उनका विचार तत्व इतना गहराने लगता है कि सुख-दुःख के परे के जीवन की मधुमय क्षण का संचार करने लगा —

जग जीवन नित नव नव,
प्रति दिन प्रति क्षण उत्सव
जीवन शाश्वत वसन्त,
अगणित कीत कुसुम वृन्त
सौरभ, सुख, श्री अनन्त । -2

कवि ने अपने मानसिक संघर्ष को सुलझाने की जो औषधि की प्राप्ति की थी उसको समस्त जीवन की उलझनों का नाश करने के लिए प्रयोग करना चाहता है। अब तक कवि, बाहरी मानव जाति के ऐतिहासिक संघर्ष से अपरिचित रहने के कारण अपने जीवन तथा प्रकृति के बीच के अभावों को दूर करने की कोशिश उन्होंने की परन्तु आगे समस्त मानव- जाति के अभाव-युग-परिस्थितियों का बोध उनमें आने लगा। बाहरी जगत की रूढ़ियाँ और जीर्णता का परिचय धीरे- धीरे उनके मन को पीड़ित करने लगा। इसीलिए कवि मानसिक जागरण के साथ ही साथ सामूहिक जागरण की प्रबल आवश्यकता पर जोर देता है। युग की विभिन्न परिस्थितियों में पड़कर मानवता का नाश ही हुआ है, यंत्र - युग में मानव बंदी बन गया है और उस जड़ता को नष्ट करने के लिए कवि कहता है -

---

1- ~~वही~~ गुंजन पंत - पृ0 20
2- ज्योत्सना - पंत - पृ0 21

गर्जन कर मानव केसरी
मर्मस्पृह गर्जन,
जग जावे जग में फिर से खोया मानवपन ।
कांपे उठे मानस की अंध गुहाओं का तम,
अक्षय क्षमताशील बने, जावें दुविधा, भ्रम । -1

मानवपन की प्रतिष्ठा की ओर प्रयाण न तो आश्चर्य जनक है न अप्रत्याशित । कवि का आतुर मन एक ही सत्य-आत्मा का सत्य-को पाने का आग्रही है जिसके लिए कवि ने समय-समय पर भौतिक तथा आध्यात्मिक दर्शनों का सहारा लिया है । यहीं कवि गांधी तथा मार्क्स से विशेषरूप प्रभावित दिखाई पड़ता है । गांधी जी के अहिंसात्मक सिद्धान्त उन्हें पूर्णतः स्वीकार्य है —

नहीं जानता, युग विवर्त में होगा कितना जन क्षय
पर मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेंगे निश्चय । -2

यह स्पष्ट है कि गांधी जी का आदर्श आध्यात्मिक मानवतावाद पर जोर देता है । मानव के अन्तर्जगत के परिष्कार के लिए त्याग और तप का अनुष्ठान उचित ही है । इस प्रकार की आत्मशुद्धि प्राप्त करने के बाद हम सत्य और अहिंसा के पुजारी बन जाते हैं । किन्तु गांधी दर्शन को समग्र रूप में वे ग्रहण नहीं कर सकते थे, क्यों कि वे सत्य और शिव पर ही बल देते थे । सुन्दर का तिरस्कार कवि को इष्ट नहीं था । फिर भी गांधी जी की, आत्मशुद्धि प्राप्त करने की विधा वे स्वीकार करते थे । साम्यवाद वास्तव में बहिर्जगत की शुद्धि करता है । मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का सहारा लेकर चलता है । परन्तु कवि ने द्वन्द्वात्मक नियमों को स्थूल के साथ सूक्ष्म पर भी लागू माना है और कहा है कि कि दर्शन (सूक्ष्म) और विज्ञान (स्थूल) के पारस्परिक द्वन्द्व से दोनों का विकास होता है । मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा का समर्थन करने के साथ ही, उसमें जो वर्ग - क्रान्ति का रूप है उसे अनिवार्य नहीं मानता है । कवि ने कहा है —

1- युगांत - पृ० 29 .
2- युगवाणी - पृ० 19

"... मैं मार्क्सवाद की उपयोगिता एक व्यापक सामाजिक सिद्धान्त की तरह स्वीकार कर चुका हूँ किन्तु सांस्कृतिक दृष्टिकोण से उसके रक्त-क्रांति और वर्ग युद्ध के पक्ष को मार्क्स के युग की सीमाएँ मानता हूँ"।[1] जहाँ कवि ने ऐतिहासिक भौतिकवाद और आध्यात्मिक मानवतावाद में साम्य देखा उसका समन्वय करके अन्तः संगठन तथा उसके सहारे लोक संगठन का कार्य प्रशस्त करने का आह्वान किया। इस प्रकार कवि ने मार्क्स और गांधी जी के दर्शन को स्वीकार करने पर भी उसे अपनी विचारधाराओं के साँचे में ढाल कर काव्य में अभिव्यक्ति की। विभिन्न दर्शनों से परिचित होने पर भी एक प्रकार से कवि ने दोनों परस्पर विरोधी तत्वों का अस्वीकार किया और अपने मूल विचार धारा को कोई आघात न पहुँचने दिया। दर्शनों का समन्वय करने की सफल चेष्टा भी की है। इसके द्वारा कवि ने विश्व-शांति और लोक-कल्याण का सपना देखा। समन्वयात्मक दृष्टिकोण देखिए --

मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद। -2

संक्षेप में कह सकते हैं कि चिन्तन शील कवि का आदर्श समन्वयात्मक दृष्टिकोण को पकड़ने में संलग्न है और उसके द्वारा समाज मंगल की कामना करता है और यही सत्य की खोज कवि के काव्य विकास का केन्द्र बिन्दु है।

कवि के विचार पक्ष की चरम परिणति उनके परवर्ती स्वर्णकाव्य में सुरक्षित है। यहाँ तक कवि ने जिस आध्यात्मिक मानवतावाद को व्यक्त किया था उसका विकसित रूप आगे हम देख सकते हैं। कवि का चिन्तन, मनन का रूप धारण करता है। अरविन्द के संपर्क से कवि का मन विशेष रूप से आत्मसन्तुष्टि अनुभव करने लगा। उनका मानसिक क्षितिज व्यापक, गहन तथा सूक्ष्म बन जाने का मुख्य श्रेय अरविन्द को है। कवि ने अनेक स्थानों पर स्वयं इसकी सम्मति दी है।

अरविन्द दर्शन की ओर कवि के झुकाव का मुख्य कारण यह है कि उसमें कवि ने पुनरुत्थानवादी मन और कल्पनाशील विश्वास का रूप देखा।

1- उत्तरा - प्रस्तावना - पृ० 6.

2- युगवाणी - पृ० 47.

आत्मा और ईश्वर पर विश्वास रखने वाले कवि को यह दर्शन बहुत ही अनुकूल सिद्ध हुआ। अरविन्द का दर्शन चेतना के विकास की भी रक्षा करता है। अरविन्द ने चेतना के आध्यात्मिक विकास की चरम परणति में भावी जीवन की सर्वोत्तम व्यवस्था का रूप देखने को बाध्य किया और चिन्तनशील कवि को इस पर आकर्षित होने का बल प्राप्त हुआ। इस प्रकार अपने काव्य में अरविन्द वादी विचार को वाणी देने की श्रद्धा पन्त जी अनेक कारणों से करते आये हैं। अपने मन को मंथित करने वाले प्रश्नों काउत्तर भी कवि इसी दर्शन में खोज सका। पंत जी की स्वीकारोक्ति देखिये - अरविन्द को मैं इस युग की अत्यन्त महान् तथा अतुलनीय विभूति मानता हूँ। उनके जीवन दर्शन से मुझे पूर्ण सन्तोष हुआ। उनसे अधिक व्यापक, ऊर्ध्व तथा अतल स्पर्शी व्यक्तित्व जिनके जीवन दर्शन में अध्यात्म का सूक्ष्म, बुद्धि अग्राह्य सत्य, नवीन ऐश्वर्य तथा महिमा से मंडित हो उठा है, मुझे कहीं दूसरा देखने को नहीं मिला। विश्वकल्याण के लिये मैं श्री अरविन्द की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ। उसके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणु शक्ति की देन भी अत्यन्त तुच्छ है।"[1]

अरविन्द दर्शन की संक्षिप्त रूप रेखा

पंत काव्य में अरविन्द दर्शन की अभिव्यक्ति खोज निकालने के पहले उस दर्शन का संक्षेप में परिचय प्राप्त करना चाहिये।

भारतीय दार्शनिकों में अरविन्द का प्रमुख स्थान प्राप्त है। उन्होंने भारतीय दर्शन को यूरोपीय ज्ञान से अधिक श्रेष्ठ माना। उपनिषदों में उन्हें विश्वास है। परन्तु उपनिषदों के आधार पर विकसित वेदान्त की शाखाओं- मा मायावाद, विशिष्टाद्वैतवाद, अचिन्त्य भेदाभेदवाद, शुद्धाद्वैतवाद आदि में विश्वास नहीं करते। उनके ब्रह्म, जीव और जगत सम्बन्धी धारणाएँ उपनिषद के आधार पर हुई हैं।

1-उत्तरा पृ0 22-23

उनके अनुसार ब्रह्म ने अपने को जगत् के रूप में विकसित किया है और वह जीवों के अन्तर में स्वयं साक्षी रूप में स्थित है। एक ही अनेक में परिवर्तित हो गया है। मन, जीवन व जगत् में इसी लिये सामंजस्य की स्थापना करनी चाहिये।

अरविन्द जगत् को भी सत्य मानने वाले के पक्ष में है। वस्तुतः जड़ वें चेतन एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों में अन्तर नहीं है। जड़ चेतन का ही रूप भेद है। जड़ तत्व से यह जगत् विकसित हुआ। मन, प्राण व जड़ तत्व के बन्धन में स्वयं ब्रह्म जब बंध जाता है तो उसे जीवात्मा कहते हैं।

सत्, चित्, आनन्द ब्रह्म के तीन भावात्मक रूप हैं। ये तीन तत्व मूलतः एक ही है, परन्तु भौतिक जीवन के स्वस्तर पर ही तीनों में विभाजित करके ही भौतिक मन समझ सकता है। एक ही सत्ता के रूपमें इसे समझने के लिये, ऊर्ध्वचेतना की वृत्ति का अनुष्ठान करना चाहिये। हमारा ऊर्ध्वचेतन ब्रह्म की एकता का ज्ञान कराता है।

अरविन्द ने ब्रह्म की शक्ति या आत्मा तक पहुँचने के लिये आठ सोपानों को तय करने की बात कही है। इसमें आरोहण तथा अवरोहण की प्रक्रिया की भी पहचान है। भूत और आत्मा के बीच के आठ सोपान ये हैं। सबसे पहले भूत या जड़, उसके ऊपर प्राण, फिर उपचेतन और आगे मन। मन के ऊपर क्रमशः अतिमन, आनन्द, चेतनशक्ति तथा सबसे ऊपर आत्मा अथवा दिव्य चेतना का स्थान है।

अतिमानस की स्थिति को अरविन्द ने अत्यन्त महत्व पूर्ण माना है। परन्तु मन अतिमानस की स्थिति पर पहुँचने के लिये मानव स्वयं अपने को समर्पण करना चाहिये। उस समर्पण के बाद उसके मन में एक प्रकार की दिव्य ज्योति उत्पन्न होती है। मन को आगे बढ़ाने का मार्ग प्रशस्त करने का कार्य उस दिव्य ज्योति करती है और इस स्थिति में अतिमानस उस दिव्य सत्ता से सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। अरविन्द ने इस अतिमानस की कल्पना के सहारे ही मानव के विकास का मार्ग दिखाया है।

पंत काव्य और अरविन्द दर्शन

पंत की परवर्ती कविता में अरविन्द दर्शन का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। विश्व के संक्रांति काल में मानव जीवन को पीड़ित करने वाले अनेक प्रश्नों के समाधान ढूंढने के लिये उन्होंने अरविन्द के जीवन दर्शन से उपदेश प्राप्त किया और आगे चल कर उस जीवन दर्शन की काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी की।

अरविन्द दर्शन में भौतिकवाद और आध्यात्मवाद का समन्वय प्रस्तुत किया गया है। कवि ने व्यापक मनुष्यत्व के लिये दोनों को सामंजस्य पूर्ण स्थिति की स्थापना की है। -

व्यक्ति - विश्व में व्यापक समता, हो जन के भीतर से स्थापित
करे आत्मनिर्माण लोक गण, आत्मोज्ज्वल भूमंगल के हित,
बहिरन्तर जड़ चेतन वैभव, संस्कृति में कर निखिल समन्वित। -1

इस प्रकार कवि ने मात्र भौतिक संगठन को एकांगी और बाह्य माना है। भौतिकता के साथ आध्यात्मिक विकास के समन्वय भी उन्हें स्वीकार्य है। पंत जी ने अनेक स्थलों में इसका समर्थन किया है।

पंत जी ईश्वर अथवा ब्रह्म का विश्वासी है। ब्रह्म ही आदि है और ब्रह्म ही अंत। वह सर्वत्र व्याप्त है फिर भी सबसे परे है।

एक शक्ति से, कहते, जग प्रपंच यह विकसित
एक ज्योति कण से समस्त जड़ चेतन निर्मित। - 2

एक ही परम ज्योति के प्रकाश से प्रकाशित होने के कारण सभी जीव परस्पर सम्बन्ध सूत्र में आबद्ध हैं। जीव और ब्रह्म में परस्पर अंशी - अंश भाव निहित है।

' मनुज निश्चय ईश्वर का अंश ' -3

~~1- युगवाणी 23~~ 1- स्वर्ण किरण पृ. 6

~~2- उत्तरा~~ 2- ग्राम्या - खिड़की से पृ0 69

3- लोकायतन-पृ-422

वही ईश्वर सब के अन्तः करण में स्थित है। मानव की अन्तरात्मा में भगवान की चिंगारी है - उसके बिना कोई जीवित नहीं रह सकता —

'मानव दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन में'[1] यही भाव ध्वनित होती है।

ऊर्ध्व चेतन की ओर चलना ही अरविन्द के योग-दर्शन का मुख्य लक्ष्य है। इस नवीन चेतना की महत्ता पर उन्होंने सब कहीं कहा है —

> ऊर्ध्व मनुष्य बनना महान है, वे प्रकाश की हैं सन्तान
> ऊर्ध्व मनुष्य बनना महान है, करना उन्हें आत्म निर्माण। -2

'अरविन्द ने इस चेतना को अनुभूति के माध्यम से और पंत जी ने कल्पना के माध्यम से ग्रहण किया है। अतः कवि की कल्पना में नवीन चेतना का वर्णन करते समय भूल जाते हैं और उससे वह प्रकृति को प्रतीकों के रूप में स्वीकार कर, उनके माध्यम से इस नवीन चेतना के गीत गाता रहता है, और आज के कलाकार का यही उद्देश्य ठहराता है क्योंकि इससे ज्ञान में समन्वय के साथ-साथ, देश जाति, वर्ण, वर्ग युद्ध, अशान्ति, राग-द्वेष, कलह, प्रतियोगिता आदि के द्वन्द्वों का विनाश हो जाएगा। यही कारण है कि पंत जी के काव्य में मनुष्यत्व के विकास के लिए इस नूतन चेतना की अत्यधिक आवश्यकता है।'[3] उनका विश्वास है कि नव मानव संस्कृति के द्वारा धरा पर स्वर्ग उपस्थित किया जा सकता है। नव मानव के निर्माण के लिए कवि ने कई उपकरणों का प्रतिपादन किया है —

> वह जीवित संगीत, लीन हो जिसमें जग-जीवन-संघर्ष,
> वह आदर्श, मनुष्य-स्वभाव ही जिसका दोष-शुद्ध निष्कर्ष।
> वह अन्तः सौन्दर्य, सहन कर सके बाह्य वैषम्य विरोध,
> सक्रिय अनुकंपा, न घृणा का करे घृणा से जो परिशोध। -4

अतिमानव की स्थिति को प्राप्त करना पूर्णमानव का लक्षण है। मानव का सहज स्वभाव है कि वह विकासशील रहता है मानव अवश्य इस अतिमानव स्थिति तक पहुँच सकता है और यही मानव की सर्वश्रेष्ठ अवस्था है —

1- युगान्त - पृ० 17
2- स्वर्णधूलि - पृ० 30
3- पंत जी का नूतन काव्य और दर्शन - पृ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय - पृ० 186-।
4- युगवाणी - पृ० 23.

नव जीवन शोभा के ईश्वर
स्वर्गिक करुणा के वर,
स्वर्ण शुभ्र चेतना मुकुल तुम
खिलो उर में सुन्दर। -1

अतिमानस की प्राप्ति के लिए जीव को भौतिकता से ऊपर उठना चाहिए। उसके अन्तरतम में दिव्य ज्योति का प्रकाश उन्मुक्त होकर फैलाने के लिए और अतःकरण पवित्र होने के लिए लालायित होता है। उस चरम परिणति तक पहुँचकर मोक्ष से भी बढ़कर एक विशेष अवस्था को प्राप्त करता है जिसे अरविन्द ने जीवन की सार्थकता कही है।

इस 'पूर्ण मानव' के लिए पंत जी ने 'नव मानव' की संज्ञा दी है। धरती में 'नव मानव' का घर बसाने के लिए कवि का आह्वान देखिए --

आओ हम अंतः प्रतीति को धर्म बनाएँ,
आओ हम निष्काम कर्म को धर्म बनाएँ,
हम आत्मा की अमर प्रीति के धारा स्वर्गों में,
सब मिलकर जीवन स्वप्नों का नीड़ बसाएँ। -2

'शिल्पी' में कवि ने शिल्पी के माध्यम द्वारा इस नवमानव का रूप ही अंकित किया है। शिल्पी जीवन के सब द्वन्द्वों और विरोधों का लय करके आगे बढ़ता है। वह स्वयं नव जीवन का अंकन अपने में लाने के लिए तत्पर है, साथ ही सारे जन-जन के उर में उसे बसाने का कार्य करता है। इस प्रकार शिल्पी द्वारा पूर्ण मानव का चित्रण कवि ने बड़े मनोयोगपूर्वक किया है।

अरविन्द के समान पंत जी भी व्यक्ति - मोक्ष के ऊपर सामाजिक मोक्ष के समर्थक है। जीवन में वैयक्तिक मुक्ति की प्रधानता माननेवाला एक जमाना था। परन्तु विज्ञान के चरम विकास के परिणामस्वरूप यह जीवन - दृष्टि अन्तर ही अन्तर रह गयी। आज वैयक्तिक मुक्ति कोई चीज नहीं है। मनुष्य का सबसे बड़ा श्रेय यह है कि वह समाज के मोक्ष के लिए काम करे। वास्तव में व्यक्ति को अपनी मुक्ति के लिए समाज सेवा का व्रत लेना चाहिए।

1- उत्तरा - पृ0 117.
2- रजतशिखर - पृ0 41.

इस प्रकार पंत जी की आध्यात्मिकता, सामाजिकता और मानवतावाद की ओर बढ़ती है। उनके विचार - दर्शन में सामाजिकता का उतना पुट भी है जितनाकार अरविन्द की सामाजिकता में आध्यात्मिकता जितनी गहरी है। इस प्रकार पंत जी के चिन्तन का चरम विकास उनको समाजवादी वृत्ति तक पहुँच जाता है। कवि में विश्व प्रेम और पर सेवा की अदम्य आकांक्षा है। प्रत्येक - व्यक्ति के भीतर तथा संचय अपने में कवि इन भावों की धारा निरन्तर बहाये रहने की प्रार्थना करता है।

निष्कर्ष

कवि के मूल भूत विचार और चिन्तन की अनवरत विद्यमानता का प्रमाण हमें लोकायतन में मिलता है। पंत - काव्य के भाव और विचार पक्ष के विवेचन करते समय यह बात स्पष्ट दिखाई पड़ती है कि इसके विकास में एक ही विचारधारा की अनुगूंज सब कहीं सुनाई पड़ता है और वह है उनका मानवतावादी विचार - दर्शन। परन्तु इसकी स्थापना के लिए पंत जी समय - समय पर भिन्न भिन्न दर्शनों और चिन्तनों से प्रभावित हुए हैं और उसके माध्यम से अपने विचार को वे गंभीर तथा प्रौढ़ बना सके हैं। इसके परिणाम स्वरूप कवि की नवचेतनवादी रचनाओं की सृष्टि हुई और कवि का अभीष्ट यहीं सम्पन्न हुआ।

अध्याय - पाँच

पन्त की कविता का शिल्प - पक्ष ।

शिल्प पक्ष का प्रयोजन :

कविता के दो पक्ष होते हैं । एक वस्तु पक्ष अर्थात् काव्य का वर्ण्य विषय और दूसरा शिल्प पक्ष अर्थात् काव्य का अभिव्यक्ति - पक्ष । विश्लेषण की सुविधा के लिए कविता के वस्तु पक्ष और शिल्प पक्ष को अलग-अलग रखने पर भी ये दोनों परस्पर पूरक हैं । गोस्वामी तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा 'गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।'[1] कवि के भाव-स्फीत उद्‌गारों को सहज संवेदनीय बनाने के लिए शिल्प का उचित विन्यास अपेक्षित है । कविता का भाव उसका आन्तरिक सौन्दर्य है तो शिल्प उसका प्रकट बाहरी सौन्दर्य है । भाव की प्रेषणीयता में स्वाभाविक गतिशीलता तथा विशेष प्रवाह लाने के लिए शैली का भी अपना महत्त्व है । इस तरह यह स्पष्ट है कि विषय या भाव की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति के लिए भाव और शिल्प का पारस्परिक सहयोग परम आवश्यक है । अनुभूति और अभिव्यक्ति में बिंब-प्रतिबिंब भाव-रूप समरूपता रहती है -- 'अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आंतर स्पर्श करके भावसमर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति की छाया कांतिमयी होती है'।[2] यह भी सच है कि कवि के अभिव्यंजना कौशल के मूल में उसकी अनुभूति की प्रकृति विशेष कार्य करती है ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में छायावादी युग कथ्य एवं कथन प्रणाली में उत्कर्ष काल रहा । इस काल का आरंभ ही परंपरा के प्रति विद्रोह के रूप में हुआ

---

1. रामचरितमानस - बालकाण्ड - तुलसीदास - पृ0 21 .
2. काव्य, कला तथा अन्य निबंध - जयशंकर प्रसाद - पृ0 126 .

और इस विकास का परिणाम था काव्य के रूप और कला पक्ष दोनों में विशेष परिवर्तन आया। स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के आगमन से काव्य में विभिन्न रचना विधायक तत्वों का पुनर्मूल्यांकन हुआ। कविता में निजी तथा एकान्त अनुभूति तथा अभिव्यक्ति में संतुलन और सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास छायावादी कवियों ने विषय के साथ ही उनकी अभिव्यंजना-प्रणाली जैसे काव्य-रूप, भाषा, अलंकरण, छन्द आदि क्षेत्रों में भी नवोत्कर्ष हुआ।

पंत की कविताएँ छायावादी युग की भावना एवं शिल्पगत क्रांति का स्पष्ट प्रमाण है। उन्होंने अन्य छायावादी कवियों के समान युग परिवर्तन में रहते हुए भी अपने रचना शिल्प के क्षेत्र में अपनी मौलिकता की छाप छोड़ी है। आधुनिक हिन्दी कविता जगत में काव्य-शिल्प को अनुपम उत्कर्ष प्रदान करने का कार्य उन्होंने किया। "शिल्प बहुत कुछ साधना की वस्तु है। उसके लिए परिष्कृत रुचि के अतिरिक्त कल्पना की बहुलता और व्यापक साधन अपेक्षित होता है। पन्त में ये दोनों गुण प्रचुर मात्रा में है, अतएव उनकी कला सदैव विकासशील रही है। यह प्रौढ़ि तीन दिशाओं में लक्षित होती है। काव्य सामग्री की बहुलता, परिष्कार और विस्तार; शैली कौशल की पूर्णता और अभिव्यक्ति का परिष्कार"[1]। अभिव्यंजना शिल्प के क्षेत्र में, विकासशील कवि काव्य रूप, भाषा, अलंकरण, छन्द योजना आदि काव्य के इन विधायक तत्वों को नवोत्कर्ष प्रदान करने में कहाँ तक सफल हुए हैं इस पर आगे विचार करेंगे।

शिल्प पक्ष के अन्तर्गत मुख्यतः निम्नलिखित तत्व आते हैं (1) काव्य रूप (2) काव्य भाषा (3) काव्य सज्जा अथवा अलंकार विधान (4) छन्द।

(1) <u>काव्य रूप :</u>

पन्त की काव्य साधना ने निम्न लिखित काव्य रूपों में अभिव्यक्ति पायी है। (1) मुक्तक काव्य (2) प्रबन्ध काव्य। मुक्तक के अन्तर्गत गीत और प्रगीत दिखाई देते हैं।

---

1. सुमित्रानन्दन पन्त - डा० नगेन्द्र - पृ० 184

(अ) मुक्तक - सुमित्रानन्दन पन्त की कविता प्रमुखतः मुक्तक रूप में लिखी गयी यद्यपि मुक्तक गीतों की रचना में निराला जी का स्थान सर्वोपरि है तथा पन्त के मुक्तक गीत लाक्षणिकता चित्रमयता, कोमलता, परिपक्वता आदि गुणों कारण उच्च स्तर के है । पन्त के अधिकांश मुक्तक ऐसे है जिनमें समृद्ध का - शिल्प, सूक्ष्म एंव नूतन सौन्दर्यदृष्टि तथा रोमानी कल्पना का उन्मेष हुआ है । वीणा, पल्लव, गुंजन की अधिकांश कविताएं इस कोटि में आती है । कवि का यह प्रारंभिक प्रयास मात्र था। इन मुक्तकों में अलंकरण, चमत्कृति, वचन विदग्धता आदि अधिकांश अनिवार्य तत्वों के मिलने के कारण इनमें छायावाद के प्रगीत शिल्प के विकास चिन्ह सन्निहित है । उनका मुक्तक प्रगीत शिल्प का एक विभिन्न शैल्पिक विधा है । पिटी पिटाई राह पर आगे बढ़ना उन्हें कतई पसन्द नहीं था । अतः वे नया रास्ता खोजने के लि प्रस्तुत हुए । 'नवीन युग अपने लिए नवीन वाणी, नवीन स्पन्दन-कम्पन एव नवीन साहित्य ले आता है और पुराने जीर्ण पत्र इस नवजात वसन्त के लि बीज तथा खाद-स्वरूप बन जाता है । नूतन युग संसार को शब्द तंत्रीमें नूतन ठाट जमा देता, उसका विन्यास बदल जाता, नवीन युग की नवीन आकांक्षाओं, क्रियाओं, नवीन इच्छाओं आशाओं के अनुसार उसकी वाणी से नए गीत, नए छन्द, नए राग, नई कल्पनाएं तथा भावनाएं फूटने लगती है ।[1] शैली के क्षेत्र में खास परिवर्तन के लिए रवीन्द्र तथा अंग्रेजी रोमां कवियों ने यथेष्ट सहायता दी । इस प्रकार भाषा तथा शैली दोनों नवीनता को लेते हुए, तथा अंग्रेजी रोमांटिक कवियों से प्रेरणा ग्रहण करते हुए अपनी आत्माभिव्यक्ति करने के लिए कवि ने प्रगीतों को माध्यम बनाय

(आ) प्रगीत - छायावाद के विशुद्ध प्रगीतकार के रूप में पंत जी हमारे सम्मुख आते है । उनके अधिकांश काव्य प्रगीत काव्य है । छायावादी प्रगीतों सारी विशेषताएं पंत जी की कविता में लक्षित है । छायावाद के प्र

1- पल्लव - प्रवेश - पृ0 14

का स्वरूप विशेषतः पाश्चात्य साहित्य में उपलब्ध आधुनिक प्रगीतों से ही प्रभावित है । इनमें संगीतात्मकता, व्यक्तित्व, भावप्रवणता, भावान्विति, सहज अन्तर्प्रेरणा, भावानुरूप सरल प्रवाहमयी शैली तथा संक्षिप्त रूपाकार आदि प्रगीति काव्य के समस्त अनिवार्य तत्वों का सम्यक् समावेश है,------।[1] पन्त ने प्रगीतों के इन परम्परागत तत्वों के रूप को अपनी विशिष्ट प्रकृति के अनुरूप रूपांतरित कर लिया । पंत के प्रगीत प्रायः शास्त्रीय रागरागिनियों के स्वर और ताल के अनुसार नहीं चलते । इनमें प्रगीत के प्रत्यक्ष एवं सूक्ष्म स्थिति व समावेश नहीं बल्कि एक प्रकार का भावावेग और उसकी लयात्मक अभिव्यक्ति मिलती है । गीत काव्य का प्रमुख तत्व भावावेग माना जाता है । इनकी कवि में अनेक भाव चित्रों को एक ही सूत्र में पिरोने का प्रयास मिलता है। छायावादी कवि होने के नाते पन्त का चिन्तन कहीं कहीं कल्पनामोह, प्रकृतिगत चिन्तन तथा दार्शनिक भावों में फंस गया है । फिर भी पाठकों को भावविभोर करने वाले अत्यंत समृद्ध प्रगीतों की रचना करने में कवि दक्ष है । इन गीतों में सरलता गेयता, संक्षिप्तता तथा प्रवाहमयी शैली और विचार का पूर्ण सामंजस्य विद्यमा है ।

प्रगीत के विभिन्न भेद-प्रभेदों की दृष्टि से पंत की कविता में गीत, चतुर्दशपदी, संबोधन प्रगीत, नाट्य- प्रगीत तथा लोक-लयों की प्रगीत शैली का रूप देखा जा सकता है ।

(इ) गीत - छायावादी गीतकारों में प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी और रामकुमार व प्रमुख हैं । छायावादी गीतों की रचना पद्धति अंग्रेजी गीति से मिलती है । बं तथा उर्दू के गीतों से भी छायावादी गीतकारों ने प्रभाव ग्रहण किया है। इ कवियों के गीत काव्यों में छंद विधान, शब्द संयोजन, वाक्य भंगिमा आदि शिल्पोपकरणों की समृद्धि एवं रमणीय कल्पना के उन्मेष को देखते हुए, उन्हें विशिष्ट गीतकार के स्तर पर रखा जा सकता है । पल्लव एवं गुंजन में संग्रहीत पंत जी के गीतों में छायावादी गीतों का रूप ध्यान पूर्णतः मिलती है । उनके गीतों में कल्पना शक्ति का विकास और सौन्दर्य निरूपण की प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित

1- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास-दशम भाग, प्र0 सं0 डा0 नगेन्द्र-पृ0-284

गीतों की रचना में पूर्णतः सफल होने पर भी पन्त की प्रवृत्ति प्रगीत रचना में ही अधिक रमी है।

(ई) चतुर्दशपदी - पंत की चतुर्दशपदियाँ अधिकांश प्रेममूलक न होकर प्रशस्ति मूलक है कवि ने अंग्रेजी सानेट की चौदह पंक्तियों का प्रतिबन्ध स्वीकार करने पर भी खंड विभाजन तथा अंत्यक्रम-व्यवस्था की उपेक्षा ही की है। पंत की चतुर्दशप स्वर-व्यंजन मैत्री, संगीतात्मकता, अन्त्यानुप्रास आदि गीत तत्वों से पुष्ट होती है पंत की मध्यवर्ती रचनाएँ युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, अतिमा आदि में तथा नवी रचना संग्रह, शंखध्वनि, आस्था, समाधिता आदि में प्रस्तुत कविताएँ संकेत पंत की चतुर्दशपदियों में चिन्तन और कल्पना तत्व की प्रधानता है। इस क्षेत्र में कवि ने अपनी मौलिकता दिखायी है। चतुर्दशपदियाँ इतनी अधिक मात्रा में लिखने पर भी पंत को 'सानेटकार' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस शैली की ओर कवि आकर्षित होने पर भी बाद में कुछ विमुख दिखायी दिये। अन्य छायावादी कवि भी प्रस्तुत शैली को प्रमुख रूप से अपना न सके और वे यह भी मानते थे कि चतुर्दशपदी इस काव्य की प्रमुख विधा नहीं हो सकती।

(उ) संबोधन प्रगीत - पन्त ने विपुल मात्रा में संबोधन-गीतों की रचना की है। इन प्रगीतों के माध्यम से कवि ने आत्माभिव्यंजन का प्रयत्न किया है। यहाँ कवि की कल्पना को ऊँची ऊँची उड़ानें भरने के लिए पर्याप्त अवसर मिला। पंत की संबो गीतियाँ पाश्चात्य स्वच्छंदतावादी कवियों की आधुनिक व्यवस्थित संबोधन गी से अधिक निकट है। इनमें अंग्रेजी संबोध रचनाओं की गरिमा, उदात्तता, कल्पना की उद्दाम शक्तिमत्ता और स्वच्छन्दता वर्तमान है। भावी पत्नी के प्रति (ग्रन्थि), पलाश के प्रति (आधुनिक कवि), बुद्ध के प्रति (वाणी), रवीन्द्र के प्रति (वाणी) आदि पंत के प्रमुख संबोधन गीत है।

(ऊ) नाट्य गीत - 'त्रिवेणी' तथा 'मानसी' पंत जी के दो नाट्य प्रगीत है। आचार्य शांतिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में 'मानसी' ठीक अर्थ में गीत नाट्य है। गीतों गीतों में ही यह रूपक भाव, दृश्य और अभिनय को सजीव कर जाता है।[1] पंत के काव्य रूपक को भी नाट्य गीति की संज्ञा दी जा सकती है परन्तु वैचारिकता

1- शांति प्रिय द्विवेदी - ज्योति विहग - पृ0 426.

के अतिरेक के कारण उनमें भावावेग की कमी है। नाट्य तत्वों की दृष्टि से ये रूपक सफल हुए हैं।

(ख) लोक-लयों की प्रगीत शैली - इस प्रकार के कतिपय प्रगीत 'ग्राम्या' नामक काव्य-ग्रंथ में संग्रहीत हैं। चमारों, धोबियों, कहारों आदि ग्रामीण जनता के जीवन पर आधारित कुछ वर्णनात्मक गीतों की रचना कवि ने की है। ग्रामीण परिवेश में रचित प्रस्तुत गीत मिट्टी की सोंधी गंध से सम्पन्न हैं। इसमें गांवों की करुण स्थिति का चित्रण मिलता है। 'नहान', 'कहारों का रुद्र नृत्य', 'धोबियों का नृत्य' 'चमारों का नृत्य' आदि रचनाओं में ग्रामीण जीवन के आमोद-प्रमोद, जीवनोल्लास आदि का सजीव चित्र मिलता है। कवि की भावात्मक शैली का अच्छा उदाहरण देखिये -

> रंग रंग के चीरों से भर अंग, चीरवासा से,
> दैन्य शून्य में अप्रतिहत जीवन की अभिलाषा से,
> जटा धटा सिर पर, यौवन की श्मश्रु छटा आनन पर,
> छोटी बड़ी दूँबियाँ, रंग रंग की गुरियाँ सज तन पर,
> हुलस नृत्य करते तुम, अटपट धर पटु पद उच्छृंखल,
> आकांक्षा से समुच्छ्वसित जन मन का खिला धरातल। -1

(ए) अध्यात्म प्रगीत - पंत जी के परवर्ती काव्य आध्यात्मिक चेतना से ओत-प्रोत हैं। अतः प्रगीतों के विश्लेषण के संदर्भ में आप के आध्यात्मिक प्रगीतों पर भी ध्यान रखना समीचीन है। प्रस्तुत प्रगीतों की संख्या सर्वाधिक है। स्वर्णधूलि, स्वर्णकिरण, उत्तरा, अतिमा, वाणी, कला और बूढ़ा चांद तथा लोकायतन में इस प्रकार की रचनाएँ संग्रहीत हैं। इन प्रगीतों पर अरविन्द, दर्शन का स्पष्ट प्रभाव है। इन आध्यात्मिक प्रगीतों में उनके आध्यात्मिक और दार्शनिक तत्वों से सम्बन्धित जिज्ञासा, कुतूहल, उद्बोधन, आत्मसमर्पण, प्रार्थना, आरोहण, अतिमानव या पुरुषोत्तम वाद की धारणाएँ अभिव्यक्त हुई हैं। 'अन्तश्चेतना के ऊर्ध्वगमन से सम्बन्धित होने के कारण पंत जी के इन प्रगीतों को हम अन्तश्चेतनावादी प्रगीत कह सकते हैं'।-2

1- ग्राम्या - कहारों का रुद्र नृत्य - पृ0 47

2- आधुनिक प्रगीत काव्य - डा0 गणेश खरे - पृ0 237.

ये प्रगीत विचार प्रधान है । इसलिए काव्य की संवेदनात्मक शक्ति नष्टप्राय हो गयी है और प्रारंभिक प्रगीतों की अपेक्षा प्रायः ये नीरस है ।

(२) प्रबन्ध काव्य :

पंत जी मुख्यतः प्रगीतकार है, अतएव उनकी काव्य कृतियों में प्रबन्धात्मक रचनाएँ कम है । प्रबन्ध-काव्य की विरलता का यह कारण हो सकता है कि छाया कवि के नाते पंत जी कल्पना शक्ति के सहारे सौन्दर्य निरूपण की ओर प्रवृत्त हुए फिर भी प्रबन्ध शैली में लिखित उनकी दो तीन रचनाएँ कम महत्व की नहीं है

पंत की ग्रंथि, पुरुषोत्तम राम ये दो रचनाएँ लघु आख्यानक प्रबंध के अन्तर्गत आती है । ये प्राचीन परंपरा के अनुसार सर्ग बद्ध नहीं है । ग्रंथि प्रगीत प्रबन्ध शैली में लिखित अतुकांत रचना है जिसमें प्रेम, सौन्दर्य और वेदना का चित्रशैली में निरूपण हुआ है । जैसे तीसरे अध्याय में कहा जा चुका है कि कल्पित घटना के आधार पर लिखित खण्डकाव्य है। अलंकार और शैली की नवीनता ज्ञात होता है कि कवि अंग्रेजी रोमान्टिसिज्म से प्रभावित हुआ है । इसमें संस्कृत श का बाहुल्य है । प्रस्तुत खण्डकाव्य में छायावादी प्रबन्ध शिल्प के विशिष्ट गुणों के दर्शन होते है ।

'पुरुषोत्तम राम' उनकी नवीनतम रचना है । सन् 1964 में इसका प्रकाशन हुआ है । इसमें समाज को गतिविधियों से कवि अत्यधिक जागरूक सा दिखाई पड़ता है। यह भी प्रगीत शैली में रचित अतुकांत रचना है । परंपरा प्रचलित प्राची खण्डकाव्य की सी उदात्तता इसमें विद्यमान नहीं है। फिर भी कवि को आत्म परक अभिव्यंजना के कारण छायावादी प्रबंध शैली का सा रूप मिल गया है ।

इसके अतिरिक्त 'पल्लव' में संग्रहीत 'उच्छ्वास' और 'आँसू' आख्यान गीति की कोटि में आती है । कारण यह है कि गीति तत्व के साथ ही साथ इसमें आख्यान तत्व का मिश्रण हुआ है । आख्यानतत्व के निर्वाह के लिए कवि ने वर्णनात्मकता का आश्रय भी लिया है । उच्छ्वास में प्रकृति की पृष्ठ भूमि में कवि ने अपनी भावनाओं को व्यंजित किया है । दोनों कविताओं का आख्यान कवि की चंचल यौवन सुलभ भावनाओं का गम्भीर रूपान्तर बन गया है । कवि के ये प्रगीत-

गीत अपूर्व सौन्दर्य से सम्पन्न है । कवि ने इसमें विरह के अतिरिक्त राग का चित्रण किया है जिससे कि इनमें प्रकृति का स्थान गौण हो गया है । वाल्यकाल प्रगीतात्र शैली की मधुरिमा के सर्वत्र दर्शन इनमें हम कर सकते है --

सरलपन ही था उसका मन
निरालापन था आभूषण
कान से मिले अजान नयन
सहज था सजा सजीला तन ।
सुरीले, ढीले अधरों बीच
अधूरा उसका लचका गान
विकच बचपन को, मन को खींच,
उचित बन जाता था उपमान । -1

पन्त का एक मात्र प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य है लोकायतन । इसकी दृष्टि परम्परागत प्र काव्यों से भिन्न है जिसमें कवि की अपनी मौलिकता तथा नवीनता का भान हो है । 650 पृष्ठों में रचित यह काव्य ग्रंथ दो खण्डों में विभाजित है । इसका ना गान्धी जी है तथापि इस के द्वारा अरविन्द दर्शन की प्रतिष्ठा ही कवि का ल रहा है । 'लोकायतन मंगलायतन है । इसमें पन्त के चेतना काव्य या नवीन सगुण की चरम परिणति है। इसकी रचना का उद्देश्य आधुनिक युग के आध्यात्मिक दारिद्र्य और बौने मूल्यों की स्वीकृति से उत्पन्न सामाजिक अधोगति को दूर कर अन्तश्चेत के उद्क्रमण को वह गति - पथ प्रदान करता है, जिस पर चलकर सर्वगत मनोन्नयन द्वारा सामूहिक मुक्ति संभव हो सके' -2 । इस प्रकार कवि ने महाकाव्य का सा उदात्त विचार तथा जीवन व्यापी साधना को एक साथ समेटकर एक व्यापक धरातल प खड़ा कर दिया है । समस्त मानव की मंगलाशा लिए हुए कविवर पंत लोकायतन के माध्यम से हमारे सामने प्रकट होते है ।

कवि ने मानव जीवन के वैयक्तिक या सामूहिक विकास के लिए उनके बाह्य विकास के साथ आध्यात्मिक उत्थान (Spiritual Evolution) भी आवश्यक

1- पल्लव - उच्छ्वास - पृ0 4.
2- आधुनिक हिन्दी काव्य - कुमार विमल - पृ0 .128.

बताया है । इसके लिए राग और विराग का समन्वय तथा शुद्धि पद्धति अनिवार्य है । मानव जीवन का उन्नयन तभी संभव हो सकता है । मानव चेतना के इस विशेष संयोग पर बल देने के कारण ही 'लोकायतन' में नारी केवल क्रीड़ा कन्दुक या विपिन को वसन्त ऋतु के रूप में नहीं बल्कि शुभ्र चेतना का रागमय रूप बन कर आती है । कवि की क्रान्तदर्शिता का एक उदाहरण है यह । धरती पर ही स्वर्ग उतारने का मार्ग कवि ने बताया है साथ ही प्रस्तुत धरती के लक्षणों का अच्छी तरह काल्पनिक दृष्टि में खींच डाला है । इस प्रकार प्रौढ़ कवि के दीर्घ चिन्तन का सार लोकायतन में उपलब्ध है ।

अब लोकायतन के महाकाव्यत्व के बारे में कुछ निष्कर्ष निकाला जा सकता है प्रस्तुत ग्रंथ का सर्गगत अध्ययन तथा कथानक का संक्षिप्त विवरण पिछले अध्याय में किया गया है । लोकायतन में स्थूल कथानक का निर्वाह वंशी, सिरी, हरि आदि पात्रों के माध्यम से हुआ है । अरविंद दर्शन से आविष्ट रहने के कारण कवि ने स्थूल कथानक के आद्यंत निर्वाह पर अधिक बल नहीं दिया है ।

प्रतीकात्मक पात्रों के अवतारणा के द्वारा कवि ने इस काव्य को व्यंजना गर्भी बनाया है । लोकायतन की सीता इसका एक स्पष्ट उदाहरण है । सीता धरा से उत्पन्न होती है इसलिए जड़ से विकसित चेतन का प्रतीक रूप है । इतना ही नहीं वह एक ऐसी शक्तिस्वरूपिणी है जो अविकसित मानव के सतत विकास की ओर प्रेरित करती रहती है, इसलिए वह चेतना पृथ्वी पर समाहित हो जाती है । इस प्रकार के सीता की प्रतीकात्मक अर्थवत्ता को पन्त ने धरती माता के द्वारा और भी स्पष्ट किया है --

> प्रीति ज्योति तुम मेरे मन की अकलुष
> सत्य शिखा अन्तरतम, स्वयं प्रकाशित
> बाट जोहती धरोती के धीरज से -
> श्री, सम्पदा मेरा जग में स्थापित । -1

'भू चेतना के रूप में 'लोकायतन' की सीता मिट्टी की महिमा का प्रतीक है' ।-2

1- लोकायतन - पृ0 27-28.

2- आधुनिक हिन्दी काव्य - कुमार विमल - पृ0 143.

बंशी कवि है जो सृजन या निर्माण का प्रतीक है, हरि कर्म का व्यंजक है और सिरी भावना का प्रतीक है ।

लोकायतन की रचना, जैसे पहले कहा गया है, कवि ने प्राचीन मानदण्डों से थोड़ा विचलित होकर की है । परन्तु इसमें पुराने मानदण्डों का यत्र-तत्र अनुसरण हुआ है । इसका मूल कथानक पौराणिक राम-कथा के सहारे चलाने के लिए कवि ने सफल कोशिश की है। इसके अतिरिक्त कवि ने षड्ऋतुओं का वर्णन, बारहमासा तथा देश-विदेश के कतिपय त्योहारों और स्त्री पुरुषों का चित्रण किया है, ये सब प्राचीन महाकाव्य की पद्धति के अनुरूप है महाकाव्य का एक प्रमुख लक्षण यह बताया गया है कि सर्ग में सर्वत्र एक ही छंद का विधान हो और उसके अन्त में छंद परिवर्तन हो । पन्त जी ने लोकायतन में इस प्रथा का अनुसरण किया है । लोकायतन में चित्रित व्यापक प्रकृति वर्णन से भी हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कवि ने प्राचीन महाकाव्य के मानदण्डों के अनुसरण करने का सफल प्रयास किया है ।

लोकायतन के वस्तु-विन्यास में भी कवि ने पुराने मानदण्डों का यत्र-तत्र अनुसरण किया है । भारतीय चिन्तकों ने महाकाव्य के वस्तु विन्यास को तीन पद्धतियों में विभाजित किया है । वे हैं पंच संधियाँ, पाँच कार्यावस्थाएँ तथा पाँच अर्थ प्रकृतियाँ । संधियों में मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण आ जाती है । प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम पांच कार्यावस्थाएँ है । तीसरी पद्धति अर्थ प्रकृति में बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और का[illegible] आते है । इन पद्धतियों का निर्वाह लोकायतन में भी हुआ है ।

लोकायतन में ग्राम शिविर की स्थापना के साथ मुख संधि का प्रयोग होता है । प्रारंभ में यह संस्था कुछ न कुछ प्रतिबन्धों का सामना करती है, जहाँ प्रतिमुख संधि का समावेश है । अन्त में संस्था सफलता प्राप्त करती है और कार्य कलाप में संलग्न होती है जहाँ गर्भ संधि प्रारंभ होती है । विमर्श संधि के अन्त[illegible] सांस्कृतिक केन्द्र की योजना, विकास और परिणति आदि आते हैं । लोकायतन की स्थापना मैत्री या संयुक्ता करती है तो वहाँ हम निर्वहण संधि की अवस्था देख सकते हैं ।

मूल कथावस्तु में प्रारम्भ और प्रयत्न मिलने पर भी प्राप्त्याशा, नियताप्ति आदि अस्पष्ट रूप में ही मिलते हैं। स्थूल कथानक में क्षीणता आने के कारण तीसरी पद्धति का निर्वाह भी क्षीण रूप में हुआ है।

इसकी भाषा भी आदर्श रूप में महाकाव्य की उपयुक्त भाषा के निकट आती है। ~~यहाँ [illegible] अलंकारात्मक भाषा का रूप देखा जा सकता है।~~ इसमें कवि ने दार्शनिक शब्दावली का बहुतायत से प्रयोग किया है। उदाहरण के लिये, चेतन उपचेतन, अतिचेतन, आरोहण, अवरोहण, अधिमानस, अतिमानस आदि शब्द हैं। कहीं कहीं कवि ने अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति के अनुकूल होकर शब्दों का भी स्वच्छन्द प्रयोग किया है। जैव को जैविक बना दिया, बंधूक को बंधुव में बदल दिया। स्त्री लिंग शब्दों का पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। कवि की इस स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण कभी कभी शब्दों में अर्थविकृति भी आयी है। फुंकार को फूत्कार, नखा को नखार, तितली को तिली में बदल करके कवि ने अपनी शब्द कुशलता का परिचय दिया है।

लोकायतन में कवि की दृष्टि दार्शनिक चिन्तनधारा के विवेचन में लगी है फिर भी कवि की भाषा में माधुर्य तथा ओज गुण दिखाई पड़ता है। जहाँ कवि ने चातक को विरह-विहग, पपीहे को पी खग, तितली को अनिल कुसुम कह दिया वहाँ [काव्य] का सूक्ष्म सौन्दर्य बोध द्रष्टव्य है। इस काव्य-ग्रंथ में प्रयुक्त अनेक शब्द कवि के समृद्ध शब्द भण्डार और निपुण कलारुचि का समर्थ संकेत करते हैं।

महाकाव्य में गरिमापूर्ण भाषा शैली का प्रयोग होना चाहिये। गुण, रीति, अलंकार, शब्द शक्तियाँ, ध्वनि आदि शैली-विधान के उपकरण हैं। लोकायतन में अलंकार की नियोजना में कवि ने अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया है इसमें   यत्न साध्य अलंकारों की अपेक्षा सरल अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

कवि ने लोकायतन की रचना समाज मंगल की उदात्त भावना दृष्टि में रख कर की है। वस्तुतः इसमें अरविन्द के दर्शन का सहारा लेकर समष्टि मुक्ति पर बल दिया गया है। अतएव एक महत् उद्देश्य को लेकर इस ग्रंथ की रचना हुई है और कवि ने भारतीय महाकाव्य की परम्परा को जीवित रखने के साथ-साथ आधुनि

बोध को अभिव्यक्ति देने का भी सफल प्रयास किया है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि पंत जी में छायावादी कवि के लिये, विकास कामी मानवता के जीवन सत्य की भागवत कथा को ऐसे बृहद् रूप में उपस्थित कर देना एक अच्छ उपलब्धि है।[1]

(2) काव्य- भाषा

छायावादी युग में काव्य क्षेत्र में जो भावगत आन्दोलन घटित हुआ उसने एक नई काव्य भाषा की माँग की। द्विवेदी युगीन अभिधात्मक का भाषा में छायावादी भावधारा की अभिव्यक्ति संभव नहीं थी। भाव की नयी अभिव्यंजनागत सम्भावनाओं को खोजने का दायित्व एक चुनौती के में छायावादी कवियों के सामने प्रस्तुत हुआ। द्विवेदी युग में हरिऔध आदि ने खड़ीबोली के शब्द भण्डार को समृद्ध करने का प्रयास किया, फिर भी के तत्सम बहुल शब्दों के प्रयोग के कारण खड़ीबोली में सहज मधुरता नहीं आयी छायावादी कवियों ने खड़ीबोली काव्य भाषा को किसी न किसी प्रकार भाव वाहक बना दिया और शब्द के नूतन विन्यासक्रम के कारण भाषा में विशेष समृद्धि भी हुई। इस प्रकार काव्य में भावात्मक सूक्ष्मता के साथ कलात्मक सं का नूतन संस्कार हुआ।

आधुनिक हिन्दी काव्य के क्षेत्र में श्री सुमित्रा नन्दन पंत अपने कोमल पदावली के लिये प्रसिद्ध हैं। उनकी भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली खड़ी बोली को सौन्दर्यान्वित करके उसमें नवीन लावण्य तथा माधुर्य भरने का श्रेय सुमित्रा नन्दन पन्त को है। उन्होंने भाव और विषय की माँग के अनुसार ही अपनी काव्य भाषा का निर्माण किया है। शब्दों को भाव करके उन्हें नये अर्थ- संकेतों से जोड़ कर पन्त ने भाषा के क्षेत्र में एक अ ही घटित किया। तथ्य कथन से बढ़ कर भाव -सम्प्रेषण की कविता की क्षमता पन्त जी की लेखनी से सम्भव हुई। पन्त की काव्य प्रवृत्ति के अनुरूप उनकी काव्य भाषा भी निरन्तर गतिशील है। समाज बोध से ओतप्रोत

---

(1) आधुनिक हिन्दी काव्य- कुमार विमल पृष्ट 159

ग्राम्या[1], युगांत, युगवाणी आदि की भाषा छायावादी काव्य- अभिजात्य से मुक्त है। स्वर्णकाव्यों में अभिजात्यपूर्ण शब्दावली का पुनः प्रवेश होता है। लक्षणा और व्यंजना शक्तियों का अतिशय चमत्कार पंत काव्य में है। मुक्तचेतन कालीन रचनाओं में अभिधा की काव्यगत सम्भावनाओं को उन्होंने उजागर किया है।

भाषा में शक्ति तथा ओज प्रदान करने के लिये शब्द-संयोजन और भाव में चमत्कार लाने के लिये शब्द-शक्ति की महत्ता निर्विवाद है। हिन्दी शब्द संपदा की श्री वृद्धि में पन्त का निजी योगदान सबसे महत्वपूर्ण है। मुख्य यहाँ कवि ने सूत्रधार का काम किया है और आगे हम यह देखेंगे कि छायावाद के काव्य-भाषा को पन्त जी ने किस तरह समृध्द किया है।

शब्द संयोजन

छायावादी काव्य की एक विशेषता यह है कि उसमें संस्कृत के तत्सम, त देशज और विदेशी शब्दों के नवीन संयोजन से विशेष समृद्धि आ गयी है। अ में आत्ममाधुर्य, लालित्य एवं मसृणता लाने में इन शब्दों ने महत्वपूर्ण कार्य कि है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का विधान अधिकांश कवियों ने किया है। सुमित्रानन्दन पन्त ने भी विशेष रूप से तत्सम शब्दों का ही प्रयोग किया है। किन्तु उनकी रचना संस्कृत के तत्सम शब्दों से बोझिल नहीं है। इसी ~~तत्सम प्रेम~~ सन्तुलित दृष्टि के कारण पन्त काव्य में लालित्य एवं रमणीयता आ गई। संस्कृत के तत्सम शब्द के संचयन करके वे काव्य में कितना मधु संचय कर सके उदाहरण देखिये।-

खुले पलक, फैली सुवर्ण छवि
जगी सुरभि डोले मधुबाल
स्पंदन, कंपन औ नवजीवन
सीखा जग ने अपनाना।

भावों की सटीक व्यंजना में तत्सम शब्दावली ने कवि की मदद की है। हिन्दी के काव्य - कोष को पन्त ने तत्सम शब्दों से ठसाठस भर दिया।

1- वीणा - ग्रंथि - पृ० 80.

छायावादी कवियों ने बंगला साहित्य से बहुत कुछ ग्रहण किया है। पन्त जी भी इसका अपवाद नहीं हैं। महाकवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर के प्रति कवि बचपन से ही आकर्षित थे और उनके साहित्य से पूर्णतः परिचित भी। उन पर रवीन्द्र की कविता और काव्य शैली का प्रभाव पड़ा। देखिये:-

तोमार मदिर गंध अंध वायु बहे चारि भिते [1] रवीन्द्र नाथ

गन्ध मुग्ध हो अंध समीरण
लगा थिरकने विविध प्रकार पल्लव

यह सच है कि कवि ने बंगला भाषा से कहीं पदों एवं कहीं पदावलियों को ग्रहण किया है। उर्वशी में रवीन्द्रनाथ ने गाया है:-

तरङ्गित महासिंधु मंत्र शांत भुजंगेर मतो
पड़े छिलो पद प्रांते उच्छ्वसित फणा लक्ष शांतो 2

और परिवर्तन में पंत जी ने गाया है:-

'आलोड़ित अंबुधि फेनोन्नत कर शत शत फन
मुग्ध भुजंगम - सा इंगित पर करता नर्तन' पल्लव

काव्य में सामासिक शब्दों के प्रयोग करके पन्त जी ने शब्द संयोजन विशेष स्वेच्छा का काम किया है। अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा पन्त

---

1 और 2 - आधुनिक हिन्दी काव्य - भाषा - रामकुमार सिंह के आधार प

ने संधिज और सामासिक शब्दावली का प्रयोग विशेष रूप से किया है। उदा

मनुष्यत्व था रे आत्मोन्मुख 1
नए भुवन का जन्म हुआ था
जो अन्तश्चैतन्य अगोचर, 2
भू देशों में घोर भयंकर
विज्ञानामृत बना गरल वह 3
नियति वंचिता, आश्रय - रहिता ,
जर्जरिता पद-दलिता थी,
धूलि-धूसरित मुक्त-कुंतला,
किसके चरणों की दासी, 4

संधिज शब्दों के प्रयोग की अपेक्षा सामासिक शब्दों के प्रयोग में कवि विशे
रुचि नही रखते। अतःएव उनकी परवर्ती कविता में सामासिक शब्दों का ब
नहीं।

कवि अपने भाव को साकार करने के लिये शब्द चित्रों का सहारा भी ले
है। कवि ने माना है कि ' भाषा संसार का नादमय चित्र और ध्वनिमय स्वर
है।' 5

पंत की कविता में चित्रमय भाषा के सुन्दर रूप के दर्शन हम कर सकते है। उन
चित्र मय भाषा प्रत्येक शब्द को मूर्त रूप देने में सहायक है। उदाहरणार्थ-

बांसो का झुरमुट
सन्ध्या का झुटपुट
है चहक रही चिड़ियां
टी वी टी टुट् टुट् ।

---

(1) वाणी पृ0 132
(2) वही पृ0 134
(3) वही पृ0 138
(5) पल्लव भूमिका
(6) युगान्त

संध्या की समस्त दिगन्त - व्यापिनी शोभा का चित्रण न करके कवि ने केवल दो बातें ही दिखलाई है :- सन्ध्या का झुटपुट और बाँसों का झुरमुट जिसमें चिड़िया टी वी टी टुट् कर रही है । इन्हीं दो शब्दों ने वातावरण का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया है ।

कवि ने ध्वनिव्यंजना के निर्वाह के लिये स्वच्छन्दता का काम किया है । उसकी विशेषता यह है कि उन्होंने अपने भावों के अनुरूप कतिपय नूतन शब्दों की सृष्टि की है, जैसे - टलमल, रणमल, रलमल, झलमल कलमल, रलमल, कल कल, छल छल, झर झर, मर मर, आदि । नाद सौन्दर्य के लिये पंत की 'बादल' कविता विशेष प्रसिध्द है । एक उदाहरण देखिये :-

नभ मे अवनि, अवनि में अंबर,
सलिल - भस्म, मारुत के फूल,
हम ही जल में थल, थल में जल,
दिन के तम, पावक के तूल ।(1)

अत:एव स्पष्ट है कि कवि ने शब्द के चित्र के साथ साथ उसकी ध्वनि की प्रकृति को भी पहचाना है ।

कविता के लिये पन्त जी चित्रभाषा के साथ ही साथ चित्र राग की आवश्यकता पर भी बल देते हैं । भाषा की चित्रमयता और भ की रसमयता के संयोग से चित्र-राग की रचना होती है । कवि के अपने शब्दों में ' भाव और भाषा का सामंजस्य, उनका स्वरैक्य ही चित्र-राग है । जैसे भाव ही भाषा मे घनीभूत हो गये हो निर्झरिणी की तरह उनकी गति और रव एक बन गये हों, -----------'(2)

भाव को रसमय बनाने के लिये चित्रभाषा का प्रयोग किया जाता है और भाव तब मानस में आकर स्पष्ट करने के साथ ही साथ रस का उद्रेक कर देता

---

(1) पल्लव - बादल पृ0 81
(2) पल्लव भूमिका - पृ0 18

भावना चित्र राग बन जाती है। पन्त के कतिपय शब्द चित्र स्वयं चित्र राग बन गया है, उदाहरण :-

'उस सागर के चंचल हास है
जल के फूल, गगन की धूल
अनिल फेन, ऊषा के पल्लव,
वारि-वसन, वसुधा के मूल ,' (1)

शब्द शक्ति

यद्यपि अभिव्यक्ति सौन्दर्य लाने के तौर पर पन्त ने उपर्युक्त कल्पना, बिम्बात्मक, भावना, आदि का सहारा लिया है तथापि अर्थ व्यंजना में चमत्कार उत्पन्न करने के लिये कवि को शब्द शक्तियों का प्रयोग भी उपयोगी सिद्ध हुई है।

साहित्य शास्त्र में वाच्य, लक्ष्य एवं व्यंग्य अर्थ के बोधक शब्द की तीन शक्तियाँ मानी गयी हैं, जो कि क्रमशः अभिधा, लक्षणा और व्यंजना कहलाती हैं। छायावादी कवि के नाते पन्तजी की कविता में अभिधात्मक आख्यान विरले ही मिलते हैं।

अभिधा

जिन शब्दों से सांकेतिक अर्थ का बोध होता है अथवा जिस शब्द शक्ति के द्वारा शब्द के लोक में मुख्य अर्थ का बोध होता है उसे अभिधा शक्ति कहते हैं। (2)

यद्यपि छायावादी काव्य का मूल विशेष रूप से मिलने के कारण पंत की कविता में अभिधा शब्द बहुत कम मिलते हैं तथापि उनकी मध्यवर्ती कृतियों का शक्ति से और अधिक जुड़ी है। उदाहरण के लिये :-

मुक्त हुए भारत के बापू
मुक्त और जनता के नाम
[illegible]
भारत में [illegible] स्वराज [illegible] ।

---

(1) वही पृ० 81

(2) स्व संकेतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा । साहित्य दर्पण द्वितीय परिच्छेद 40-45
सोऽयं मुख्यार्थ [illegible] ।

भाषा की निम्नलिखित पंक्ति भी अभिधा प्रधान है :-

मेरे आँगन में ,(टीले पर है मेरा घर)
दो छोटे से लड़के आ जाते है अक्सर ।
नंगे तन, गदबदे , साँवले, सहज छबीले ,
मिट्टी के मटमैले पुतले,- पर फुर्तीले ।
जल्दी से , टीले के नीचे , उधर, उतर कर
वे चुन ले जाते कूड़े से निधियाँ सुन्दर । (1)

लक्षणा

मुख्यार्थ की बाधा होने पर रूढ़ि या प्रयोजन को लेकर जिस शक्ति द्वारा मुख्यार्थ से सम्बन्धित कोई अन्य अर्थ लक्षित होता है उसे लक्षणा है। (2) पंत ने लक्षणा शब्द -शक्ति से अधिक काम लिया है क्योंकि कल्पना गर्भित काव्य होने के कारण इसमे लाक्षणिक प्रयोग अधिक करना पड़ता है । उदाहरणार्थ :-

पलक यवनिका के भीतर छिप,हृदय -मंच पर छा छविमय
सजनि ! अलस से मायावी - शिशु खेल रहे कैसा अभिनय

यहाँ उपमेय और उपमान मे सादृश्य सम्बन्ध होने के कारण उपमेय का वाच्यार्थ बाधित हो जाता है । और लक्ष्यार्थ का बोध हो जाता है । उपमेय का और सौन्दर्य बढ़ने के प्रयोजन से ऐसा किया गया है। इसलिये इसे प्रयोजनवती कहा जा सकता है ।

कभी-कभी लक्षणा मे मुख्यार्थ बाधित होने के बावजूद भी वह लक्ष्यार्थ के अंग के रूप मे बना रहता है । उदाहरणार्थ देखिये:-

मूर्च्छित नयन मृत्यु की रात
खोलती नव जीवन की प्रात,
शिशिर की सर्व प्रलयकर वात
बीज बोती है अज्ञात । (4)

---

(1) युगवाणी - दो लड़के - पृ0
(2) मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो यथान्योऽर्थः प्रतीयते) साहित्य दर्पण - द्वितीय
(3) रूढे प्रयोजनाद्वाऽसौ लक्षणा शक्तिरर्पिता) परिच्छेद 48
पल्लव स्वप्न 43 - 44 (4) वही - परिवर्तन

इसमें लक्ष्यार्थ यह है कि जगत परिवर्तनशील है । इसमें नाश कभी नहीं होता है फिर भी वह नव निर्माण करता रहता है । इस लक्ष्यार्थ में मुख्यार्थ अंग रूप में रह जाता है ।

पंत की कविता में रूढ़ लक्षणा के लिए कतिपय उदाहरण ढूंढ़ना अनुचित न होगा । कतिपय शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग करने में जहाँ मुख्यार्थ से भिन्न किसी रूढ़ अर्थ का बोध होता है वहाँ रूढ़ लक्षणा होता है । कवि का लाक्षणिक प्रयोग देखिये।-

आँसू के धारे जल से
वर्षा के कोई क्या सींचे ।   1

यहाँ मुहावरे का लाक्षणिक प्रयोग कवि ने किया है ।

पन्त की कविता में 'स्वर्ण' शब्द का रूढ़ अर्थ में प्रयोग प्रचुर पर्याप्त मिलता है 'स्वर्ण' शब्द के व्युत्पत्ति पूरक या शब्द कोश द्वारा स्वीकृत अर्थ का बोध न मिलता है । कवि ने ज्योतिर्मय चेतना या नव चेतना को व्यंजित करने के लिये इसका प्रयोग किया है ।-

नव जीवन शोभा के ईश्वर
स्वर्गिक करुणा के वर ,
स्वर्ण शुभ्र चेतना मुकुल तुम
खिलते उर में सुन्दर ।   2

पंत की कविता के कतिपय लाक्षणिक प्रतीक लक्षणा शब्द शक्ति के निदर्शन हैं । इस लाक्षणिकता के सहारे उपमानों का लाक्षणिक चमत्कार किया जाता है । जिससे कि उपमानों के पूर्ण गुणों का अभाव होता है फिर भी उपमानों के विधान में प्रतीकत्व होता है । हृदय की कामना के लिए 'स्वर्णिम निर्झर' अथवा ज्योतिर्मय जीवन के लिये 'स्वर्ग' शब्द का प्रयोग बहुतायत से कवि ने किया है ।-

स्वर्णजाल तुम ने जीवन लिपट लिया , हृदय में हँसकर,
मर्म प्रीति का झरना अविरल, इन प्राणों में स्वर्णिम निर्झर।

---

(1) लोकायतन पृ0 47
(2) उत्तरा - मानव ईश्वर पृ0 117
(3) आधुनिक कवि - सम्मोहन पृ

आध्यात्मिक चेतना के आलोक में अर्थात स्वर्णमय जगत के आलोक में समस्त जीवन अति सुन्दर या स्वर्गिक जैसा दृष्टिगोचर होता है।

स्वर्ण बालुका किसने बरसा दी जगती के मरुथल में
सिकता पर स्वर्णांकित कर, स्वर्गिक आभा जीवन मृग-जल में -1

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि पंत की कविता में लाक्षणिक प्रतीकों की आवश्यकता है। उन्होंने लाक्षणिक प्रयोगों में कहीं कहीं इतना अधिक साहस दिखाया है कि उनकी भाषा अधिक शक्तिशाली और चित्रात्मक हुई है।

व्यंजना   अभिधा एवं लक्षणा शक्ति के विरत हो जाने पर जिस शक्ति द्वारा तात्पर्यार्थ से भिन्न किसी अन्य अर्थ का बोध होता है उसे व्यंजना शक्ति कहते हैं।-2 इसके द्वारा कवि लोग अपने सूक्ष्म एवं गूढ़ मनोभावों की गहनता एवं तीव्रता को व्यक्त किया करते हैं। व्यंजना के अर्थगत और शब्दगत धर्म के कारण दो भेद होते हैं--आर्थी व्यंजना और शाब्दी व्यंजना। ये दोनों भेद पंत की कविता में द्रष्टव्य हैं।

आर्थी व्यंजना   दृष्टि पथ में दूर अस्पष्ट प्यास सी।
छोलती थी एक रजत मरीचिका,
शारद के बिखरे सुनहले जलद सी
बदलती थी रूप आशा निरन्तर।
अह, सुरा का बुलबुला यौवन, धवल
चन्द्रिका के अधर पर अटका हुआ
हृदय को किस सूक्ष्मता के छोर तक
जलद सा है सहज ले जाता उड़ा। -3

इसमें प्रकृति के वातावरण के चित्रण द्वारा कवि के अतीत जीवन के किसी आह्लादपूर्ण क्षणों की व्यंजना हुई है। यहाँ वाच्यार्थ से व्यंग्य की प्रतीति होने के कारण आर्थी व्यंजना है।

1- स्वर्णधूलि - पृ0 1

2- विरतास्वभिधाद्यासु ययार्थो बोध्यते परः सा वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च। साहित्य दर्पण - द्वितीय परिच्छेद - पृ0 7

3- वीणा - ग्रंथि - पृ0 122

शाब्दी व्यंजना
==============

यहाँ अभिधा और लक्षणा अपना अपना कार्य करने के बाद रुक जाती है और बाद में किसी अन्य अर्थ की उत्पत्ति होती है। आर्थी व्यंजना पंत की कविता में विशेष पायी जाती है।[1]

> आह यह मेरा गीला गान। वर्ण वर्ण है उर की कंपन,
> शब्द शब्द है सुधि की दंशन, चरण-चरण है आह

यहाँ वर्ण और 'चरण' का अर्थ 'रंग' और 'पाँव' न होकर प्रकरण के कारण ध्वनि का वर्ण और कविता का चरण हो गया है। अतएव यहाँ शाब्दी व्यंजना है।

काव्य-प्रसाधन - अप्रस्तुत विधान
==============================

सौन्दर्य के प्रति मानव का सहज आकर्षण है। उसमें चारों ओर के सुन्दर मनोमोहक उपादानों के आस्वादन की क्षमता बलवती है। मानव का यह सौंदर्य बोध उसके मानसिक परितोष का कारण बनता है। सौन्दर्यानुभूति के लिये अलंकरण की सहज प्रवृत्ति मानव में है। काव्य में सौन्दर्य लाने का प्रमुख उपादान अलंकार है। अलंकार कविता के भाव और अभिव्यक्ति को सौन्दर्यमय बनाने का साधन है। अर्थात् वाणी और अर्थ में सौन्दर्य सृष्टि करने का साधन है ~~अलंकार~~ "भावों का उत्कर्ष और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति ही अलंकार है।[2] पंत जी के शब्द से भी यही ध्वनि निकलती है - 'अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिये नहीं है, वे भाव की अभिव्यक्ति के लिये विशेष द्वार है। भाषा की पुष्टि के लिये राग की परिपूर्णता के लिये आवश्यक उपादान हैं, वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति-नीति है। पृथक स्थितियों के

---

1) पल्लव - आँसू - पृ0 12
2) चिन्तामणि - कविता क्या है? आ0 राम चन्द्र शुक्ल पृ0 145

पृथक स्वरूप, भिन्न अवधारणाओं के भिन्न चित्र है। -1

परन्तु इस प्रसंग पर यह भी स्मरणीय है कि कविता में यह आवश्यक नहीं कि यह सौन्दर्य - साधन सदा जुड़ा रहे। बिना अलंकारों के भी कविता सुन्दर हो सकती है, जिस प्रकार आभूषणों के अभाव एवं रूपवती स्त्री का सौन्दर्य आकर्षक बना रहता है, उसी प्रकार कविता-कामिनी भी बिना अलंकारों के भी, उसकी प्रभविष्णुता के कारण पाठकों द्वारा श्लाघनीय रहती है।

छायावादी कविता में सौन्दर्य का प्रसाधन बाह्य और वस्तुगत रूप में नहीं बल्कि आत्मगत और आन्तरिक रूप में है। वस्तु के स्थूल शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा उसके सूक्ष्म परोक्ष सौन्दर्य को महत्व देनेवाली छायावादी कविता में सौन्दर्य रूपात्मक नहीं भावात्मक है। वस्तुतः छायावादी कवि ने काव्य के शारीरिक सौन्दर्य अर्थात् ऊपरी रूपविन्यास को अधिक महत्त्व नहीं दिया। अतएव इस कविता में कार्यवस्तु या प्रस्तुत के रूप गुण- प्रभाव को स्पष्ट करने वाले साधन के रूप में अप्रस्तुतों का विधान लक्षित होता है। छायावादी कविता में भाव और रूप का सामंजस्य स्पष्ट दर्शनीय है। आचार्य विश्वनाथ ने माना है कि सौन्दर्य को बढ़ाने वाले और रस भाव आदि के सहायक जो शब्द और अर्थ के स्थिर धर्म है वे ही मनुष्य शरीर के अलंकारों की तरह काव्यालंकार कहलाते है।[2] छायावादी कवि की अलंकार योजना विश्वनाथ की इस परिभाषा के अनुरूप है।

पंत के काव्य में प्रयुक्त अलंकारों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है। (1) भारतीय अलंकार (2) पाश्चात्य अलंकार। भारतीय अलंकारों में शब्दालंकार और अर्थालंकार दो प्रकार के आते है। पहले प्रकार के अलंकारों में अनुप्रास, यमक, श्लेष तथा अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, अन्योक्ति, अपह्नुति उत्प्रेक्षा, दीपक, आदि का प्रयोग विशेष हुआ है।

पंत ने उपर्युक्त अलंकारों का स्वाभाविक रूप में ही प्रयोग किया है। अनुप्रास अलंकार के प्रति कवि का विशेष मोह रहा है। काव्य में

1- पल्लव - भूमिका - पृ0 19

2- शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तो अलंकारास्ते अंगदादिवत्।। साहित्य दर्पण - दशम परिच्छेद
पृ0 412

ध्वन्यात्मकता तथा शब्द संगीत का सुन्दर विधान अनुप्रास के द्वारा सम्भव है। अनुभूति प्रवण पन्त को विभिन्न आनुप्रासिक वर्ण मैत्रियों द्वारा काव्य में संगीत माधुरी उत्पन्न करने में अद्भुत सफलता मिली है। आनुप्रासिकध्वनि योजना में कवि का सहज बोध अप्रतिम है। देखिये:-

नीले नभ के निकुंज में लीन,
नित्य नीरव निसंग नवीन
निखिल ध्वनि की छवि तुम छबि हीन
अप्सरी - सी अज्ञात। -1

और :-

लहरियों में सलोल, खिल खिल,
थिरकते गह गह अनिल दुकूल ? -2

पन्त को अनुप्रास के समान यमक अलंकार भी विशेष प्रिय है।
तरणि के संग ही तरल तरंग में तरणि डूबी थी हमारी ताल में। -3
अहे निष्ठुर परिवर्तन हीन विवर्तन -4
घूमता है सन्मुख वह रूप सुदर्शन हुए सुदर्शन चक्र-5

पंत ने श्लेष अलंकार का बहुत कम प्रयोग किया है क्योंकि वे अलंकार के लिये अलंकार का उपयोग नहीं करते हैं।

अलंकारों में उनकी कविता में अधिकांशतः उपमा का प्रयोग हुआ है। उपमा अलंकार में उन्होंने उपमान के रूप, गुण, धर्म और क्रिया के द्वारा उपमेयों का अचित्र विधान किया है। उन्होंने उपमा के वाचक सा, सी, से आदि का प्रयोग अधिकांश स्थल पर किया है। किन्तु इससे

1:- गुंजन पृ0 78
2:- पल्लव पृ0 91
3:- वीणा-ग्रंथि पृ0 97
4:- पल्लव पृ0 परिवर्तन पृ0 112
5:- वही पृ0 उच्छ्वास पृ0 10

भाषा माधुर्य में न्यूनता नहीं संवर्धन ही हुआ है। पन्त जी ने मूर्त के लिये अमूर्त एवं अमूर्त के लिये अमूर्त योजनाओं पर विशेष बल दिया है। मूर्त की तुलना अमूर्त से :-

जब अचानक, अनिल की छवि में पल,
एक जल कण, जलद, शिशु सा, पलक पर
आ पड़ा सुकुमारता सा, गान-सा
चाह सा, सुधि-सुमन-सा, स्वप्न-सा। -1

अमूर्त की तुलना अमूर्त से :-

मदिरा की मादकता सी औ,
वृद्धावस्था की स्मृति-सी
दर्शन की अति जटिल-ग्रंथि सी
शैशव की निद्रित स्मृति-सी -2

मूर्त की तुलना मूर्त से :-

नयन की नीलिमा के लघु नभ में
अलि किस सुषमा का संसार
विरल इन्द्र धनुषी बादल-सा
बदल रहा निज रूप अपार। -3

,'अलंकार के क्षेत्र में छायावादी कवि की अपनी विशेषता भी है। वह विशेषता यह है कि छायावाद ने अपना ध्यान प्रभावसाम्य पर विशेष रूप से केन्द्रित किया जबकि पुराने कवि आकार साम्य की ओर अधिक दौड़ते थे'। -4 पन्त की बादल कविता इसका उत्तम उदाहरण है। उन्होंने नये उपमानों की योजना की है। कभी [illegible]

[illegible]

कभी 'बादल विशाल - जम्बाल-जाल' की तरह मालूम होता है जो कभी

1:- वीणा - ग्रंथि पृ0 113

2:- पल्लव पृ0 56

3:- वही स्वप्न पृ0 43

4:- छायावाद उदयभानु सिंह 148

आकाश के मधु गृह में लटके हुए स्वर्ण शृंगों की तरह, कभी वह अनिल स्रोतमें 'कमल के पात' की तरह बहता है तो कभी गगन की शाखाओं पर 'मकड़ी के जाल की तरह फैल जाता है। इस उपमा की योजना से कवि की कल्पना शक्ति का पता चलता है। उत्प्रेक्षा परंपरागत प्राचीन अलंकारों के अन्तर्गत आता है। कवि ने इसका भी सुन्दर उचित प्रयोग प्रभाव - साम्य दिखाने के लिये किया है। उदाहरण-

पद नखों को गिन, समय के भार को
जो घटाती थी भुलाकर, अब निरत
खुरच कर, वह बहु पत्रों की पृष्ठभू
भी वहाँ मानो छिपाना चाहती। -1

रूपक का भी पंत ने विशेष प्रयोग किया है। रूपक की मनोहारिणी छटा उनके प्रकृति काव्य में विशेष देखने को मिलती है।

बाँधती है एक मृदुल मृणालिनी
मत्त बाल गयंद को कृश सूत्र से,
गूँथ मुक्ता हार एक मरालिनी
हँस पति को दे रही उपहार है। -2

पंत जी का विषम रूपक सादृश्य और साधर्म्य मूलक अप्रस्तुतों का प्रतीकवत् व्यवहार करता है। कभी-कभी कवि रूपक के वाचक पदों के स्थान पर लक्षक पदों का प्रयोग करता है। उदाहरण-

तापस बाला गंगा निर्मल, शशि मुख से दीपित मृदु करतल
लहरें उस पर कोमल कुंतल।
गोरे अंगों पर सिहर सिहर, लहराता तार तरल सुन्दर
चंचल अंचल सा नीलाम्बर -3

1- वीणा ग्रंथि पृ0 90
2- वही पृ0 110
3- गुंजन - नौकाविहार - पृ0 108

यहाँ वर्ण्य वस्तु को संकेत करने वाले अप्रस्तुत चित्रों को अधिक प्रश्रय मिला है।

आधुनिक कवि के नाते पन्त ने अलंकारों के प्रयोग में कुछ न कुछ स्वच्छन्दता का परिचय दिया है। रूपक से शुरू होने वाली पंक्ति अंत तक आते आते उपमा में बदल जाती है। एक उदाहरण देखिए।

खींच ऐंचीला भ्रू - सुरचाप
शैल की सुधियाँ बारम्बार
हिला हरियाली का सुदुकूल
झुला झरनों का झलमल हार। -1

प्रथम पंक्ति में रूपक को बाँधा दिया गया और अन्त में 'का' जोड़ देने से रूपक खण्डित होकर उपमा में परिणत हो गया। पंत जी की और एक पंक्ति के रूपक में उपमेय लुप्त है। देखिये।

लो जग की डाली - डाली पर
जागी नवजीवन की कलियाँ। -2

शृंगार वर्णन, प्रकृति चित्रण अथवा चिंतन की अभिव्यक्ति के लिये कवि ने रूपक का सहारा लिया है। उनकी परिवर्ती कविता में चिन्तन की प्रधानता रहने के कारण उक्ति कौशल की ओर वे अधिक ध्यान नहीं दे सके है। इन कविताओं में विषय के प्रतिपादन का आग्रह विशेष रूप से हुआ है। फिर भी अवसर - अवसर पर पंत ने रूपक, सांग रूपक, रूपकातिशयोक्ति आदि की योजना की है जैसे।

शोश फूल मेरा रवि, शशि मुख दर्पण
ऊषा मांग रोली, ज्योत्स्ना तन उबटन। -3

1- पल्लव - पृ० 17
2- पल्लविनी - मधुप्रभात - पृ० 231
3- लोकायतन - पृ० 63

पंत ने प्रायः सभी प्राचीन अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। देखिये:-
'स्मरण' का सुन्दर प्रयोग कवि ने किस प्रकार किया है।

देखता हूँ जब पतला
इन्द्र धनुषी हलका
रेशमी घूँघट बादल का
खोलती है जब कुमुदकला
तुम्हारे मुख का भी ध्यान
मुझे तब करता अन्तर्धान ।-1

इन्द्र धनुष को देखकर कवि प्रियतमा के मुख का आभास पाता है। अपह्नुति अलंकार काव्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कवि ने इसका सफल प्रयोग किया है:-

प्रिये, कलि कुसुम में आज,
मधुरिमा मधु सुषमा सुविकास
तुम्हारी रोम-रोम छवि व्याज
छाया मधुवन में मधुमास - 2

पंत की कविता में 'उल्लेख' अलंकार का प्रयोग बहुत विरले ही मिलता है। उल्लेख का एक उदाहरण देखिये:-

सुरपति के हम ही हैं अनुचर, जगत्प्राण के सहचर
मेघदूत की सजग कल्पना, चातक के चिर जीवन धार।
मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर, सुभग स्वाति के मुक्ताकर ।-3

---

1) पल्लव - पृ0 15-16
2) ~~गुंजन~~ पृ0 243
3) पल्लव पृ0 76.

विहगं की वे गर्भ विधायक, कृषक बालिका के जल धार।
सुरपति के भिन्न-भिन्न रूपों का वर्णन इसमे हुआ है।

अन्योक्ति अलंकार में प्रस्तुत के वर्णन के लिये उससे मिलता-जुलता अप्रस्तुत का विधान किया जाता है। पंत की 'स्वीटपी के प्रति'-1 वाली कविता इसका सुन्दर उदाहरण है:- स्वीट पी सुन्दर है, उपवान में बड़े यत्न से उसका पालन पोषण होता है। परन्तु उससे विशेष उपयोग नहीं होता है। कवि कहता है कि यह स्वीट पी वास्तव में कुल बधू के समान ही है।

'दीपक' अलंकार के सारे भेद उनकी कविता में नही मिलते। यहाँ कारक दीपक का उदाहरण देखिए:-

इन्दु की छवि में, तिमिर के गर्भ में,
अनिल की ध्वनि में, सलिल की वीची में।
एक उत्सुकता विचरती थी सरल,
सुमन की स्मृति में, लता के अधर में। -2

यहाँ सरल उत्सुकता भिन्न-भिन्न स्थान पर विचरती है।

'दृष्टान्त' में उपमेय उपमान में बिंब प्रति बिंब भाव रहता है। 'दृष्टान्त' का नवीन रूप इनकी कविता में है।

सुख दुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरण।
फिर घन में ओझल हो शशि फिर शशि से ओझल हो घन।

इसमे पहली पंक्ति में यह बात कही गयी है कि सुख और दुःख दोनों का मधुर मिलन जीवन मे परिपूर्णता लाता है और दूसरी पंक्ति में यह वर्णित है कि घन में शशि का ओझल होता है और शशि के द्वारा घन ओझल होती है। दोनों वाक्य मिलते जुलते है, किसी साम्य सूचक शब्द के बिना इनका सम्बन्ध बताया है।

---

1) ग्राम्या - पृ० 78
2) ग्रंथि - पृ० 103
3) गुंजन - पृ० 15

एक स्थान पर रुग्णा बाला का वर्णन करने के लिये कवि चाँदनी का प्रस्तुत वर्णन करता है, वहाँ हमें समासोक्ति अलंकार का आभास मिल जाता है :-

जग के दुःख-दैन्य-शयन पर यह रुग्णा बाला
रे कब से जाग रही वह आँसू की नीरव माला।
पीली पड़ निर्बल कोमल-देहलता कुम्हलाई।
विवसना लाज में लिपटी साँसों में शून्य समाई। -1

विभावना
=========

दुख इस मानव आत्मा का रे नित का मधुमय भोजन।
दुख के तम को खा-खा कर भरती प्रकाश से वह मन।।-2

यहाँ भिन्न कारण से कार्य का होना दिखाया है
यहाँ विरोधमूलक अलंकार का भी आभास मिलता है।

विषम अलंकार का प्रभावोत्पादक रूप पंत की कविता में यत्र-तत्र मिलता है :-

आज गर्वोन्नत हर्म्य अपार, रत्नदीपावलि मन्त्रोच्चार।
उलूकों के कल भग्नविहार, झिल्लियों की झंकार।। -3

यहाँ एक ही काल में विरोधमूलक कार्य भिन्न-भिन्न स्थानों पर होता रहा है :-

काव्य लिंग
=========

और भोले प्रेम। क्या तुम हो बने
वेदना के विकल हाथों से जहाँ
झूमते गज से विचरते हो, वहाँ
आह है, उन्माद है, उत्ताप है। -4

---

1) गुंजन पृ० 71
2) वही-पृ० 20
3) पल्लव- पृ० 101
4) वीणा-ग्रन्थि- पृ० 128

एक कार्यका होना विविध कारण के संयोग से बताया गया है। प्रेम वेदना के हाथों द्वारा बनाया गया है यह स्थापित करने के लिये पृथक पृथक कारण बताया गया।

सहोक्ति का लक्षण यह बताया जाता है कि जहाँ सह आदि सहार्थवाची शब्दों के द्वारा एकपदार्थ का दूसरे पदार्थ के साथ संबन्ध स्थापित करता है वहाँ सहोक्ति अलंकार होता है। पंत जी में प्रस्तुत अलंकार का अधिक मात्रा में प्रयोग न मिलने पर भी यत्र-तत्र इसका प्रभावोत्पादक वर्णन मिलता है :-

निज पलक मेरी विकलता साथ ही
अवनि से उर से मृगेक्षिणि ने उठा।
एक पल निज शस्य श्यामल दृष्टि मेरी छोर से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप से। -1

यहाँ सहोक्ति अलंकार के प्रयोग के साथ ही श्लेष तथा उपमा का द्योतन मिलता है। यद्यपि इनका पृथक प्रयोग नहीं हुआ है।

'सन्देह' पंत जी का प्रिय अलंकार है। इस अलंकार में उपमान और उपमेय में समता देखकरउपमान उपमेय है या नहीं इस प्रकार की दुविधा बनी रहती है। उदाहरण :-

निद्रा के उस अलसित वन में
यह क्या भावी की छाया
दृग पलकों में विचर रही, या,
वन्य देवियों की माया। -2

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि पंत जी ने शब्दालंकार तथा अर्थालंकार का प्रायः सभी रूपों का प्रयोग किया है। अलंकार पर कवि के विस्तृत अधिकार का परिचय इससे मिलता है। आधुनिक कवियों की यह विशेषता है कि वे प्राचीन परम्परागत अलंकारों के पीछे नहीं चले हैं बल्कि अलंकार उनमें स्वभावतः

---

1) वीणा - ग्रंथि - पृ0 103

2) पल्लव - पृ0 42

आ ही जाते हैं। आधुनिक हिन्दी कविता में रीतिकालीन ढंग के अलंकार प्रयोगों की खोजना निरर्थक है। आधुनिक कवियों ने अलंकारों का चमत्कार प्रदर्शन नहीं किया है। अपितु अलंकारों के बहुत स्वाभाविक प्रयोग किये हैं'। - 1 पंत जी पर भी यह बात लागू हो सकती है। पंत जी भी अपने अलंकार विधान में सर्वथा स्वतन्त्र रहते हैं - वे अलंकारों की कवायद कभी नहीं करते। उनके बहुत से अप्रस्तुत विधान ऐसे हैं जो अलंकार शास्त्र के अनुसार किसी विशेष नाम के अधिकारी तो नहीं परन्तु उनमें सांग - रूपक आदि बहुत से अलंकारों की सहायता रहती है। - 2 उनके लिये अलंकार चमत्कार प्रदर्शन का साधन नहीं। वे अपनी भाव - व्यंजना में समर्थ अलंकारों का नवीन मौलिक प्रयोग करते हैं। वास्तव में पंत जी की अलंकारिक प्रतिभा मौलिक और रचनात्मक है।

पंत ने कतिपय पाश्चात्य ढंग के अप्रस्तुत विधानों का परिचय दिया है हम बता चुके हैं कि कवि की शैली पर पाश्चात्य कविता का खूब प्रभाव पड़ा है। काव्य में नवीनता तथा प्रभावोत्पादकता लाने के लिये यह विशेष सहायक रहा है। अंग्रेजी काव्य-क्षेत्र के मानवीकरण, ध्वन्यर्थव्यञ्जना, विशेषण विपर्यय आदि अलंकार विशेष उल्लेखनीय हैं जिनका बड़ा ही सुन्दर प्रयोग कवि ने किया है। मानवीकरण की सुन्दर छटा कवि के प्रकृति काव्य में मिलती है। अचेतन पदार्थों और प्राकृतिक दृश्यों को सजीव बनाकर प्रस्तुत करना, उनमें मानवीय चेतना का आरोप करना मानवीकरण कहलाता है। 'पल्लविनी' की 'संध्या' तथा 'गुंजन' की 'चान्दनी' इस कोटि की सुन्दर रचनाएं हैं। संध्या को कवि ने एक अप्सरा के रूप में देखा है जो व्योम से मंथर गति से चुपचाप सुनहले केशों को फैलाते हुए उतर रही है। संध्या का अंचल, नूपुर ध्वनि, पंख आदि का बड़ा भव्य वर्णन किया गया है।-

कहो, तुम रूपसि कौन,
व्योम से उतर रही चुपचाप,
छिपी निज छाया छवि में आप,
सुनहला फैला केश-कलाप
मधुर, मधुर, मृदु मौन।

1- आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार विधान डा० जगदीश नारायण त्रिपाठी-पृ
2- सुमित्रानंदन पंत - डा० नगेन्द्र पृ० 57

मृदु अधरों में मधुपाल
पलक में निमिष, पदों में चाप
भाव-संकुल, बंकिम, भ्रू-चाप
मौन, केवल तुम मौन।
ग्रीव तिर्यक, चम्पक-द्युति गात,
नयन मुकुलित, नत मुख-जलजात,
देह छवि-छाया में दिन-रात,
कहाँ रहती तुम कौन?
मधुर नूपुर-ध्वनि खग कुल-रोल
सीप से जलदों के पर खोल,
उड़ रहे नभ में मौन।
लाज से अरुण-अरुण सुकपोल,
मधुर अधरों की सुरा अमोल,
बने पावस-घन स्वर्ण-हिन्दोल,
कहो एकाकिनि कौन?
मधुर, मधुर तुम मौन। -1

इसी प्रकार 'चाँदनी' में भी कवि ने मानवीकरण अलंकार का प्रयोग किया है। चाँदनी भी मृदु करतल पर अपना शशि-मुख धर कर बैठी रहती है, वह एकाकिनी है और अपनी ही छाया में छिपी हुई शिखर पर खड़ी है। उसकी सुन्दर छवि सागर की लहर लहर पर नृत्य कर रही है।

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद हासिनि।
मृदु करतल पर शशि मुख धर
नीरव, अनिमिष, एकाकिनि।

---

(1) पल्लविनी - पृ0 209- 210

वह स्वप्न - जड़ित नत चितवन
छू लेती अग - जग का मन
श्यामल, कोमल, चल चितवन
जो लहराती जग - जीवन । -1

इस प्रकार कवि ने अमूर्त को मूर्तिमत्ता प्रदान करके मानवीकरण का सफल प्रयोग किया है। वस्तुतः मानवीकरण की शैली द्वारा कवि के अंतर्जगत के अमूर्त भावों का मूर्त रूप में उदघाटन होता है। मानवीकरण के सहारे पंत ने भी जगत के चेतन अचेतन सभी पदार्थों से अपना रागात्मक संबन्ध स्थापित किया है।

ध्वन्यर्थव्यंजना का चमत्कार पंत की कविता में प्रचुरता से मिलता है। यह अंग्रेजी का प्रसिद्ध अलंकार माना जाता है। इसमें ध्वन्यर्थव्यंजक शब्दों के बल पर ही प्रसंग और अर्थ का ज्ञान कराकर एक चित्र अंकित किया जाता है। ध्वन्यार्थ व्यंजना पर अधिक बल देने के कारण यह अलंकार अनुप्रास और यमक से भिन्न ठहरता है। इसमें शब्दों की ध्वनि के सहारे अर्थ का उन्मीलन होता है। शब्दों की ध्वनि के द्वारा भाव की अभिव्यक्ति पूर्ण तथा प्रबल रूप में होती है और अत्यधिक प्रभावोत्पादक भी बन जाती है। उदाहरणार्थ:

धूम धुआँरे काजर कारे
हम ही बिकरारे बादर
मदनराज के बीर बहादुर
पावस के उड़ते फणिधर
चमक झमकमय मंत्र वशीकर
छहर घहर मय विष सीकर
स्वर्ग सेतु से इन्द्रधनुषधर
कामरूप घनश्याम अमर। -2

यहाँ परुष शब्दावली के द्वारा 'ध्वन्यर्थव्यंजना', का प्रयोग किया गया है। इस अलंकार योजना से बादलों का रूप और रव व्यंजित हो रहा है।

वायु की ध्वनि तथा भ्रमरों की ध्वनि को संकेतित करने के लिये कवि ने शब्दों का नूतन प्रयोग किया है।

1- गुंजन - पृ0 87

2- पल्लव - बादल - पृ0 82

सर सर मर मर झन- झन सन- सन
गाता कभी गरजता भीषण
वन-वन , उपवन ,
पवन, प्रभंजन । - 1

इससे वायु की गति की सुन्दर व्यंजना हुई है ' उन्मन-उन्मन ' भ्रमर का गुंजार व्यंजित करता है ।

इस प्रकार कवि ने ध्वन्यर्थ व्यंजना द्वारा भाषा के अर्थ के आयाम को विस्तार किया है ।

पाश्चात्य अलंकार शास्त्र का विशेषण विपर्यय प्राचीन भारतीय 'तद्गुण' अलंकार से मिलता जुलता अलंकार है । ' तद्गुण' में एक वस्तु का गुण दूसरी निकट की वस्तु धारण कर लेती है । विशेषण विपर्यय में दो के गुण एक रहने पर भी उसमे लाक्षणिकता होती है । प्रस्तुत अलंकार पंत काव्य में बहुत मिलता है । ' वेदना के ही सुरीले हाथ से ' - 2 में वेदना का हाथ सुरीला कहा है । वास्तव में वेदना का स्वर सुरीला है । इसीप्रकार 'बच्चों के तुतले भय - सी ; में भय को तुतला कहा है । , बालक ही तुतला विशेषण विपर्यय के दो एक उदाहरण और भी देखियें :-

1:- मूक व्यथा का मुखर भुलाव - 3
2:- और जिनकी अबोध पावनता
धी जग के मंगल के द्वार - 4
3:- नयन करते नीरव भाषण - 5

व्यथा को मूक , भुलाव को मुखर, पावनता को अबोध और भाषण को नीरव कहना विशेषण विपर्यय है ' ।

---

1) पल्लविनी पृ॰ 261
2) वीणा-ग्रन्थि पृ0 136
3) पल्लव पृ0 55
4) पल्लव पृ0 73
5) वही पृ0 90
6) वही पृ॰ 8

संक्षेप में भारतीय एवं पाश्चात्य अलंकार शास्त्र के स्वस्थ पक्षों को पंत ने ग्रहण किया है । रीतिकालीन आलंकारिकों के समान अलंकारों का उदाहरण जुटाना पन्त का काम नहीं था । अलंकारों के शास्त्रानुमोदित रूप को, उन्होंने भावों के सहज प्रवाह के अनुकूल बदल दिया है । ' पंत ने छायावाद की आत्मा के अनुरूप काव्य- शास्त्र को नवीन आकार प्रकार दिया है । उसमें नवीन रक्त का संचार किया है । कविता की तरह ही उसे भी रोमैण्टिक बना दिया है । - 1

उपर्युक्त अलंकारों के साथ पंत ने प्रतीकों का भी प्रयोग किया है । प्रतीक विधान ' को प्रायः अन्योक्ति और समासोक्ति में समाविष्ट किया जाता है प्रतीक काव्य के अनुचर है नियंता नहीं है । शब्द अपने मूल अर्थ को बिना छोड़े प्रतीकात्मकता की ओर उन्मुख हुआ है । इस प्रकार की योजना कभी अलंकार की सीमा में ग्रहण की जा सकती है या व्यंजना की । - 2

हमारे प्राचीन साहित्य में प्रतीक - विधान का बड़ा महत्त्व रहा है ~~...~~ किन्तु आधुनिक हिन्दी कविता में ' प्रतीक' कुछ भिन्न अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । अंग्रेजी के सिम्बल ' का प्रभाव बहुत कुछ इस पर पड़ा है । प्रतीकविधान के क्षेत्र में भी छायावादी कवि ने परम्परा का तीव्र विरोध किया । उन्होंने नई परम्परा स्थापित की। इसका कारण यह कहा जा सकता है कि छायावादी कवि का ध्यान मुख्य रूप से प्रभाव साम्य की ओर गया है न कि रूप -गुण-सादृश्य की ओर । कविता में प्रभाव साम्य लाने के लिये इन कवियों ने परम्परागत प्रतीकों की अपेक्षा नवीन प्रतीकों का ही अधिक प्रयोग किया है । छायावाद बहुत सहृदयता के साथ प्रभाव-साम्य पर ही विशेष लक्ष्य रख कर चला है । कहीं-कहीं तो, बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यन्त अल्पता न रहने पर भी, अभ्यन्तर प्रभाव-साम्य लेकर ही अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है । ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप या प्रतीकवाद होते हैं, जैसे सुख आनन्द, प्रफुल्लता, यौवनकाल आदि के स्थान पर उसके द्योतक ऊषा, प्रभात, मधुकाल, प्रिया के स्थान पर

---

1) ज्योतिविहग - पं० शान्ति प्रिय द्विवेदी पृ0 137
2) निराला- डॉ आनन्द दुलारे वाजपेयी - पृ0 132

पर मुकुल, प्रेमी के स्थान पर मधुप श्वेत या शुभ्र के स्थान पर कुंद रजत, माधुर्य के स्थान पर मधु दीप्तिमान या कान्तिमान के स्थान पर स्वर्ण, विषाद या अवसाद के स्थान पर अंधकार, अंधेरी रात या संध्या की छाया, पतझड़, मानसिक आकुलता या क्षोभ के स्थान पर झंझा, तूफान, भाव तरंग के लिये संगीत या मुरली के स्वर इत्यादि'[1]। इन प्रतीकों का छायावादी काव्य मे अधिक प्रयोग हुआ है।

प्रकृति प्रेमी पंत जी ने अपनी कविता मे प्रकृति से प्रतीकों का चयन सुचारु रूप से किया है। उल्लास के लिये 'उषा का आवास' रमणीय वाणी के लिये 'कली का मुकुल विकास' स्निग्धता या आल्हाद के लिए चांदनी भोले पन के प्रतीक के लिए 'बच्चों की सांस' प्रस्तुत करके कवि ने अत्यन्त कुशल प्रतीकों को प्रस्तुत किया है।

उषा का था उर मे आवास,
मुकुल का मुख मे मृदुल विलास,
चांदनी की स्वभाव मे भास,
विचारों मे बच्चों की सांस। -2

कवि की प्रारम्भिक प्रकृति - परक रचनाएं इस प्रकार के लाक्षणिक प्रतीकों से भरी पड़ी है। चिन्ता को व्यंजित करने के लिए 'मेघ'[3], 'सुख-दुःख' के संकेत के लिए 'सांझ-उषा'[4], संदेह की अगाधता के लिए 'द्रौपदी का दुकूल'[5], आध्यात्मिक जगत के लिए 'छाया'[6] छायावादी कवियों के लिए 'अलि'[7] विराग के लिए 'विजन भू'[8] आदि प्रतीक प्रभूत मात्रा मे प्रयुक्त हुए है।

पंत ने इसके अतिरिक्त अपनी परवर्ती रचना मे सैद्धान्तिक प्रतीकों का बहुलता मे प्रयोग किया है। 'स्वर्ण किरण', 'अशोकवन', 'ज्योत्सना'(नाटिका) 'उत्तरा', अतिमा, लोकायतन, 'कला और बूढ़ा चांद' आदि रचनाएं प्रस्तुत प्रकार के प्रतीकों से संपन्न है जिनका हम पूर्व के अध्याय मे संकेत किये जा चुके है।

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास - पं० रामचन्द्र शुक्ल - पृ० 671
2- पल्लव - पृ० 20 (3) उत्तरा - जगत धन - पृ० 21
4- गुंजन - पृ० 16 (5) पल्लव - पृ० 9
6- गुंजन - पृ० 1 (7) गुंजन - पृ० 1
8- उत्तरा - युग विराग - पृ० 31

बिंब योजना

बिंब शब्द अंग्रेजी के इमेज का प्रयाय है । काव्य के अभिव्यंजना-शिल्प के विविध प्रसाधन में बिंब या चित्र का स्थान सर्व प्रधान है । 'बिंब बहुत व्यापक शब्द है और इसका विचार समान रूप से साहित्य तथा मनोविज्ञान दोनों ही में किया जाता है । मनोविज्ञान में इस शब्द का अर्थ है मानसिक पुनर्निर्माण, एक स्मृति, अतीत की संवेदनात्मक अनुभूति' । -1

काव्य बिंब वस्तुओं का या अमूर्त पदार्थों का भावमय चित्र प्रस्तुत करता है । बिंब एक प्रकार का भाव गर्भित शब्द चित्र है । टी-ई० ह्यूम ने काव्य में बिंब विधान को विशेष महत्ता दी है । 'कविता रोजमर्रा की भाषा नहीं है वरन् दृश्य अथवा मूर्त भाषा है जो व्यक्ति के सम्मुख अमूर्त वस्तु का मूर्त रूप प्रदर्शित करती है । काव्य में बिंब विधान मात्र अलंकार के लिये नहीं होता वरन् वह तो कविता का प्राण है । -2 काव्य में बिंब की महत्ता का समर्थन करते हुए लिविस ने भी लिखा है-- सभी कविता में बिंब विद्यमान रहता है और संभव प्रत्येक पंक्ति बिंब है । काव्य का ढंग परिवर्तित रहता है, शब्द बदलता है, रूप बदलता है यहाँ तक कि काव्य का मूल भूत विषय प्रतिपादन तक परिवर्तित हो जाता है, परन्तु बिंब काव्य के जीवन तत्व के रूप में सदैव रहता है, यह कवि की महत्ता का भी द्योतन करता है । -3 बिंब में सघन भावों को काव्य रूप देकर सम्प्रेषण करना कवि की दक्षता है । बिंब ही कवि की प्रतिभा का परिचायक है । बिंब चित्रण के लिये अनुभूति की गहराई आवश्यक है । यह गहरी अनुभूति तब सम्भव हो जाती है जब भावना, आवेग संवेदना तथा

1- छायावाद - उदयभानु सिंह - पृ० 125

2- द्रष्टव्य - काव्य बिंब और छायावाद - डा० सुरेन्द्र माथुर - पृ०

3- Yet the image is constant in all poetry, and every poem is itself an image. Trends come and go, diction alters, matrical fashions change, even the elemental subject matters may change, but metaphore remains the life princi of poetry, the poets chief tests and glory.
Ref: The poetic Image. C.Day Lewis.-Page-17.

ऐन्द्रियता का समन्वय हो जाता है । अतः एव बिंब की निर्माण प्रक्रिया में अनुभूति का पूर्ण आकलन अनिवार्य है । अनुभूति से बिंब का गहरा सम्बन्ध है ।

पंत काव्य का अभिव्यंजना शिल्प मूलतः बिंबाश्रित है, उनके काव्य बिंब में पर्याप्त वैविध्य है । बिंब की योजना में वैविध्य या जीवंतता पाने के लिए उनकी चित्रात्मक भाषा का विशेष योग रहा है । कवि ने अपने रूप वैचित्र्य के अनुरूप ही विविध प्रकार के बिंबों का विधान किया है । उसके चित्र अधिकतर भाव जगत तथा ऐन्द्रिक अनुभूति से सबन्ध रखते हैं । लीविस के अनुसार ऐन्द्रिय बोध बिंबों का अनिवार्य अंग है । 'प्रत्येक बिंब में चाहे वह शुद्ध भावात्मक या बोधिक क्यों न हो, ऐन्द्रियता बोध का अंश संकलित रहता है । उसी प्रकार ऐन्द्रिय विषय से सम्बन्धित बिंब के आधार पर पंत के बिंबों का वर्गीकरण दो रूपों में किया जा सकता है -- (1) स्थूल संवेदनात्मक और (2)) सूक्ष्म संवेदनात्मक स्थूल संवेदनात्मक के अन्तर्गत पांच वर्ग के बिंब आ जाते है --

1- चाक्षुष बिंब :

स्थूल संवेदनात्मक बिंबों में चाक्षुष बिंब का विधान पंत की कविता में विशेष रूप से द्रष्टव्य है । इसके मूल में प्रकृति के प्रति कवि का सहज आकर्षण तथा उससे सामंजस्य प्राप्त करने की जिज्ञासा है । प्रकृति के विविध उपकरणों को काव्य के अन्तर्गत लाने के लिये इसका निर्माण हुआ है । यहां कवि की बिंब योजना सुन्दर और चित्रात्मक बन गई है ।

1- Every image even the most purely emotional orintellectual one has some trace of the Sensuous in it.

Ref: The poetic Image. - C.Day Lewis. - Page 19.

उदाहरणार्थ :-

लो वह आई विश्वोदय पर

xxxxxxxxxxxxxxxxxxx

अर्घ्य विवृत कर ज्योति द्वार पट ,
ज्वलित रश्मियों की अंजलि भर ;
वह पवित्रता सी अभिमंत्रित ,
सद्य स्फुट शोभा में आवृत ,
आई बह्मोदय मंदिर में ,
पथ प्रकाश का करने विस्तृत ;
आनन में लावण्य अगुंठित ,
प्रीति दृष्टि आलोक से स्मित ,
दिव्य चेतना की ऊषा वह ,
अधर पल्लवों में प्रभातस्मित ।

ऊषा के आलोक को प्रखर रूप में संवेद्य बनाने के लिए कवि ने मानवीकरण द्वारा बिंब की सुन्दर योजना की है ।

सूर्योदय के समय में अन्धकार के ओझल होने और सूर्य की प्रका किरण फैलाने का दृश्य कवि ने किस प्रकार खींचा है देखिये-

भू पर तम की कुण्डली मार
यह उठा ऊर्ध्व फण बन मणिधार ,
ब्रह्माण्ड विवर से निकल
काल प्रहरी सा ,
ज्योति नयन , दिग भास्वर । -- 2

---

1. स्वर्ण किरण - ऊषा , पृ० - 12
2. किरणवीणा - पृ. 35

आवणिक बिंब

आवणिक बिंब स्पष्टतः शब्द संयोजित प्रकृत ध्वनि चित्र ही होते हैं। शब्द, वर्णध्वनि, अनुप्रास, ध्वन्यर्थव्यंजक शब्द आदि आवणिक बिंब चित्रण के अंग रूप में उसकी समृद्धि में योग देते हैं। पहले ही सूचित किया गया है कि चित्र भाषा और ध्वन्यर्थव्यंजना के संयोजन में पंत ने अपूर्व सफलता पायी है। इसके सहारे पंत ने आवणिक बिंब का विधान [illegible] मात्रा में किया है। पावस ऋतु का बिंब कवि ने कैसे रचा है देखिए:-

> पपीहों की वह पीन पुकार, निर्झरों की भारी झर-झर,
> झींगुरों की झीनी झंकार, घनों की गुरु गम्भीर घहर
> बिन्दुओं की ध्वनि-छनकार, दादुरों के वे दुहरे स्वर। [1]

यहाँ संगीत के साथ नाद, सौन्दर्य की मूर्तिमत्ता भी दिखाई देती है। ध्वनि चित्र या नाद-चित्र के व्याज से बिंब योजना करने में कवि ने विशेष दक्षता दिखायी है।

निर्झरका प्रवाह[2], घुंघरू की ध्वनि[3], सावन की झड़ी[4] आदि को पाठकों के सम्मुख सच्चे रूप में मुखरित करने के लिए कवि ने विशेष ध्वनि चित्र प्रस्तुत किए हैं।

और एक उदाहरण देखिए:-

> बज पायल छम छम,
> उर की कंपन में निर्मम
> बज पायल छम छम छम - 5

यहाँ पर भी ध्वनि के द्वारा बिंब प्रस्तुत करते चलता है।

---

1) पल्लव - पृ० 17 , 2) पल्लव - निर्झरी - पृ० - 73 ,
3) गुंजन - चांदनी का नृत्य - पृ० - 31 , 4) स्वर्णधूलि-सावन,
5) चिदंबरा - प्राणाकांक्षा - पृ० 177

3- स्पर्श बिंब

स्पार्शिक अनुभूतियों को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए और उनके आश्रय से वर्ण्य विषय के प्रभाव को संवेद्य बनाने में पंत ने स्पर्श बिंब का निर्माण किया है। कोमलता या मृदुलता कठोरता या कर्कशता को व्यंजित करने में कवि का प्रस्तुत बिंब अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। मृदुलता के लिए रेशम तथा 'मखमली' वाचक शब्द प्रयुक्त किया गया है। उदाहरण स्वरूप:-

> गंध तुहिन के प्रधिक रेशमी पट सा मसृण समीरण
> रंग रंग के वन फूलों से गुंफित मखमल के शाद्वल
> तल्प संजोए थे स्मित, शैशव के हित क्रीड़ा कोमल [1]

यहाँ कवि ने 'रेशमी पट सा मसृण समीरण' एवं 'मखमल के शाद्वल' इत्यादि स्पार्शिक बिम्बों के द्वारा 'समीरण' एवं 'शाद्वल' के प्रभाव को स्पार्शिक अनुभूतिगम्य बनाकर मूर्तिमंत किया है। स्पर्श बिंब की योजना पंत की कविता में विरल ही है।

4- घ्राण विषयी बिम्ब

पंत की कविता में घ्राण या गन्ध विषयक बिंब भी अधिक मात्रा में नहीं मिलते। दृश्य को प्राणवान बनाने में गंध योजना सहायक होती है। कहीं कहीं फूल घातक बिंब के संकेत के लिए मिल जाते हैं,
उदाहरणार्थ-

> उड़ती भीनी तैलाक्त गंध,
> फूली सरसों पीली पीली। [2]
>
> x x x
>
> उर में छाया मर्मर कंपन, सांसों में भू गंध समीरण। [3]

'भीनी तैलाक्त गंध', 'गंध समीरण' ने तो सम्पूर्ण वातावरण को ही सुगन्धि से भास्कर कर दिया है।

1- आत्मा - पृ० - 18
2- चिदंबरा - ग्राम श्री - पृ० - 74
3- उत्तरा - चंद्रमुखी - पृ० - 104

5- आस्वाद्य बिंब

प्रस्तुत बिंब का सफल प्रयोग कवि ने किया है। आस्वाद्य बिंब के जरिये मन का भाव निखार आता है, और वह सहृदय के हृदय तक पहुँचाने में वियोग देता है। 'मदिरा की मादकता' तथा 'मधु की मिठास' का वर्णन कर कवि ने आस्वाद्य बिंब को प्रस्तुत किया है।

उदा-

क्पोलों की मदिरा पी, प्राण
आज पाटल गुलाब के जाल।[1]

सूक्ष्म संवेदनात्मक बिम्ब

ऐन्द्रिय बोध के आधार पर बिंब के वर्गीकरण में सूक्ष्म संवेदनात्मक दूसरे वर्ग में आते हैं। पंत सूक्ष्म संवेदनात्मक बिंब की योजना में अधिक सफल दिखते हैं। कल्पना के कवि के नाते पंत की अमूर्त भावनाओं को मूर्त रूप देने में सूक्ष्म संवेदनात्मक बिंब सफल हुए हैं। इस प्रकार के बिंब अधिक कल्पनिकता भाव प्रधान बन जाते हैं। पंत की कविता में सूक्ष्म संवेदनात्मक बिंब निम्न प्रकार रूपों में अंकित किया है।

स्मृति बिंब

स्मृति बिंब और काल्पनिक बिंब में मौलिक अन्तर नहीं है। कल्पना आधार पर ही स्मृति बिंबों का निर्माण होता है। कवि की कल्पना सजी तथा सरस रूप प्राप्त करने में प्रस्तुत बिंब का विधान विशेष उपयोगी है। पंत की कविता में स्मृति बिंब का विपुल मात्रा में प्रयोग मिलता है। उदाहरण।

इंदु पर उस इंदु मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से,
लाज से रक्तिम हुए थे, पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।[2]

1- गुंजन - पृ0 - 56

2- वीणा - ग्रंथि - पृ0 - 99

विकृत बिंब

भाव प्रधान कविताओं में विकृत बिंबों का विधान अधिक मात्रा में होता है। इन बिंबों के माध्यम से कवि जन कोमल एवं माधुर्यमय भावों के साथ कठोर एवं भयंकर भावों को भी चित्रित किया करता है। 'बादल' कविता में यह विकृत बिंब अदभुत रूप लेकर आया है।

कभी चौकड़ी भरते मृग-से
भू पर चरण नहीं धरते,
मत्त मतंगज कभी झूमते,
सजग शशक नभ को चरते;
कभी कीश से अनिल-डाल में
नीरवता से मुंह भरते,
बृहद् गृद्ध से विहग छदों को
बिखराते नभ में तरते।
कभी अचानक, भूतों का सा
प्रकटा विकट महा आकार,
कड़क, कड़क, जब हंसते हम सब
थर्रा उठता है संसार,[1]

पल्लव की परिवर्तन कविता में 'विकृत बिंब' का सच्चा रूप दर्शनीय है:-

एक कठोर कटाक्ष तुम्हारा अखिल प्रलयंकर
समर छेड़ देता निसर्ग संसृति में निर्भर,
भूमि चूम जाते अभ्र ध्वज सौध, श्रृंगवर,
नष्ट भ्रष्ट साम्राज्य - भूमि के मेघाडंबर।

x x x

आलोड़ित अम्बुधि फेनोन्नत कर शत शत फन
मुग्ध भुजंगम-सा इंगित पर करता नर्तन,
दिक् पिंजर में बद्ध, गजाधिप सा विनतानन,
वाताहत हो गगन, आर्त करता गुरु गर्जन।[2]

1- पल्लव - पृ0 - 77

2- पल्लव - परिवर्तन - पृ0 5 100

उदात्त बिंब

कवि जहाँ ओज प्रधान शब्द चित्रों को अंकित करता है अथवा चित्रों से तथा वस्तु के ओज की व्यंजना होती है वहाँ उदात्त बिंब की सृष्टि होती कभी-कभी इस प्रकार के उदात्त बिंबों के द्वारा उच्च भाव के धरातल पर वि व्यापक सत्य की ओर संकेत भी मिलता है, ऐसे उदात्त बिंब अनेक स्थलों पर दि देते है। उदाहरणार्थ :-

लक्षालक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर।
शत शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पांतर,
अखिल विश्व ही विवर, वक्र कुंडल दिङ्मंडल।[1]

पंत की कविता में प्राप्त कतिपय अन्य विषयक बिंबों का उल्लेख करना उचित होगा। ये हैं प्रत्यक्ष बिंब, सांस्कृतिक बिंब और दार्शनिक बिंब। प्रत्यक्ष बिंब पंत कविता में बहुत अधिक नहीं पाये जाते। कारण कल्पना-प्रधान क में उनके लिए कम स्थान मिला है। इनकी विशेषता है यथार्थ को दृ मांसल रेखाओं का कलात्मक मूर्तिकरण। 'वह बुड्ढा' कविता ऐसे ही प्रत्यक्ष का उदाहरण है :-

खड़ा द्वार पर, लाठी टेके, वह जीवन का बूढ़ा पंजर,
चिमटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी, हिलते हड्डी के ढाँचे पर,
उभरी ढीली नसें जाल सी सूखी ठठरी से हैं लिपटी,
पतझर में ठूँठे तरु से ज्यों सूनी अमरबेल हो चिपटी।[2]

प्रत्यक्ष बिंब प्रायः वस्तु प्रधान रहता है। छायावादी कवि के नाते पंत का वस्तु प्रधान बिंब ने विशेष विपुलता नहीं पायी है। कभी-कभी उनका

1- पल्लव - परिवर्तन - पृ0 - 98

2- ग्राम्या - वह बुड्ढा - पृ0 29

वस्तु प्रधान बिंब संस्कृति और दर्शन की सीमाओं को छूता हुआ दीख पड़ता है। कविता में उनका प्रस्तुत प्रकार का बिंब प्रभावोत्पादक बन गये हैं।

पंत जी ने सांस्कृतिक बिंबों के द्वारा अनेक मनोभावों को सजीव बनाया है। प्रायः इन बिंब चित्रण में भारतीय संस्कृति से अवगत पंत का कवि रूप स्पष्ट झलकता है। दो एक उदाहरण देखिये।

मुझको प्रसन्न मन देख धूप सकुचा-कुम्हला।
बोली 'अब विदा दो मुझे जाना- वह देखो
किरणें अस्ताचल पर कंचन पालकी लिये
मुझको ठहरी है क्षितिज रेखा का सेतु बांध।'[1]

प्राचीन भारत में पर्दे और घूंघट पहनने की प्रथा एक वर्ग के स्त्रियों में प्रचलित थी। ये स्त्रियाँ घर से दूर जाते समय 'पालकी' उनका वाहन था। डूबते हुये सूर्य को देखकर कवि के मन में 'पालकी' में यात्रा करने वाली सुसंस्कृत नारी का रूप झलक आया। जाती हुई धूप पालकी में बैठी हुई नारी है, क्षितिज पर व्याप्त स्वर्णिम छाया पालकी है - सूर्य की किरणें उसका संचालक है। सूर्य की स्वर्णिम आभा और पालकी में कवि ने रूप- साम्य देखा है। पाठकों के मन में पालकी में बैठी हुई लजीली नारी का चित्र कवि ने खींचा है।

दार्शनिक चिन्तन से गृहीत बिंब पंत की परवर्ती कविता में बहुतायत से पाये जाते हैं। उनका दार्शनिक बिंब स्पष्टतः अरविन्द दर्शन से अनुप्राणित है। इसमें कवि ने प्रौढ़ चिन्तन को अत्यन्त तन्मयता और सरसता से चित्रित किया है कि धरती में ईश्वरीय चेतना का आरोहण उतना सरल नहीं है, परन्तु उसके अवतरण से वह पृथ्वी को भी स्वर्ग बना देती है। भू स्वर्ग शीर्षक कविता में कवि कहता है -

वह मिट्टी की शय्या में जग
भारती प्रकाश में अंगड़ाई,
मुकुलित अंगों से फूट रही

1- अतिमा - पृ० 15.

उन्मत्त स्वर्ग की तरुणाई

x x x

हो रहा स्वर्ग से धरणी का

जड़ से चेतन का रम्य मिलन

भू स्वर्ग एक हो रहे शनैः

सुरगण नरतन करते धारण ।[1]

पंत जी की बिंब योजना इस प्रकार उनकी कविता में सराहनीय रूप से निखार उठी है । कवि की सर्जनात्मक कल्पना तथा समृद्ध भावना की प्रेरणा इसके मूल में अनिवार्यतः रहती है । कविवर पंत के काव्य बिंब उनकी भावाभिव्यक्ति, व्यक्तित्व, आत्माभिव्यक्ति आदि का स्वरूप प्रस्तुत करते हैं ।

4- छन्द योजना

पंत जी ने कविता तथा छन्द के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध माना है । उन्होंने लिखा है ' कविता हमारे प्राणों का संगीत है , छन्द हृत्कंपन । कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है । जिस प्रकार नदी के तट अपने बन्धन से धारा की गति को सुरक्षित रखते है, जिनके बिना वह अपनी ही बन्धन हीनता में प्रवाह खो बैठती है, उसी प्रकार छन्द भी अपने नियन्त्रण से राग को स्पन्दन - कम्पन तथा वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल कलरव भर उन्हें सजीव बना देते है ।[2] छन्द शास्त्र की रूढ़िवादिता का विरोध करने पर भी कवि से अवगत होने के कारण कविता और छंद के अंतरंग-संबंध, छन्द को पूर्णतः छोड़ नहीं सका है । छायावादी कवियों ने भाव और भाषा के साथ छंद के बंधनों को भी तोड़ा है । उन्होंने छंद शास्त्र में भी परंपरा तथा रूढ़ि का तिरस्कार करके संगीतात्मक लय को अपनाया । इस दृष्टि से छायावादी कविता में विशेष कर पंत की कविता में स्वच्छन्द तथा मुक्त छंद का प्रयोग हुआ है । संगीत तथा राग के विशेष मोही होने के कारण उन्होंने अधिकांशतः मात्रिक छन्द ही चुना है ।

1- उत्तरा - पृ0 74 - 75
2- पल्लव - भूमिका - पृ0 21

पिंगल शास्त्र मे वर्णित, रोला, रूपमाला, शृंगार, सखी, पीयूषवर्ष, चौपाई, पदधारि आदि सममात्रिक छंद मुख्य रूप से छायावाद मे दर्शनीय है। परन्तु छायावादी कवियों की विशेषता यह है कि इन छन्दों को उन्होंने स्वेच्छानुसार बदल कर अपनाया है। 'छायावाद के प्रायः सभी कवियों के काव्य में यद्यपि इन शास्त्रीय छंदों का किंचित परिवर्तन के साथ समुचित मात्रा मे विधान हुआ है, तथापि ये छंद छायावाद की छांदस योजनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते'[1]। छायावादी कवियों की ये नूतन छन्द योजनाएं 'स्वच्छन्द छंद' नाम से प्रसिद्ध है। इनकी कविता मे मुक्त छन्द का भी सर्वाधिक व्यापक प्रयोग उपलब्ध होता है स्वच्छन्द छन्द और मुक्त छन्द मे भिन्नता है। 'स्वच्छन्द छंद छंद - शास्त्र के नियमानता हुआ कुछ स्वच्छन्दता बरतता है, किन्तु मुक्त छंद, छंद शास्त्र के अनुसार नहीं चलता'[2]। मुक्त छन्द के सभी चरण असमान रहते है लेकिन वे मणि - मुक्ता लय सूत्र मे पिरोये रहते है। वह छंद की भूमि मे रहकर भी मुक्त है। इसमे एक प्रवाह तथा धारा वर्तमान है जिसके कारण इसकी छंद बद्धता सुदृढ़ बनी रहती है।

छंद योजना की दृष्टि से पंत की छंद योजना को तीन खण्डों मे विभाजित कर सकते है। (1) मुक्त छंद (2) अतुकांत छंद (3) शास्त्रीय छंद।

मुक्तछंद :

हिन्दी मे मुक्त छंद का प्रयोग विशेषतः अंग्रेजी की रोमांटिक कविता और बंगला काव्य की प्रेरणा से हुआ। पंत ने भी इस काल मे मुक्त छंद का अनुसरण किया। मुक्त छंद का स्वरूप पंत ने इन शब्दों मे स्पष्ट किया है।[3] 'यह ध्वनि अथवा लय (Rhythm) पर चलता है। जिस प्रकार जलौघ पहाड़ से निर्झर-नाद मे उतरता, चढ़ाव मे मन्दगति, उतार मे क्षिप्र वेग धारण करता, आवश्यकतानुसार अपने किनारों को काटता - छांटता, अपने लिए ऋजु - कुंचित पथ बनाता हुआ आगे बढ़ता है, उसी प्रकार यह छंद भी कल्पना तथा भावना के उत्थान - पतन, आवर्तन - विवर्तन के अनुरूप संकुचित - प्रसारित होता, सरल - तरल, ह्रस्व - दीर्घ गति बदलता रहता है

1- हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास - सं डा0 नगेन्द्र - दशमभाग - पृ0 313

2- आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प - मोहन अवस्थी - पृ0 212.

3- पल्लव - भूमिका - पृ0 32.

पंत ने मुक्त छंद का अनुसरण इस दृष्टि से किया है कि उनके अनुसार मुक्त काव्य में 'भाव तथा भाषा का सामंजस्य पूर्ण रूप से निभाया जा सकता है'। मुक्त छंद के लिए हरिगीतिका, पद्धरि, रोला आदि छंदों की योजना की आवश्य नहीं है। ह्रस्व - दीर्घ मात्रिक छंद के लय पर हिन्दी में मुक्त - काव्य सफल रूप से लिखा जा सकता है। पल्लव के 'उच्छ्वास', 'आंसू', 'परिवर्तन' आदि में मुक्त छंद का सफल प्रयोग कवि ने किया है। इसमें कवि ने अपनी भावनाओं को यथास्थान घटा - बढ़ा कर पद विन्यास किया है, इसलिए कविता में एक प्रकार की नाटकीय व्यंजना भी आयी है।

आधुनिक हिन्दी काव्य जगत में निराला जी मुक्त छंद के गुरु थे। वस्तुतः छायावाद में मुक्त छंद का सर्वाधिक प्रयोग निराला के काव्य में उपलब्ध होता है। मुक्त छंद रचना में पंत को भी यथेष्ट सफलता मिली है। पंत की आधुनातन रचनाओं में भी मुक्त छंद का प्रयोग मिलता है। उनकी मुक्त - छंद योजना में सजीवता है, प्रवाह है, परिपूर्णता है --

'विचरो, यह जीवन का पथ है
स्वर्णिम आत्म गुहा से बढ़ कर
उतर रहा मन जीवन स्तर पर,
अग्नि पिंड जाग, ज्योति पंख मग,
बरसाता आनन्द छंद स्वर।
निज से पर को ओर निरखता
ज्ञात उसे युग का इति अथ है।

शुभ्र शांति के नील पार कर
रजत प्रसारों में विहार कर,
तड़ित स्फुरित सत जल निर्झर - सा
अंतर जीवन को निखार कर, -
दौड़ रहा आलोक क्षितिज को,
मरुत वेग प्राणों का रथ है। -2

1- ~~वही - वही~~ पल्लव - भूमिका - पृ0 32.
2- वाणी - स्निग्ध पथ - पृ0 35.

श्री शांति प्रिय द्विवेदी ने पंत के छंद के विषय में लिखा है - 'पंत जी के स्वभा में जो सामंजस्य और सौष्ठव है वही उनके छंदों में भी, उनका जीवन और काव्य छंदों में मर्यादित है - शरीर में आत्मा की तरह, सगुण में निर्गुण की तरह, बन्ध में मुक्ति की तरह । उन्होंने मुक्त - छंद नहीं, बल्कि 'मुक्त काव्य' दिया, भाव और रसों को उन्मुक्त किया' । -1

अतुकांत छंद :

छायावादी कवियों में छंद रचना में जो नवीन रूप विधान किया, उसमें अतुकांत भी आता है । इस क्षेत्र में कवि ने अंग्रेजी तथा बंगला काव्य से विशेष प्रेरणा पायी है । अंग्रेजी में इसे 'ब्लैंक वर्स' नाम दिया है । अतुकांत जीवन के भाराक्रान्त क्षणों का वाहक है । 'जब हम अधिक कार्य-व्यग्र अथवा भाराक्र रहते, उस समय काम काज का ऐसा ताप, क्रिया का ऐसा स्पन्दन-कम्पन रहता है कि हमें अपनी स्वाभाविक दिनचर्या में बरते जानेवाले शिष्टाचार व्यवहार के लिए जीवन के स्वतन्त्र क्षणों में प्रत्येक कार्य के साथ जो एक आनन्द की सृष्टि मिल ज उसके लिए अवकाश ही नहीं मिलता, हमारे कार्य प्रवाह में तीव्र गति रहती, हमार जीवन एक अश्रान्त दौड़ सा, कुछ समय के लिए, बन जाता है । यही 'ब्लैंक वर्स' व अतुकांत कविता है'। - 2

गीति-नाट्य तथा प्रबंध काव्य के लिए अतुकांत विशेष उपयोगी है । इसलिए अतुकांत काव्य अधिकाधिक गद्योन्मुख हो जाता है । यह तुक और छंद से सर्वथा मुक्त रहता है ।पंत के विचारानुसार अतुकांत काव्य में तीव्रता तथा गति के साथ कला की संक्षिप्तता भी रहती है । आधुनिक हिन्दी काव्य-जगत में छंद बंधनों से मुक्ति पाने की प्रबल इच्छा के परिणामस्वरूप अतुकांत छंद रचना का प्रच हुआ । परन्तु इस युग के कवि अतुकांत छंद रचना पर स्थित नहीं रह सके । क्योंकि

1- ज्योतिविहग - शांति प्रिय द्विवेदी - पृ0 132.

2- पंत - पल्लव - भूमिका - पृ0 30.

के समान ही अतुकांत छंद रचना को हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल न पाकर मैं कवि भी इससे हटकर मुक्तछंद की रचना में प्रवृत्त हो गए ।

पंत जी ने ग्रंथि की रचना अन्त्यानुप्रास मुक्त अतुकांत छंद में की । परन्तु कवि ने इसमें विशेष नवीनता न लाकर प्राचीन मात्रिक छंदों जैसे प्लवंगम, पीयूष राधिका, नाटक आदि का अतुकांत प्रयोग किया । उदाहरण के लिए देखिए -

> नित्य ही मानस तरंगों में अतल
> मग्न होते हैं कई, पर इस तरह
> अमृत की जीवित लहर के बाह में
> जगत में कितने अभी डूबे भला?
> चपल जीवन की तरि भी, विश्व में
> डूबती हो है, भंवर सी घूमकर,
> मग्न होकर किन्तु सबकी सत्य ही,
> नाव मिलती है नहीं यों दूसरी । -1

शास्त्रीय छंद
==========

पंत ने पिंगल शास्त्र में वर्णित शास्त्रीय छंदों में सर्वाधिक रूप में सममात्रिक छंद रोला, रूपमाला, शृंगार, सखी, पीयूषवर्ष, चौपाई, पदधरि आदि का प्रयोग किया है। 24 मात्राओं के 'रोला' छंद का प्रयोग पल्लव के परिवर्तन में देखा सकता है । उदाहरणार्थ --

> 'विश्वमय है परिवर्तन । अतल से उमड़ अकूल,
> अपार मेघ से विपुलाकार दिशावधि में फल विविध प्रकार' -2

1- वीणा - ग्रंथि - पृ0 99

2 पल्लव - पृ0 - 110

यहाँ कवि ने रोला छंद में ही कुछ परिवर्तन करके प्रस्तुत किया है। अंग्रेजी के 'ओड' कविता से प्रभावित होकर कवि ने यह परिवर्तन किया है। अर्थात् कवि ने छंद में एकस्वरता को तोड़ने के लिए तथा भावाभिव्यक्ति की सुविधा के लिए छ चरण को कुछ न कुछ परिवर्तित कर दिया है। पहली पंक्ति में तीन मात्रा के बाद एक विराम देकर, तीसरे चरणमें फिर भी चार मात्राएँ कम की गयी हैं।

पल्लव की भूमिका में कवि ने लिखा है कि रोला छंद में निहित लय में 'बरसाती नाले का कलनाद' है।[1] पंत ने रोला छंद के प्रयोग में सर्वत्र छंद और लय की एकतानता को बनाये रखने की सफल कोशिश की है।

16 मात्राओं के 'शृंगार' छंद का सफल प्रयोग पंत ने किया है, जैसे --

> आज पावस नद के उद्गार
> काल के बनते चिन्ह कराल -2

प्रत्येक चरण के आरंभ में एक त्रिकल तथा अंत गुरु - लघु से हुआ है।

'सखी' छंद में 14 मात्राएँ होती हैं और अन्त में मगण होना चाहिए। परन्तु कवि ने अन्त के मगण का अनुसरण न करके अपने भावानुकूल छंद रचना की है

> उन्मूलित वन वृक्षों से
> लख जन्तों का विस्थापन
> भगता उठ - गिर - पड़ जन वन
> हाला डोला हो जीवन।
> पशु का त्कार तन धर्षण
> छीना झपटी आयुध क्षण
> झग, भूत, प्रेत हो छूटे, भय कंपित कर भू प्रांगण। -3

पंत ने 16 मात्राओं वाले 'पादाकुलक' छंद का भी सफल प्रयोग किया है

1- पल्लव - भूमिका - पृ० 31

2- आधुनिक कवि - भाग दो - पृ० - 25

3- लोकायतन - पृ० 121

पावन धरी भू, पावन जीवन,
चिर पावन मानव का तन मन
सर्वत्र ब्रह्म जग में व्यापक
वह सचराचरमय, जड़ चेतन।[1]

अभिनव छंद रचना या छंदछन्द रूप विधान के क्षेत्र में कवि ने सराहनीय काम किया है। इस क्षेत्र में कवि की मौलिक दृष्टि दर्शनीय है। पिंगल शास्त्र में वर्णित विभिन्न मात्रिक छन्द को मिलाकर नवीन छंदों का निर्माण कवि ने किया है। लोकायतन में इसका उदाहरण यत्र तत्र मिलता है। कवि ने 19 मात्रा के 'चौपाई' छंद तथा 16 मात्राओं वाले अरिल्ल छंद का एक साथ मिश्रण करके छंद रचना की है।-

युग्म मूल्यों का विकिरण जीर्ण
आज रोके जन भाव विकास
बद्ध संकीर्ण परिधि में व्यर्थ
राग गांधी चेतना का प्रयास।[2]

पंत की कविता में स्वर का प्रमुख स्थान रहता है। कवि ने स्वर संगति की रक्षा के लिए, भाव तथा वाणी का सामंजस्य स्थापित करने के लिए नये छंद भी गढ़े है। छंद के चुनाव में कवि का यह दृष्टिकोण स्पष्ट झलकता है। देखिए छंद योजना में नूतन विन्यास करके कवि अपनी विशेष भावस्थितियों को किस प्रकार मूर्तिमंत कर सका है।-

बांसों का झुरमुट
संध्या का झुटपुट
है चहक रही चिड़िया
टी-वी-टी - टुट - टुट[3]

1- वही पृ0 - 615
2- लोकायतन - पृ0 - 27।
3- युगान्त - पृ0 - 19

प्रस्तुत पंक्तियों में प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ चरण 10 - 10 मात्राओं के हैं, इनका अंत्यक्रम भी समान है । तृतीय चरण में 12 मात्राएं हैं, ~~अंत्यक्रम में भी मिलता है।~~

संक्षेप में कहा जा सकता है कि पंत जी ने शास्त्रीय छंद के प्रयोग के साथ ही साथ अन्य छायावादी कवियों के समान स्वच्छन्द तथा नवीन छंद का सफल प्रयोग किया है । "वास्तव में पंत की छन्द योजना विशद है उनके प्रत्येक छन्द में राग की एक धारा अनिवार्य रूप से व्याप्त मिलती है -- कहीं भी शब्दों की कड़ियां अलग - अलग असम्बद्ध नहीं दिखाई पड़ती -- उनकी दरारें लय से भर कर एकाकार कर दी गयी हैं । सारांश यह है कि उनमें पूर्ण सामंजस्य है"। -1 छन्द के क्षेत्र में कवि ने युगान्तर प्रस्तुत किया और छंद शास्त्रीय रूढ़ि बन्धनों से हिन्दी काव्य को मुक्त कर दिया ।

संपूर्ण छायावादी कवियों में पंत का शिल्प वैभव अधिक नूतन, समृद्ध तथा प्रमाण है । उन्होंने अपनी कल्पना एवं प्रतिभा से छायावाद के काव्य शिल्प को अनुपम उत्कर्ष प्रदान किया । आधुनिक काव्य शिल्प के विकास में इसका योगदान विशेष स्मरणीय है । उसमें उसकी काल्पनिकता, नूतन शब्द-चयन, चित्रात्मकता, बिंबात्मकता आदि के नूतन - रूप मिलते हैं, जो छायावादी काव्य शिल्प की अमूल्य संपदा है ।

x x x x x x x

1- सुमित्रानन्दन पंत - डा० नगेन्द्र - पृ० 63 .

अध्याय - ६

पन्त जी का प्रकृति - काव्य

काव्य में प्रकृति का स्थान।

मानव - भाव बोध के विकास में प्रकृति का अपना योगदान रहा है। पल - पल परिवर्तित नाना रूपमयी प्रकृति मानव हृदय में विभिन्न भाव - तरंगें उत्पन्न करने में सक्षम है। प्रत्येक युग में काव्य में लक्षित प्रकृति - परिकल्पना के आधार पर उस युग की जनता की सांस्कृतिक विशेषताओं का परिचय मिलता है। भारतीय साहित्य में प्रकृति को जिस जीवन - दृष्टि से देखा परखा है उससे बिल्कुल भिन्न दृष्टि से प्रकृति की परिकल्पना यूरोप ने की है। केवल काव्य और कलाओं के मूल भूत दृष्टिकोण को इस भिन्नता के आधार पर यूरोप तथा भारत के सांस्कृतिक अन्तर को स्पष्ट किया जा सकता है। 'यूरोप में प्रकृति अपने संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में जिस यथार्थ अनुकरण के स्तर पर परिकल्पित की गयी है, उससे उसकी भौतिकवादी यथार्थ पर प्रतिष्ठित जीवन-दृष्टि का इतिहास सम्बद्ध है। इसी प्रकार भारत में प्रकृति काल्पनिक आकार - प्रकार, रूप - रंगों में जिस आदर्श सादृश्य रूप में परिकल्पित है, उससे उसकी शाश्वतवादी आध्यात्मिक तथा आदर्श मूला जीवन - दृष्टि का विकास - क्रम परिलक्षित होता है'। -।

चाहे भारत के हो या यूरोप के हो, काव्य में प्रकृति का स्थान किसी न किसी प्रकार लक्षित रहा है। यह संभव है कि युग - युग के काव्य में जनता की जीवन दृष्टि के बदलने के साथ ही साथ उस समय के काव्य में भी प्रकृति की

।- प्रकृति और काव्य - डा० रघुवंश - पृ० 385

भिन्न - भिन्न कल्पनाएँ रूपायित हुई हो। युग परिवर्तन के आधार पर प्रकृति के प्रति कवि का दृष्टिकोण भी बदलता रहता है। हमारे भारतीय साहित्य को ही ले लें। प्राचीन भारतीय साहित्य में जिस रूप में प्रकृति अंकित है उससे नितांत परिवर्तित रूप में आधुनिक साहित्य में प्रकृति चित्रित है।

हिन्दी काव्य में प्रकृति :

भारतेन्दु युग के बाद हिन्दी काव्य में प्रकृति की परिकल्पना में आमूल परिवर्तन घटित हुआ। नयी परिस्थिति, भावना तथा आदर्शों के नये संदर्भ के साथ प्रकृति को व्यंजित करने का प्रयास किया गया। प्रकृति के वर्णनात्मक चित्रण के द्वारा इस समय के काव्य में चित्रित चरित्रों के मनोभावों को पहचाना जा सकता है।

द्विवेदी युग में प्रकृति के स्वतन्त्र सौन्दर्य को स्वीकार किया गया। आगे चलकर प्रकृति के प्रति व्यापक दृष्टिकोण का रूप प्रसारित होने लगा। कवियों की मानवीय सानुभूति और संवेदनशीलता का प्रसार इस क्षेत्र में प्रमुख रूप से हुआ। यहीं तब कवियों में रोमांटिक भावना का प्रारंभिक रूप दिखायी पड़ने लगा।

छायावादी काव्य में प्रकृति :

द्विवेदी युग में जो नवीन धारा का प्रस्फुटन इस क्षेत्र में हुआ उसका विकास छायावादी काव्य धारा के अन्तर्गत हुआ। छायावादी कवियों में प्रकृति के मूक जीवन के प्रति गहन सहानुभूति है। इस कारण प्रकृति के रूपों, उपकरणों तथा जीवों के प्रति सहज जिज्ञासा और आत्मीय संवेदन इनके काव्य में मिलता है। इनमें प्रकृति और जीवन के परस्पारिक सहयोग की भावना रूपायित होने लगी। अतः प्रकृति के भिन्न - भिन्न रूपों में जो सुन्दरता है रमणीयता या सुरभ्यता है उसमें मानवीय उल्लास का स्फुरण व्यंजित होता है। कवि का सूक्ष्म सौन्दर्य बोध, प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण के रूप में छायावाद काल के प्रारम्भ में ही मिलता है। साथ में रोमांटिक आन्दोलन का समावेश छायावादी काव्य में ही सर्वप्रथम हुआ। " वस्तुतः छायावादी कवियों ने व्यक्ति -

स्वतन्त्रता, सौन्दर्य की उपासना, दिव्यता तथा महानता जैसे अपने आदर्शों को प्रकृति की परिकल्पना में सिद्ध करने का उपक्रम किया है" ।-। कतिपय छायावादी कवियोंका प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण मुक्तकल्पना पर आधारित दृष्टगत होता है । इन कवियों ने प्रकृति को जिस व्यापक चित्रपट पर अंकित किया है, वह कल्पनात्मक सौन्दर्य बोध से अनुप्राणित है । इसलिए प्राकृतिक सौन्दर्य की चित्र रचना के अन्तर्गत कवि का सूक्ष्म सौन्दर्य बोध नूतन आकार पाकर प्रस्तुत हो जाता है । सौन्दर्य के बाह्य आकार को कल्पना के माध्यम से सूक्ष्म बनाने का काम इन छायावादी कवियों ने ही किया । छायावादी कवियों के प्रकृति-चित्रण में उनके इस सूक्ष्म सौन्दर्य बोध की अभिव्यक्ति हुई है । इस प्रकार इस युग का सौन्दर्य भौतिक है फिर भी कल्पना के समावेश के कारण एक भव्य अलौकिक दीप्ति उन्हें मिली है । प्रकृति के कण - कण में और तृण - तृण में एक लोकोत्तर चेतना का आभास दिखाई पड़ा । इस प्रकार कल्पना और सौन्दर्य के सामंजस्य से छायावादी कविता का प्रकृति चित्रण अधिक सूक्ष्म, गम्भीर और कलात्मक हुआ ।

छायावादी प्रकृति-चित्रण की और एक विशेषता उसके मानवीय रूप - व्यापारों को प्रकृति पर आरोपित करने की प्रवृत्ति है । मानवीकरण के नाते प्रकृति और मानव दोनों का भावमय चित्र छायावादी कवियों की प्रतिभा ने कमाल हासिल किया है । उदाहरण के लिए पंत, निराला आदि की 'सन्ध्या सम्बन्धी कविताएँ ले लें । इनमें मानवीय व्यापारों का आरोप प्रकृति पर किया गया है, फिर भी प्रकृति का भावमय चित्र पाठकों के सम्मुख आ जाता है ।

प्रकृति के मानवीकरण तथा मानव के प्रकृतीकरण की प्रवृत्ति कवि के सौन्दर्य - चित्रण की बहुत बड़ी विशेषता है । इस प्रकार के आरोप के लिए उन्हीं प्रतीकों, बिंबों को ग्रहण किया है जिससे कि कविता में लाक्षणिक व्यंजना, नये अलंकरण और नये प्रतीक विधान का विशेष विकास हुआ । इसी कारण इन चित्रों में कवि का कलात्मक बोध अत्यन्त निखार कर आया है साथ ही उनके सौन्दर्य

।- प्रकृति और काव्य (हिन्दी काव्य) डा० रघुवंश - पृ० 392

बोध का अंकन भी हुआ है। उदाहरण के लिए निराला की 'जुही की कली' और पंत की 'बसंत' और 'वीचि विलास' को लिया जा सकता है। इसमें प्रकृति के सजीव और भावमय चित्र व्यंजित करने के साथ ही मानव जीवन और भावना की समानान्तर व्यंजना हुई है। इसमें प्रकृति मानव जीवन के साथ संचरण करती हुई प्रतीत होती है। प्रकृति के परिवर्तन शील तथा कठोर यथार्थ रूप कवि ने इस प्रकार चित्रित किया है कि उस से मानव जीवन का ही यथार्थ रूप सामने आकर खड़ा हो जाता है।

छायावादी कवि ने अपनी लौकिक भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रकृति को माध्यम बनाया है। कवि के भाव रूपों में शक्ति प्रदान करने का एकमात्र साधन प्रकृति रही है। रागमयी सन्ध्या को देखकर कवि अनुराग से आविष्ट होता है। अपने उल्लास को व्यक्त करने के लिए वह लहर का माध्यम खोजता है। इस प्रकार छायावादी कवियों की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि वे प्रकृति के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति करते है। अपने सुख दुख में या हर्ष विषाद में वह अपने बाह्य संसार से सामंजस्य खोजता है। इसप्रकार कवि अपनी आनन्दमयी मनःस्थिति का चित्रण करने के लिए प्रकृतिके प्रसन्न वातावरण खोजता है और दुखपूर्ण भावनाओं का चित्रण करने के लिए नीरस प्राकृतिक दृश्यों का सहारा लेता है। संक्षेप में कहें तो 'वह मानवीय भावों का, आशा- निराशा, पीड़ा-वेदना, हर्ष-विषाद, सुख दुख, इच्छा-आकांक्षाओं का अनुभव प्रकृति के फैले हुए जीवन के माध्यम से करता है और अपनी कल्पना के मुक्त और स्वच्छन्द प्रत्यक्षीकरण का क्षेत्र प्रकृति में खोजता है। इस प्रकृति का जीवन न कवि के जीवन के समानान्तर है, न उससे आरोपित और उत्प्रेरित ही, वह कवि के जीवन से अभिन्न हो गया है'।-1

इस प्रकार छायावादी कवियों ने प्रकृति को मानव से असंपृक्त रूप में नहीं देखा है। उनकी दृष्टि में प्रकृति मानवेतर यथार्थ का पर्याय मात्र नहीं है। प्रकृति की हर क्रिया और गति- विधि के प्रति छायावादी कवि पूर्णतः सजग थे।

1- रूपाम्बरा - सं० अज्ञेय - पृ० 399.

इसीलिए ही प्रकृति का जीवंत चित्रण इन कवियों में अनायास मिलने लगा। छायावादी कवियों के लिए प्रकृति केवल अनुभव या संवेदन की वस्तु न रहकर उनके जीवन का एक अंश बन गया था, उनका जीवन प्रकृति से ओतप्रोत था।

प्रकृति काव्य में नये अलंकारिक विधान की परिपाटी चल रही थी। इसके अंतर्गत नवीन अप्रस्तुत विधान का प्रयोग होने लगा जिससे कि कवि की प्रवृत्ति स्थूल से सूक्ष्म की ओर गयी। प्रायः सभी छायावादी कवि सौन्दर्य बोध से अनुप्रेरित थे। छायावादी कवियों की आत्मानुभूति के साथ काल्पनिक सूक्ष्म सौन्दर्य का सामंजस्य हुआ और उन्होंने इसे सचेष्ट शिल्प के रूप में विकसित किया। इस प्रवृत्ति का परिणाम रहा एक स्थान पर मानव के रूप और क्रियाओं के समानान्तर प्रकृति की अप्रस्तुत योजना मिलती है तो दूसरे स्थान पर प्रकृति के रूप-व्यापारों के लिए मानवीय जीवन की अप्रस्तुत योजना मिलती है। कवि के सूक्ष्म सौन्दर्यबोध ही इस अलंकार विधान के मूल में काम कर रहा है।

छायावादी प्रकृति काव्य में ऐसी भी रचनाएं मिलती है जो भूमिका के रूप में प्रकृति को प्रस्तुत करती है। कारण यह है कि सामाजिक यथार्थवाद के प्रभाव में कविता करने की प्रेरणा उनमें थी।

दूसरी ओर व्यक्तिवादी दृष्टि का विकास हुआ और प्रकृति की परिकल्पना भी इससे प्रभावित हुई। इनकी प्रकृति भावनाओं से अनुप्राणित होने लगी। उसमें निराशा की अनिवार्यता, अराजक उच्छृंखलता, निराशा की विशृंखलता मिलने लगी। प्रयोगवादी कवियों में यह प्रवृत्ति सबसे प्रमुख रूप में दिखायी पड़ती है।

प्रकृति चित्रण की चर्चा करते समय इनकी और एक विशेषता पर दृष्टि डालना अनिवार्य है। वस्तुतः वस्तुतथा भाव के आधार पर विषयगत और विषयीगत इस रूप में प्रकृति चित्रण का वर्गीकरण किया जा सकता है। और विषय प्रधान प्रकृति चित्रण में कवि प्रकृति का ज्यों का त्यों चित्रण प्रस्तुत करता है। उसमें कवि की आन्तरिक मनोदशा का अंकन नहीं होता और कवि अपने

भावों का प्रकृति पर आरोप न करता है । इस प्रकार प्रकृति के वस्तु - गत चित्रण करने की इस प्रवृत्ति को विषय प्रधान कहते हैं । विषयी - प्रधान चित्रण को आत्म प्रधान भी कहें तो गलत नहीं है । इन प्रकृति चित्रणों में प्रकृति का तदवत् रूप गौण रहता है और कवि की भावनाएँ प्रमुख होती है । छायावादी काव्य में विषय प्रधान प्रकृति चित्रण का नितान्त अभाव न होने पर भी विषयी - प्रधान प्रकृति चित्रण का ही प्राधान्य है ।

छायावादी कवियों ने परंपरागत रीति के अनुसार प्रकृति चित्रण की वर्णनात्मक, संश्लिष्ट तथा चमत्कार प्रधान शैलियों को अपनाया है । वर्णनात्मक शैली में प्रकृति का व्यौरेवार चित्रण किया जाता है । किसी भी प्राकृतिक दृश्य को देखकर कवि उसकी स्थूल वस्तुओं के अतिरिक्त उसकी सूक्ष्म वस्तुओं का भी निरीक्षण करता है ।

संश्लिष्ट शैली में प्रकृति के रूप - रंग, क्रिया-कलाप तथा मन पर पड़ने वाले प्रभाव का एक साथ वर्णन किया जाता है । अतएव संश्लिष्ट शैली द्वारा प्रकृति के दृश्यों पर दूरारूढ कल्पना का आरोप करता है । रीतिकालीन कवियों में चमत्कार प्रधान शैली बहुत अधिक मात्रा में देखी जा सकता है । छायावादी कवियों ने इस शैली को विरले ही स्वीकार किया है ।

इस प्रकार छायावादी काव्य में प्रकृति को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है । प्रकृति को उन्होंने अपने रागात्मक जीवन का आलम्बन बनाया है । छायावादी कवियों को प्रकृति के सरस, सजीव तथा संश्लिष्ट चित्र अंकित करने में विशेष सफलता मिली है । प्रकृति के प्रति प्रगाढ अनुराग की भावना इन कवियों की अपनी विशेषता है ।

पंत की प्रकृति की उपासना :

प्रकृति की रमणीय स्थली में जन्मे और पले पंत बचपन से ही प्रकृति पर सहज रूप से मुग्ध थे । जन्म से ही मातृविहीन बालक के लिए प्रकृति अपनी माँ रही ।

प्रकृति ने उन्हें स्नेहमयी माँ के समान पोषण किया। कौसानी में उन्हें प्राकृतिक सुषमा से जो आनन्द प्राप्त था उसी तरह मानसिक शिक्षण भी प्राप्त हुआ। प्रकृति के कण-कण से मिल-जुल कर रहने का अवसर प्राप्त होने के कारण बालक का मन उससे मंत्रमुग्ध रह जाता था। 'आत्मिका' में प्रकृति के प्रति पंत का अंधानुराग व्यक्त हुआ है।

प्रकृति का प्रांगण ही बालक का वास्तविक घर था। प्राकृतिक दृश्यों को घंटों तक एकटक देखते रहना उन्हें बहुत प्रिय लगता था। प्रकृति निरीक्षण और प्रकृति प्रेम उनके स्वभाव के अंग रहे हैं और संकट के क्षणों में प्रकृति माँ उन्हें सान्त्वना देती थी। एक तरफ से प्रकृति उनका शिक्षक रही है। वास्तव में प्रकृति ने उनके मानसिक, भाविक, बौद्धिक और आध्यात्मिक जीवन को प्रभावित किया।

प्रकृति को उन्होंने पूर्णरूपसे अपना लिया था। वे प्रकृति के सगे बन गये। प्रकृति की हर एक वस्तु उनके खिलौने, सखा-सहचर, मार्ग-निर्देशक और व्यक्तित्व के पोषक बनी थी। 'प्रकृति ने अपने आंगन में मुझे सदैव खुल-खेलने को उकसाया है। उसने मेरे अनेक मानसिक घावों को अपने प्रेम स्पर्श से भर दिया है, मेरी अनेक दुर्बलताओं को अपनी प्रेरणाओं के प्रकाश से धोकर मानवीय बना दिया है। वह शायद मेरा ही एक अंग है, सबसे स्निग्ध, उज्ज्वल और व्यापक अंग, जिसके प्रशांत अंतस्तल में सब प्रकार के सद-, असद, उच्च-क्षुद्र, तथा सुख-दुख अपने आप घुल मिलकर एकाकार हो जाते हैं।'' -।

पंत का हृदय सदैव के लिए प्रकृति का प्रणयी हो गया। बालपन में प्रकृति माँ थी तो यौवनावस्था में प्रकृति कविता के लिए प्रेरणा देनेवाली कामिनी रही कवि ने यह अनुभव किया है कि जरूर प्रकृति ने ही उन्हें कवि बनाया। पंत के बारे में यह आश्चर्य की बात नहीं कि उन्होंने वे प्रकृति और कविता कामिनी के बिना और किसी को अपना न सके थे। कविता करने की प्रेरणा पंत को सर्वप्रथम प्रकृति

।- शिल्प और दर्शन - पंत (पुस्तकें जिनसे मैंने सीखा) पृ० 185.

से ही मिली, जिसके उद्यान से उन्होंने काव्य सौन्दर्य के पुष्पों को बटोरा और जिसके निर्जन एकांत में उनका मन मुक्त स्वरों के पंख खोलकर गा उठा।[1]

हिमाद्रि की ऊँचाई और नीचे की कौसानी की रम्य प्रकृति उनके प्रौढ़ मन में एक विशेष प्रकार की अनुभूति जागृत करने लगी। पहले प्रकृति के संग में उनकी सौन्दर्यानुभूति का विकास हुआ तो आज उनके भीतर उस प्रकृति ने ममता, स्नेह, सहानुभूति आदि भावनाएं जगायी। उन्होंने उसी प्रकृति को अपना शिक्षक मान लिया है। बचपन के दिनों के बाद उनकी परिपक्वता उन्हें श्रद्धा, विश्वास और जीवन सत्य की ओर ले जाने लगी। इस प्रकार उन्हें शिवत्व की ओर ले जाने का श्रेय प्रकृति को है। अतिमा में उन्होंने महान हिमाद्रि की स्तुति की है और उसमें माना है कि हिमाद्रि ने विश्वकल्याणकारी महान दायित्व का सदैव निर्वाह किया है। हिमाद्रि की स्वर्गिक गरिमा असीम अमर सौन्दर्य का प्रतीक है। इस नैसर्गिक सुषमा में उन्हें अन्तःनिहित दिव्य प्रकाश का आभास मिला। उस गौरवशाली सृष्टि के सामने कवि नतमस्तक हो जाता है। प्रकृति ने उनके मन को अनेक दिव्य प्रकाश से आलोकित कर, काव्य-कल्पना को ऊर्ध्वमुखी बनाया है। इस प्रकार प्रकृति के उपासक कवि को प्रकृति ने ही गंभीर कवि व्यक्तित्व प्रदान किया, उनकी प्रारंभिक कविताओं में निसर्ग सौन्दर्य का प्रस्फुटन है तो वह प्रकृति के माध्यम से प्राप्त है और परवर्ती कविता में दार्शनिक गरिमा है तो वह भी प्रकृति के असीम प्रकाश की देन है। कवि को प्रकृति की उपासना से ही अध्यात्म सत्य की उपलब्धि हुई। संक्षेप में कहूं तो पंत की प्रतिभा तथा कविता, उस नैसर्गिक काव्य-संस्कार की उपज है अथवा प्रकृति प्रेरित है। यह पंत की अपनी विशिष्टता है।

उनकी प्रारंभिक कृतियों के रचना काल में कवि ने प्रकृति से प्रेरित भावनाओं को वाणी दी है। अनिर्वचनीय सौन्दर्य भूमि का प्रतिफलन उनकी उस समय की कविताओं में स्पष्ट दिखाई देता है। उनमें उनकी सत्य भोली अनुभूति, निश्छल

1- शिल्प और दर्शन - पंत - पृ० 8

प्रेम और अनंत से अनन्य तादात्म्य की अभिव्यक्ति है। इन कृतियों में कवि के सूक्ष्म निरीक्षण तथा गहन विचारों का सम्मिश्रण है। इनमें पंत की रमणीय कल्पना, शब्दों के माधुर्य से सजीव हो उठी है। ''कवि की काव्य-सुषमा में प्रकृति का जो स्निग्ध व्यक्तित्व है उसी से अनुरंजित होकर भाषा और पद-योजना भी मसृण हो गयी है''। -1

पंत जी की रचना-प्रक्रिया का विकास वास्तव में चारों ओर की परिस्थिति के अनुकूल हुआ है। पंत के बारे में यह कहें तो आश्चर्य की बात नहीं कि उनकी रचना प्रक्रिया समय के अनुकूल परिवर्तित होती रही। किशोर वय में उनका मन विस्मय की भावना से अधिक अभिभूत रहता था और उस समय छोटी-छोटी प्राकृतिक वस्तुओं तथा घटनाओं के प्रति विस्मय ने कविता लिखने की प्रेरणा दी है। उन्होंने कहा है -- 'पल्लव काल तक प्रकृति के इतने सुन्दर-सुन्दर उपकरण मेरे मन में अपने आप एकत्रित हो गए थे कि तब उन्हें अनेक चित्रों तथा उपादानों से अलंकृत करना मेरे लिए स्वाभाविक हो गया था'।-2 आगे चलकर उनका परिपक्व मन प्रकृति के अन्दर घुसने का प्रयत्न करने लगा और उनका विस्मय, जिज्ञासा में परिणत हो गया। प्रकृति के आन्तरिक सौन्दर्य की ओर उसके अन्तः सत्य को पहचानने की जिज्ञासा सदा उन्हें लालायित करती थी। स्वभावतया उनका मन आशा तथा उल्लास से भर गया, और वे समस्त मानव की कल्याण कामना करने लगे। वहां भी कवि आत्मिक सत्य की खोज करता रहा। संक्षेप में, पंत जी के प्रकृति प्रेम के मूल में जो चेतन सत्य को पहचानने का आग्रह था, वास्तव में वही आग्रह उनकी प्रौढ़ावस्था की परिवर्ती कविता में भी हम देख सकते हैं। पंत जी के प्रकृति सम्बन्धी काव्य में जो मूल विषय है उसी का मांसल, प्रौढ़, मूर्त रूप ही उनकी बाद की कविता का आधार विषय है। पंत जी के समस्त काव्य में यही एक भाव काम कर रहा है। उनका प्रकृति प्रेम ही ईश्वर प्रेम में परिणत हो गया। 'पंत जी की कविता का सबसे बड़ा तत्व है -- उनका प्रकृति प्रेम। हिन्दी में ऐसा कोई कवि नहीं है जिसने इस प्रकार प्रकृति को अपनाकर जीवन का अंग बनाकर रखा हो'-3

1- शांति प्रिय द्विवेदी - साहित्य - पृ0 126.
2- शिल्प और दर्शन - पंत - पृ0 237
3- सु0 पंत - काव्य कला और जीवन दर्शन सं0 शचीरानी गुर्टू - कलाकार कवि पंत - डा0 इन्द्रनाथ मदान - पृ0 100-101.

इस प्रकार कवि ने प्रकृति से अपना नाता जोड़कर दिया है और उसके आधार पर, अपनी भावनाओं का यथावसर यथानुकूल वाणी देने की सफल चेष्टा भी की है। कवि ने अपनी भावनाओं को अभिव्यंजना के लिए प्रकृति के उपकरणों को माध्यम बनाकर उन्हें एक नया सौन्दर्य प्रदान किया है। उनका प्रकृति परक काव्य सचमुच प्रकृति प्रेम, सूक्ष्मदर्शिता, निश्छल भाव और गहन विचारों का सम्मिलित रूप है। आगे हम उनके प्रकृति चित्रण और उसके आधार भूत तत्वों पर विचार करेंगे।

पंत की कविता में स्थूल रूप से प्रकृति के उपकरणों का निम्नलिखित रूपों में प्रयोग किया गया है। --

1- आलंबन के रूप में प्रकृति का चित्रण
2- उद्दीपन के रूप में प्रकृति का चित्रण
3- प्रकृति का मानवीकरण एवं उस पर चेतन अनुभूतिमय व्यक्तित्व का आरोप
4- प्रकृति के दृश्यों में किसी रहस्यमयी सत्ता की झांकी
5- मानवीय भावनाओं का चित्रण करने के लिए प्राकृतिक दृश्यों को अनुकूल पीठिका रूप में प्रस्तुत करना।
6- उपदेश देने के लिए प्राकृतिक दृश्यों अथवा क्रिया कलापों का उपयोग।
7- अलंकार विधान और प्रतीक-योजना के लिए प्रकृति से उपकरण खोजना।

आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण।

कवि जहाँ प्रकृति के दृश्यों से प्रभावित हो उन दृश्यों को बड़ी तल्लीनता से चित्रित करता है तो वहाँ आलंबनगत चित्रण मिलता है। प्रकृति जब आलंबनगत हो जाती है तब कवि के मन में किसी विशेष राग या विराग भावना का जन्म होना संभव है। इसके जरिये उस प्राकृतिक दृश्य से एक प्रकार का रागात्मक संबंध स्थापित हो जाता है। कवि एक कुशल कलाकार की भाँति, उस संवेगात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति करता है। इस प्रकार एक आलम्बन रूप पाठकों के समक्ष स्पष्ट हो जाता है।

सुमित्रानन्दन पंत की कविता में बहुत सुन्दर रूप से इस प्रकार का आलम्बन गत चित्रण हुआ है। उनके जो प्रकृति चित्र इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं उनमें उन्होंने प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण और अंकन एक चित्रकार की भांति किया है। इस प्रकार के सूक्ष्म निरीक्षण करने से ही कवि, प्रकृति के क्रिया- कलापों के गत्यात्मक चित्रों को व्यंजित कर सके। प्रकृति चित्रण में रंगों की पहचान नाद-व्यंजना तथा गन्ध एवं स्पर्श संवेदनाओं को जोड़ कर इन चित्रों को उन्होंने सजीव बनाया है। उदाहरण के लिए गुंजन की 'नौका- विहार' कविता को ही लें --

नौका से उठतीं जल हिलोर,
हिल पड़ते नभ के ओर छोर।
विस्फारित नयनों से निश्चल,
कुछ खोज रहे चल तारक दल,
ज्योतित कर जल का अन्तस्तल,
जिनके लघु दीपों को चंचल,
अंचल की ओट किए अविरल,
फिरतीं लहरें लुक छिप पल - पल।[1]

यहाँ कवि ने रात के समय नदी में नौका की मंद मंद गति तथा हिलोरें लेने वाली लहरों के गत्यात्मक चित्र का अंकन बड़ी सूक्ष्मता से किया है। आधुनिक कवियों में पंत और महादेवी वर्मा के प्रकृति चित्रों में रंगों की बारीकी मिलती है।[2] प्रकृति के सूक्ष्म चित्रांकन करने के लिए रंगों की पहचान आवश्यक है। पंत की कविता में रंग मर्मज्ञता के दर्शन हम सर्वत्र कर सकते हैं --

नील पंक में धसा अंश जिसका
उस श्वेत कमल सा शोभन
नभ की नीलिमा में प्रभात का
चांद उनींदा हरता लोचन।
इसमें वह न निशा की आभा,

1- गुंजन-नौकाविहार - पृ० 104.

2- आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका - शम्भूनाथ पाण्डेय - पृ० 193.

दुग्ध पी, न सा यह नव कोमल,
मानवीय लगता नयनों का
स्नेह पक्व सकरुण मुख मंडल ।-1

प्रभात की नभोगी लिमा में उनींद लोचन हरता हुआ चांद को श्वेत कमल से उपमित करके कवि ने अपने रंग बोध का परिचय दिया है ।

प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत नाद - व्यंजना का प्रयोग जितना पंत जी ने किया है उतना और किसी छायावादी कवि ने नहीं किया है । वास्तव में कवि संगीत के प्यारे है । उनकी कविता भी संगीत के माधुर्य से अनुप्राणित है । ~~प्रकृति में~~ संगीतात्मक नादों को मिलना स्वाभाविक है जैसे पत्तों की मर्मर ध्वनि, झरनों का झर - झर नाद, बूंदों की छम - छम आवाज, ये सब संगीतमय वातावरण की सृष्टि करते हैं । पंत जी ने प्रकृति के उन नादों को ज्यों का त्यों व्यंजित किया है । उदाहरण के लिए एक दो उदाहरण लिए जा सकते हैं --

झम झम झम मेघ बरसते हैं सावन के,
छम छम छम गिरती बूंदें तरुओं से छन के ।
x x x

दादुर टर टर करते, झिल्ली बजती झन झन,
म्याऊं म्याऊं रे मोर, पीउ पिउ चातक के गण । -2

'प्रकृति के प्रति सम्मोहन ने ही पंत को उस वस्तु वाणी को लिपिबद्ध करने की प्रेरणा दी जो निरंतर ताल और लय से युक्त है -- यही संगीत पंत काव्य की श्री - शोभा है' । -3

प्रकृति के ऐसे भी चित्रों से कवि का मन आकृष्ट ~~हुआ है~~ हुआ है । जिनमें प्रकृति की सोंधी गंध है । कवि ने अपने चित्र को सजीव बनाने के लिए सभी ज्ञानेन्द्रियों और संवेदनाओं का उपयोग किया है । गंध संवेदन को किस प्रकार

1- चिदंबरा - प्रभात का चांद - पृ0 76.
2- चिदंबरा - 'सावन' - पृ0 175.
3- सु0 पंत जीवन और साहित्य - शांति जोशी - पृ0 10.

कवि ने व्यक्त किया है, निम्नलिखित उदाहरण में देखिए --

उड़ती भीनी तैलाक्त गन्ध
फूली सरसों पीली पीली -1

स्पर्श संवेदना :

फैली खेतों में दूर तलक
मखमल की कोमल हरियाली,
लिपटी जिससे रवि की किरणें
चाँदी की उजली जाली,
तिनकों के हरे हरे तन पर
हिल हरित रुधिर है रहा झलक,
श्यामल भू तल पर झुका हुआ
नभ का चिर निर्मल नील फलक। -2

उददीपन रूप में प्रकृति का चित्रण :

उददीपन रूप में प्रकृति कवि के लिये प्रधान रूप में आती है। इस प्रकार का प्राकृतिक चित्रण मनुष्य के किसी भी भाव को राग हो या विराग, उददीप्त करने वाला रहता है। अतः प्रकृति भाव का आलम्बन न होकर उददीपन बनती है और मानवी भावों में रंग भरती है।

हिन्दी काव्य में उददीपन रूप में प्रकृति का चित्रण सभी काल में होता आया है। भक्तिकालीन तथा रीतिकालीन साहित्य में प्रकृति का प्रायः उददीपन रूप में ही वर्णन हुआ है। सुमित्रानन्दन जी की अनुभूतियाँ प्रकृति में अपनी छाया देखती है और वह प्रकृति से तादात्म्य प्राप्त करना चाहती है। प्रकृति उनके लिए मात्र एक अनुरंजक तत्व नहीं थी। वह उनकी भावनाओं के उन्मेष करनेवाली एक शक्ति थी। प्रकृति को देख कर कवि कैसे भाव विभोर हो

1और 2- ग्राम्या- ग्राम श्री - पृ0 35.

उठता है --

> देखता हूँ, जब पतला इन्द्रधनुषी हलका
> रेशमी घूँघट बादल का खोलती है कुमुद कला,
> तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान मुझे करता तब अन्तर्ध्यान
> न जाने तुमसे मेरे प्राण चाहते क्या आदान । -1

उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण पंत जी ने अनेक स्थानों पर किया है । उदाहरण के लिए 'याद', 'उच्छ्वास', 'आँसू' आदि कविताओं को लें ।

प्रकृति का मानवीकरण :
====================

प्रकृति में चेतन सत्ता का आरोप करना भारतीय साहित्य में बहुत पहले ही होता आया है । 'जिस देश में वृक्षों, नदियों और पर्वतों की पूजा की जाती हो उस देश के काव्य में प्रकृति एक दिव्य चेतन सत्ता के रूप में सहज स्वीकृत हो जाती है । किन्तु आधुनिक युग में प्रकृति का मानवीकरण करना एक शैली मात्र रहा है'[2] । परन्तु आधुनिक काल में पश्चिमी काव्य के परिचय के कारण प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता की ओर कवि आकृष्ट हुआ । कवि प्रकृति को सजीव, सप्राण रूप में देखने लगा । हिन्दी काव्य में विशेषकर छायावादी युग में प्रकृति के प्रति एक प्रकार की एकान्त निष्ठा और आत्मीयता दिखाई पड़ने लगी । इस प्रकार इन कवियों ने प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया और वे उस प्रकृति में सप्राणता का ही नहीं मानवी व्यक्तित्व का आरोप करने लगे । चेतनीकरण का अर्थ है प्रकृति में चेतनत्व की भावना और मानवीकरण का अर्थ है प्रकृति में मानव आत्मा की अनुभूति । दोनों का परस्पर घनिष्ठ संबंध है । इनमें अंश या कोटि का अन्तर हो सकता है तत्व का नहीं । इसी लिए इन्हें पृथक नहीं रखा जा सकता'[3] । निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में मानवीकरण की प्रवृत्ति प्राचीन काव्य की अपेक्षा अधिक वैयक्तिक तथा [illegible] अन्तर्दृष्टि रखने के कारण विशेष मार्मिक हुई है ।

1- पल्लविनी - पृ0 138.
2- आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका - शम्भूनाथ पाण्डेय - पृ0 199.
3- हिन्दी कविता में युगान्तर - डा0 सुधीन्द्र - पृ0 213.

प्रकृति में मानवीकरण के क्षेत्र में पंत जी ने जादू किया है। पंत ने प्रकृति को मानव से स्वतंत्र सचेतन सत्ता के रूप में देखा है। प्रकृति की गोद में पले पंत उससे तादात्म्य पाने के लिए आकुल थे। प्रकृति का प्रांगण उनका क्रीड़ास्थल था। बचपन में वही उनको माँ थी। माँ के रूप में उपदेश देने वाली प्रकृति ने ही उन्हें आत्म विकास और आत्मोल्लास प्रदान किया। 'वीणा' में प्रकृति विश्वजननी है --

तेरी सुखमय सत्ता जग की
कहाँ नहीं जतलाती है ?
जहाँ छिपाती है अपने को
माँ ! तू वहीं दिखाती है। -1

कवि को इस जगजननी प्रकृति के वात्सल्य का वरदान प्राप्त है। 'वीणा' में कवि ने प्रकृति को माँ के रूप में देखा है। प्रकृति अपने विश्व - कुटुम्ब के सचालन में देवी है, माँ है, सहचरि भी है। प्रकृति रूपी माँ का वात्सल्य पाने की इच्छा से कवि अपने बालपन को न खो जाने की इच्छा प्रकट करता है --

ऐसी बड़ी न होऊँ मैं
तेरा स्नेह न खोऊँ मैं,
तेरे अंचल की छाया में
छिपी रहूँ निस्पृह निर्भय,
कहूँ - दिखा दे चन्द्रोदय। -2

पंत जी एक भावुक कवि है। बालापन में प्रकृति की कल्पना उन्होंने माँ के रूप में की तो यौवन में आकर प्रकृति उनके लिए सहचरी या प्रियतमा रही। प्रकृति की प्रत्येक सुन्दर वस्तु में प्रियतमा का आभास उन्हें मिलता है। यहाँ पंत की प्रकृति नारी मय है। उनके प्रकृति प्रेम का यह एक दूसरा मोड़ है। 'भावी पत्नी के प्रति' में उन्होंने अपनी भावी पत्नी के काल्पनिक सौन्दर्य का वर्णन किया है। '' इस कविता की रचना में पंत पर सम्भवतः कीट्स और रवीन्द्रनाथ का प्रभाव पड़ा है। इस में प्रकृति सौन्दर्य और नारी सौन्दर्य दोनों

1- वीणा - ग्रंथ - पृ0 29.
2- वही - पृ0 27.

का यहीं कहीं पूर्ण संयोग है[1]।

पंत की प्रकृति के मानवीकरण की दो सर्वोत्तम कविताएँ उनकी 'चाँदनी' और 'संध्या' है। चाँदनी को कवि ने एकाकिनी नारी के रूप में देखा है जो अपने मृदु करतल पर शशि रूपी मुख धारण करके बैठी है। वह सरित-पुलिन पर सोनेवाली चाँदनी है जिसका उर स्पंदन लघु-लघु लहरों में मिलता है। कभी वह लहरों के करतल में उद्गार रूपी मोती की गूँथ लीरहती है। संध्या को कवि ने एक अप्सरा के रूप में देखा है जो व्योम से मंथर गति से चुपचाप अपने सुनहले केशों को फैलाए हुए उतर रही है --

कौन तुम रूपसि कौन, व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया-छवि में आप, सुनहला फैला केश कलाप
मधुर, मंथर, मृदु, मौन। -2

कवि पंत का मन प्रकृति - सुन्दरी के द्वार पर का याचक है। प्रकृति उनके लिए सखि और सहचरी है और उससे याचना करता है कि उसे भी अपना मीठा गान सिखा दो--

सिखा दो ना, हे मधुप कुमारि। मुझे भी अपना मीठा गान,
कुसुम के चुने कटोरों से करा दो ना, कुछ-कुछ मधुपान।
नवल कलियों के धीरे झूम, प्रसूनों के अधरों को चूम,
मुदित, कवि सी तुम अपना पाठ सीखती हो सखि जग में घूम,
सुना दो ना, तब है सुकुमारि। मुझे भी केसर के गान। -[3]

'आत्मीय और परिचित मानवीय रूप में प्रकृति छायावादी कवि की सुख दुख की सहचरी और संगिनी हो गई है। वह उसके सम्पर्क में रहकर सुख और शान्ति का अनुभव करता है। उसको समर्पित होकर उससे प्रेम और सहानुभूति की याचना करता है'[4]। कहने की आवश्यकता नहीं कि पंत काव्य में प्रकृति से ऐसी

1- हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव - रवीन्द्र सहाय वर्मा - पृ0 165.
2- पल्लविनी - सन्ध्या - पृ0 209.
3- पल्लव - पृ0 28.
4- छायावाद - डा॰ रवीन्द्र भ्रमर - पृ0 129.

तल्लीनता और आत्मीयता सर्वत्र सुलभ है।

कवि ने प्रकृति में चेतनत्व का आरोप करके छायावाद की रहस्यवृत्ति का परिचय दिया है। पन्त जी का प्रकृति-दर्शन यहाँ आध्यात्मिक महत्त्व का। प्रकृति में दैवी सत्ता का अंश पाकर कवि का चिन्तन सर्व चेतनवाद तक पहुँच पाता है। कवि मानता है कि जड़ चेतन मय निखिल जगत में एक ही प्राणधारा प्रवाहित रहती है -

एक ही तो असीम उल्लास विश्व में पाता विविधाभास
तरल जलनिधि में हरित विलास शान्त अम्बर में नील विकास ।1

प्रकृति के प्रति कवि के दृष्टिकोण में समयानुकूल कई परिवर्तन हुये थे, फिर भी उन सब का धरातल एक ही है। पहले कवि प्रकृति के साथ-साथ उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर चलता था तो इसके दूसरे मोड़ में कवि प्रकृति और समाज के साथ है। आगे तीसरे चरण में वह प्रकृति, समाज और संस्कृति तीनों को साथ लेकर चलना चाहता है। 'पल्लव' में उन्होंने विश्व में विविधाभास को देखा है तो स्वर्णकिरण में कवि उसमें अन्तर्निहित चेतना का दर्शन करता है।

स्वर्ण रजत की धूलि, भरा रे निखिल दिगन्तर,
मनश्चेतना चूर्ण उड़ रहा हो ज्यों भास्वर
दिव्य उषा के मनोहास्य से दिशा आलोकित,
सूक्ष्म सृष्टि नीहार सृजन सुख से आंदोलित ।- 2

प्रकृति के मानवीकरण से भी ऊपर उठकर कवि ने यहाँ प्रकृति का चेतनीकरण किया है। प्रकृति की चेतन शक्ति अपने प्राणों के रंगमंच प्रकाश से उसे रंग कर समस्त दृश्य जगत पर बिखेरती है। पंत की परवर्ती रचनाएँ ऐसे प्राकृतिक दर्शन से आवेष्टित हैं। अतः वे केवल प्रकृति का कोरा चित्रकार नहीं, पर समस्त प्राकृतिक चेतना के मन्त्र-दृष्टा कवि है। प्रस्तुत प्राकृतिक के चेतनीकरण के बारे में भारतभूषण अग्रवाल का मन्तव्य ठीक जंचता है

1- पल्लव (परिवर्तन) पृ- 106

2- स्वर्णकिरण पृ0 53

है- वह न सूक्ष्मीकरण है , न वायवीकरण है , न भारारोपण है - वह तो एक ऐसे प्रबुद्ध द्रष्टा कवि का मानस लोक है जहां सृष्टि की मूल चेतना अपने ज्योतिकणों से समस्त अस्तित्वों पर आलोक की पर्त चढ़ा देती है ।[1] कवि के चिन्तन एंव मनन के फलस्वरूप प्रकृति चित्रण में जो रहस्यमय चेतना का आभास मिलता है वह पंत का अपना विशिष्ट गुण है । अंग्रेजी रोमांटिक कवियों में यह भावना सबसे प्रचलित है कि प्रकृति की रहस्यमयी सत्ता, विश्व का संचालन करती है । वेडसवर्थ में यह भावना सबसे सबल रूप में प्राप्त होती है । सर्व-चेतनावाद (Pantheism) का अनुभव वेडसवर्थ ने इस प्रकार किया है -- प्रकृति एक क्रियाशील सिद्धान्त है जो समस्त सृष्टि का संचालन करता है[2]।

इस प्रकार वास्तविक रूप में अंग्रेजी रोमांटिक कवियों और हिन्दी छायावादी कवियों के मानवीकरण में बहुत कुछ समानता मिलती है । पंत जी की शैली इस क्षेत्र में पाश्चात्य कवियों से प्रभावित थी, फिर भी उनकी रहस्यवादी प्रवृत्ति पाश्चात्य प्रभाव का परिणाम नहीं कह सकते ।परन्तु उनकी कविता से यह व्यक्त होता है कि वे प्रकृति को मानवीय जीवन से अधिक निकट देखने के अभ्यासी है । साथ ही कवि ने अपनी कल्पना को निर्बाध स्वच्छन्दता दी जिससे कि वे प्रकृति के स्थूल के सौन्दर्य से परे सूक्ष्म सौन्दर्य का अंकन कर सके है ।

मानवीय भावनाओं की पीठिका के रूप में प्रकृति - चित्रण :

छायावादी काव्य में पीठिका के रूप में प्रकृति चित्रण बहुत मिलते ही मिलते है । पंत की कविता भी इसका अपवाद नहीं है । शायद इसका मूल कारण यह है कि छायावादी काव्य गीति काव्य के लिए प्रसिद्ध है । गीति काव्यों में इसप्रकार की पीठिका सजाने का अवसर कवि को नहीं मिलता । प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत इस का रूप अवश्य मिलता है । उदाहरण के लिए पंत जी की 'आंसू' में नायिका अपनी मर्मकथा सुनाते समय प्रकृति के निष्ठुर दृश्य का चित्रण करती

1- रूपाम्बरा - सं० अज्ञेय - प्रकृति - चित्रण : पंत: भारतभूषण अग्रवाल - पृ० 2- हिन्दी काव्य पर अंग्रेजी प्रभाव - रवीन्द्रसहाय वर्मा - पृ० 193

है । जिससे उनके विधुर हृदय की पहचान हमें मिलती है --

पकड़ उड़ते दीप वर्षा काल के
रख हथेली पर, अंधेरी रात को,
मैं निमति की रेखा भी छू चुकी
सजनि । उनकी खोजती लघु ज्योति मैं ।

x x x

हरित मिस छोटे पगों से जगत की
वेदिका को पार करता देख कर,
एक प्रातः दूब से भी मैं बहिन ।
पग सहस्त्र मिला चुकी हूँ, ओसे से । -1

सुख और दुख की स्थिति में मनुष्य प्राकृतिक दृश्यों के पीछे चलता है जिसके का उनको एक प्रकार की आत्म शक्ति मिलती है । इसी लिए कवि सुख के क्षणों में प्रकृति के प्रसन्न वातावरण का उल्लेख करता है और दुःख के अवसर पर वि नीरस प्रकृति का चित्रण करता है । दोनों ही परिस्थितियों में वह अपने आ जीवन का सामंजस्य उस बाह्य संसार से करता है । पंत की प्रस्तुत काव्य रचना अनेक ऐसे स्थल मिलते है जहाँ उन्होंने प्रकृति को पृष्ठ भूमि में अपनी अनुभूति तीव्रता, भावनाओं के उल्लास और विषाद को भी मूर्तिमान रूप दिया है ''कवि ने भावनाओं, कोमल प्रेममयी आकांक्षाओं को प्राकृतिक विधानों का रंग देकर, स्थूल को सूक्ष्म से अभिव्यंजित कर, भावों के बड़े स्वाभाविक चि प्रस्तुत किए है । प्रेमियों के हृदयों का, मनः स्थिति का सूक्ष्माति सूक्ष्म वर्ण करने के लिए आवश्यक संचारी भावों की ओर संकेत किया है, किन्तु यह शा परम्परामूलक नहीं है, भावुकताजन्य है, अनुभूति की तीव्रता को अनावृत्त करने के लिए अनिवार्य है' । -2

1- वीणा - मंदिर - पृ0 114
2- सु0 पंत जीवन और साहित्य - शांति जोशी - पृ0 132

उपदेश देने के लिए प्रकृति चित्रण का उपयोग :

उपदेश देने के लिए प्रकृति चित्रण, छायावादी काव्य की विशेष प्रवृत्ति नहीं है। प्राचीन कवियों ने प्रकृति को अन्योक्ति पद्धति में चित्रित करके बड़े सुन्दर उपदेश दिए हैं। आधुनिक कवियों ने नीति के उपदेश देने के लिए प्रकृति चित्रण का उपयोग नहीं किया है परन्तु उनके प्रकृति चित्रण के द्वारा पाठकों को नीति और उपदेश की बातें परोक्ष रूप से उपलब्ध होती है। उदाहरण के लिए पंत जी की 'नौका-विहार' नामक कविता को ही लें। जहाँ कवि जीवन के शाश्वत सत्य के बारे में कहता है कि इस जीवन का उद्गम शाश्वत है। इस अमरता के ज्ञान रखने पर ही जीवन और मानव के अस्तित्व के प्रति हम बोधवान बन जाते हैं।

अलंकार विधान तथा प्रतीक विधान के रूप में प्रकृति का चित्रण :

हिन्दी काव्य में इस प्रकार का प्रकृति चित्रण प्राचीन काल से लेकर अब तक की कविता में सुलभ ही है। आधुनिक हिन्दी काव्य में विशेषकर छायावादी काव्य और उसके बाद की कविता में कवि ने प्राचीन उपमानों का बहिष्कार करके प्रकृति से नवीन उपमानों की खोज की है। इसका यह अर्थ ध्वनित नहीं होता कि उन्होंने प्राचीन अलंकारों की सर्वथा उपेक्षा की है। ''उन्होंने अपनी भावनाओं और अनुभूतियों की व्यंजना के लिए नवीन उपमान खोजे हैं, साथ ही प्रचलित उपमानों को नई भंगिमा प्रदान की है। छायावादी कविता में उपमान का प्रयोग करते समय बाह्य रूप और आकृति साम्य पर उतना बल नहीं दिया गया जितना सूक्ष्म आन्तरिक साम्य या भाव साम्य पर''।[1] समस्त छायावादी कवियों के अलंकार विधान के पक्ष में डा० पाण्डेय की यह उक्ति पंत जी की कविता पर भी लागू हो सकती है --

नवल मधुऋतु निकुंज में प्रात
प्रथम कलिका सी अस्फुट गात,

1- आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका - डा० शम्भूनाथ पाण्डेय - पृ० 240

नील नभ - अंतपुर में, तन्वि!
दूज की क्षीण सदृश नवजात,
मधुरता, मृदुता सी तुम, प्राण!
न जिसका स्वाद - स्पर्श कुछ ज्ञात,
कल्पना हो, जाने, परिमाण?
प्रिये, प्राणों की प्राण! -।

पंत जी ने प्राकृतिक बिम्बों और प्रतीकों को कुशल योजना की है। पंत जी के काव्य बिम्बों पर अन्यत्र विचार किया जा चुका है। यहाँ केवल प्रतीकों के रूप में पंत जी के प्रकृति - चित्रण पर प्रकाश डालते हैं। शैली और विषय वस्तु दोनों रूप में प्रतीकों का प्रयोग कवि ने किया है। प्रतीकों का प्रयोग जहाँ केवल शैली के रूप में होता है वहाँ उसका व्यंग्यार्थ कुछ होता है, पर विषय वस्तु के रूप में प्रयुक्त होने पर उसका दुहरा अर्थ होता है और दोनों अर्थ एक दूसरे से संबद्ध होते हैं[2]। पंत जी के विषय में कहा जाय तो प्रकृति चित्रण के संदर्भ में उन्होंने प्रतीकों का प्रयोग अधिकांशतः शैली के रूप में किया है। 'प्रथम रश्मि' कविता में पंत ने प्रकृति का प्रतीक रूप में बहुत ही सश्लिष्ट चित्र खींचा है --

सोई थी तू स्वप्न - नीड में
पंखों के सुख में छिपकर,
झूम रहे थे, घूम द्वार पर,
प्रहरी - से जुगनू नाना,
शशि किरणों से उतर उतर कर
भू पर कामरूप नभचर
चूम नवल कलियों का मृदु मुख
खोल रहे थे मुसकाना,
स्नेह - हीन तारों के दीपक,

1- गुंजन - पृ० 42
2- छायावाद युग - शम्भूनाथ सिंह - पृ० 104

श्वास शून्य भीतर, वे पास,
विचर रहे थे स्पप्न अवनि में
तम ने था मंडप तानाा ।   -1

संकेत रूप में भी प्रकृति चित्रण पर्याप्त हुआ है । पंत जी की रहस्यवादी विचारधारा का पुष्ट इन संकेत रूपी प्रकृति चित्रण में मिलता है । अन्य छायावादी कवियों के समान पंत जी आधुनिक रहस्यवाद की ओर आकृष्ट है । इनके विचारानुसार यह समस्त प्रकृति किसी अज्ञात परोक्ष सत्ता या निर्माता की छाया या अनुकृति है। इसलिए जगत के हर अणु में उस शक्ति निहित है । इसी भावना से प्रेरित होकर कवि ने प्रकृति के व्यक्त सौन्दर्य के अंकन कर के उस परम सत्ता की ओर संकेत किया है । पल्लव से लेकर आज तक की कतिपय रचनाओं में कवि की यह प्रवृत्ति विद्यमान है । 'पल्लव' में 'मौन निमंत्रण', 'मुस्कान', 'विश्व-वेणु', आदि कविताओं में प्रकृति की परम शक्ति की ओर उन्होंने संकेत किया है । पंत प्रकृति का आराधक है और उनका आराध्य प्रकृति के अणु - अणु मे व्याप्त है । कभी वह जिज्ञासा भरी आवाज से पूछता है कि प्रकृति के बीच में रह कर कौन उन्हें निमंत्रण देकर बुलाता है --

कभी उड़ते पत्तों के साथ
मुझे मिलते मेरे सुकुमार
बढ़ाकर लहरों से निज हाथ
बुलाते फिर मुझको उस पार ।   -2

इस प्रकार संकेत द्वारा प्रकृति चित्रण करके कवि ने आध्यात्मिक रहस्यवाद का परिचय दिया है साथ ही प्राकृतिक सौन्दर्य का सुन्दर चयन किया है । ''आध्यात्मिक अनुभूतियों का चित्रण करने के लिए पंत जी ने प्रकृति के कुछ ऐसे चित्र चुने है जिनमें सहज सौन्दर्य है और जो क्षणभर के लिए मानव अनुभूति को अपने में तल्लीन करके ऐसे भावस्तर पर पहुँचाने में समर्थ है । जहाँ मनुष्य अपने क्षणिक अस्तित्व को भूला कर किसी निस्सीम सत्ता का भावन करने लगता है'' ।   -3

1- आधुनिक कवि - भाग दो - पृ0 3
2- पल्लव - मुस्कान - पृ0 48
3- आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका - शम्भूनाथ पाण्डेय - पृ0 155

यहाँ तक पंत की कविता में स्थूल रूप में वर्णित प्रकृति के चित्रण का वर्गीकरण हुआ। इसके अतिरिक्त शैली की दृष्टि से पंत जी के प्रकृति चित्रण को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

वर्णनात्मक शैली :

बचपन से ही प्रकृति के कण-कण के सम्पर्क में रहने के कारण कवि पंत को अवश्य ही जगत के परिवर्तन शील दृश्य का परिचय प्राप्त है। कवि का मन उन दृश्यों से इतना अधिक रम गया कि कवि उसका ब्यौरेवार चित्रण करने लगता है। पंत की प्रारंभिक कृतियों में इस प्रकार की वर्णनात्मक शैली में प्रकृति चित्रण हुआ है। ग्राम्या की 'ग्राम श्री' इसका अच्छा प्रमाण है। इसमें अलंकारों और लाक्षणिक प्रयोगों का अनावश्यक प्रयोग नहीं किया गया है।

फिरती है रंग रंग की तितली रंग रंग के फूलों पर सुन्दर,
फूले फिरते हों फूल स्वयं उड़ उड़ वृंतों से वृंतों पर।
अब रजत स्वर्ण मंजरियों से लद गई आम्र तरु की डाली,
झर रहे ढाक, पीपल के दल, हो उठी कोकिला मतवाली। -1

संश्लिष्ट शैली :

इस शैली के द्वारा प्रकृति के सुन्दर वर्णन करने के लिए कवि समर्थ हुए है। प्रकृति के क्रिया कलापों और उसमें निहित अदम्य मनोहारिता का चित्रण कवि ने किया है --

'धूपछाँह के रंग की रेती
अनिल ऊर्मियों से सर्पांकित,
नील लहरियों में लोड़ित
पीला जल रजत जलद से बिम्बित'। -2

चमत्कार प्रधान शैली :

समस्त छायावादी कवियों के बीच प्रस्तुत [redacted] शैली को इतना महत्व

1- ग्राम्या - ग्राम श्री - पृ0 35-36
2- ग्राम्या - संध्या के बाद - पृ0 63

नहीं जितना की अन्य शैलियों का । कारण यह है कि छायावाद युग में कवि चमत्कार की ओर अधिक आकृष्ट नहीं था । रीतिकालीन कवियों ने चमत्कार प्रदर्शन के लिए भी प्रकृति चित्रण किया है । पंत जी की कविता में इस प्रकार की शैली बहुत कम मिलती है --

एक कठोर कटाक्ष तुम्हारा अखिल प्रलयंकर
समर छोड़ देता निसर्ग संसृति में निर्भर,
भूमि चूम जाते अभ्रध्वज सौध, शृंग वर,
नष्ट भ्रष्ट साम्राज्य - भूति के मेघाडम्बर ।
अये, एक रोमांच तुम्हारा दिग्भू कम्पन,
गिर गिर पड़ते भीत पक्षि पोतों - से उडुगन,
आलोड़ित अम्बुधि फेनोन्नत कर शत शत फन,
मुग्ध भुजंगम - सा, इंगित पर करता नर्तन ।
दिक् पिंजर में बद्ध, गजाधिप - सा विनतानन,
वाताहत हो गगन
आर्त करता गुरु गर्जन ! -1

निष्कर्ष ।

तन और मन से प्रकृति को ग्रहण करके पंत ने अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की है । प्रकृति और उसका सौन्दर्य कवि की आत्मा की वस्तु बन गई । उनकी प्रारंभकालीन रचनाएं प्रकृति से अनुप्राणित है और अधिकांश रचनाओं में इसके सौन्दर्य ने ही उन्हें अधिक लुभाया है । कवि की भावस्थिति में आगे ऐसी भी एक दिशा आयी जहाँ उनका मन विचार प्रधान होने लगा । इस विकास क्रम में प्रकृति के प्रति उनका दृष्टिकोण सौन्दर्यात्मक न होकर विचारक या दार्शनिक का है । इस अवसर पर डा० इन्द्रनाथ मदान की उक्ति उचित लगती है - 'पहले जहाँ मानव का चित्रण प्रकृति से अभिभूत था वहाँ अब प्रकृति का मानव की कल्पना से अभिभूत है । आरम्भ में प्रकृति पंत को जीवन - साधना रही है और अब वह उनकी जीवन साधना का माध्यम बन रही है । इनके समस्त काव्य में प्रकृति का इतना महत्व एवं स्थान है कि उसे प्रकृति काव्य की संज्ञा दी जाती है' । -2

1- आधुनिक कवि - पृ० 30

2- आधुनिक हिन्दी कविता का मूल्यांकन - इन्द्रनाथ मदान - पृ० 199

उपसंहार

पिछले अध्यायों में पंत काव्य को विभिन्न कोणों से देखने परखने का प्रयास किया गया है। यहां निष्कर्ष रूप में पंत काव्य की उपलब्धियों का मूल्यांकन प्रस्तुत है।

युग की प्रत्येक धड़कन को आत्मसात करने में सक्षम पंत युग चेतना से सम्पृक्त एक सजग कवि है। युग चेतना के गंगा प्रवाह में नौका विहार करने मात्र में पंत की क्षमता सीमित नहीं है। वे अपनी मौलिक सूझ बूझ के अनुसार युग चेतना को भी नयी अर्थवत्ता एवं नवीन ओज प्रदान करते हैं। मानव मात्र के प्रति निश्छल आत्मीयता, पंत के व्यक्तित्व की प्रकट विशेषता है। जगत एवं जीवन की ज्वलन्त समस्याओं से विरत हो कल्पना की ऊंची उड़ानें भरने और खोखले नारे उछालने में पंत ने अपनी प्रखर प्रतिभा का दुरुपयोग नहीं किया। मानव के भविष्य निर्माण के लिए युगीन चिन्तनधाराओं के मथुकणों को वे यत्न से संजोते रहे। मार्क्सवाद, गांधीवाद, अरविन्द दर्शन आदि युग की विभिन्न चिन्तन सरणियों का उन्होंने अनुशीलन परीक्षण किया। उनकी प्रबुद्ध मेधाकभी भी अतिशय विचारान्ध मोह से आक्रान्त नहीं हुई। पंत के काव्य प्रणयन के प्रारंभकाल में, भारत के सांस्कृतिक तथा राजनीतिक क्षेत्र के सूत्रधार महात्मा गांधी थे। पंत का किशोर मन सहज ही गांधीजी के सिद्धान्तों के प्रति आकृष्ट हुआ। भारत की राजनैतिक मुक्ति तथा सांस्कृतिक नवोत्थान गांधी जी का ध्येय था। पि, र भी उन का व्यापक दृष्टिकोण संकुचित राष्ट्रवाद तक सीमित नहीं था। वे 'विश्वं

भावीत एक नीज्म' के समर्थक थे। गांधी जी के विराट व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा रखने के बावजूद गांधीवाद से उनकी आस्था टूट गयी। पीड़ित प्रताड़ित जन सामान्य को मुक्ति की भावना ने पंत को मार्क्सवाद की ओर आकृष्ट किया। भू चेतना से ओतप्रोत 'ग्राम्या', 'युगवाणी', 'युगान्त' आदि की कविताओं में मार्क्सवाद का स्पष्ट प्रभाव है। पूँजीपतियों का शोषण समाप्त करके ग्रामवासिनी भारत माता का उद्धार करना मार्क्सवादियों के समान उनका भी लक्ष्य था। लेकिन मार्क्सवाद का भी उन्होंने आंशिक रूप में स्वीकार किया। मार्क्सवाद की हिंसात्मक क्रांति के विरुद्ध वे अहिंसात्मक क्रांति के समर्थक थे। यह अहिंसात्मक क्रांति सबसे पहले व्यक्ति के भीतर घटित होनी चाहिए। व्यक्ति के सुधार से ही मानवता का कल्याण संभव है। मार्क्सवाद में आध्यात्मिकता का जो निषेध है वह भी पंत जी के अनुकूल नहीं था। उनका कथन है --

> भूतवाद उस धरा स्वर्ग के लिए मात्र सोपान
> जहाँ आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान। - 1

पंत जी जन जन की समता पर विश्वास रखते है। मात्र इस अर्थ मे वे साम्यवादी है।

गांधीवाद और मार्क्सवाद की एकांगिता से ऊबकर पंत ने अरविन्द दर्शन का गहन चिन्तन मनन किया। अरविन्द दर्शन मे उन्हें गांधीवाद एवं मार्क्सवाद के स्वस्थ पक्षों का सामंजस्य दृष्टिगत हुआ। अरविन्द की दार्शनिक विचारधारा विज्ञानाधिष्ठित एवं अपेक्षाकृत अधिक व्यावहारिक थी। अरविन्द की ऊर्ध्व चेतना सम्बन्धी विचारधारा के आधार पर पंत ने नव मानव के निर्माण की कल्पना की है। नव मानव का निर्माण व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलनों से ही संभव है। राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र मे एक व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन की अपेक्षा है। उत्तरा की प्रस्तावना मे पंत ने स्पष्ट किया है -- ''इस प्रकार मे युग संघर्ष का एक सांस्कृतिक पक्ष

1- युगवाणी - भूमिका - पृ0 10

भी मानता हूँ, जो जन युग की धरती से ऊपर उठकर उसकी असमानता की चोटी को भी अपने फड़कते हुए पंखों से स्पर्श करता है, क्योंकि जो युग विप्लव मानव जीवन के आर्थिक - राजनीतिक धरातलों में महान क्रान्तिकारी परिवर्तन ला रहा है, वह उसकी मानसिक आध्यात्मिक अवस्थाओं में भी आन्तरिक विकास तथा रूपान्तर उपस्थित करने जा रहा है''।[1] अरविन्द दर्शन के अनुरूप वे लोक-संगठन तथा मन - संगठन को एक दूसरे का पूरक मानते है।

पंत ने युग चेतना के अनुरूप अपने व्यक्तित्व को ढाल दिया, लेकिन अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के कारण वे वादों से परे रह गये।

युगीन काव्य प्रवृत्तियों को आत्मसात करने एवं युग की माँग के अनुरूप अपने काव्य गत दृष्टिकोण को बदलने मे पंत सदा से उत्सुक रहे है। सौन्दर्यबोध से ओतप्रोत उनकी प्रारम्भकालीन रचनायें छायावाद के अन्तर्गत आती है। मानवोय संवेदना एवं अनुभवों से शून्य द्विवेदी कालीन 'तापसी कविता' के विरुद्ध पंत ने एक आन्दोलन ही छेड़ दिया। 'वीणा', 'ग्रन्थि', 'पल्लव' और गुंजन की कवितायें इसके प्रमाण है। छायावाद की भावगत' और शिल्प-गत सारी विशेषतायें पंत की प्रारम्भकालीन कविता में प्रकट है। द्वितीय चरण की कवितायें प्रगतिवादी काव्यान्दोलन से प्रभावित है। अन्य प्रगतिवादियों की भाँति वे अपनी कविताओं में साम्यवाद की सैद्धान्तिक व्याख्या नहीं देते, लाल झंडा एवं लाल सेना का गुणगान भी नहीं करते, वे मात्र दीन दुखी जनता का पक्ष लेते है और उनकी दीन दशा का चित्रण करते है। इसीलिए उनकी कविता नारेबाजी मे नहीं बदलती। पंत ने प्रयोगवाद का भी साथ दिया। प्रयोगवादियों से प्रभावित हो उन्होंने 'कला और बूढ़ा चाँद' मे अभिव्यंजना की नयी सम्भावनाओं का परीक्षण किया। पंत की चेतना निरन्तर प्रगतिशील रही। छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, इनमें से किसी मे भी अटककर उनकी तूलिका नहीं रुकी। वह सृजन के नये क्षितिजों की खोज मे निरन्तर तल्लीन रही।

1- उत्तरा प्रस्तावना - पृ० 8 - 9

पंत सम्पूर्णता के कवि है। उनकी काव्य प्रक्रिया सतत गतिशील है। यही गतिशीलता उनकी आवन्तता का प्रमाण है। पंत ने अपनी कविता को परिपूर्ण क्षणों की वाणी कहा है। 'ये परिपूर्ण क्षण अपनी सम्पूर्ण भाव सत्ता के साथ, कवि के काव्य चिन्तन के साथ निरन्तर विकसित होते गये है और अपनी परिपूर्णता में उन्होंने चेतना के सारे स्तरों को क्रमशः आत्मसात और अंगीकार कर लिया है। चेतना के इन स्तरों का एक सूक्ष्म क्रम पंत जी के काव्य विकास में लक्ष्य किया जा सकता है-कुछ इस रूप में -- सौन्दर्य चेतना, भू चेतना, सूक्ष्म चेतना। निश्चय ही विकास का यह क्रम बहुत अलग-अलग या साफ, साफ, बंटा हुआ नहीं है। अक्सर यह क्रम एक दूसरे को अतिक्रमित भी करता है, और इस तरह पंत जी के सम्पूर्ण काव्य की अन्तश्चेतना और असंगति की अविच्छिन्नता को उजागर करता है।' 1 अपनी सम्पूर्णता के क्षणों को वाणी देकर पंत ने मानव मात्र के प्रति अपनी अतिशय आत्मीयता का परिचय दिया है। भौतिकता एवं आध्यात्मिकता के समन्वय से उन्होंने मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।

पंत जी शब्द शिल्पी है। खड़ीबोली के शब्दों को तराश तराश कर वे उनमें ब्रजभाषा की कोमलता तथा माधुर्य लाये। इसके साथ ही खड़ी बोली बनाम ब्रजभाषा' के नाम पर आपस में लड़नेवालों का मुँह भी बंद हुआ। द्विवेदी युग में काव्य क्षेत्र में कविता के नाम पर सपाट बयानी चल रही थी। परम्परागत छन्दों में अपने दिल की धड़कनों को फिट करने की असफल कोशिश में कवि यश प्रार्थियों की जिन्दगी बरबाद हो रही थी। इसी समय काव्य क्षेत्र में पंत का क्रांतिकारी आगमन हुआ। झट से 'खुल गये छन्द के बन्ध/प्रास के रजत पाश'। दाना हीना रूक्ष, द्विवेदीकालीन काव्य भाषा पंत की तूलिका के स्पर्श से अप्सरा सी थिरकने लगी। छायावादी युग में भाव क्षेत्र में जो क्रांति घटित हुई, उसने नयी अभिव्यंजना शिल्प की मांग की। पंत ने शब्दों को अर्थों के रूप गुंफित कर अपने युग को वाणी दी। पंत शब्द के रूप एवं आकार के प्रति विशेष

1- तारापथ - भूमिका - दूधनाथ सिंह - पृ० 4

रूप से सजग थे। वे शब्दों को तोल तोल कर अपनी कविता में रखते थे। पल्लव की भूमिका में उन्होंने शब्द के रूप के प्रति अपनी सजगता को स्पष्ट रूप में प्रकट किया है — 'भिन्न भिन्न पर्यायवाची शब्द प्रायः संगीत भेद के कारण एवं पदार्थ के भिन्न भिन्न स्वरूपों को प्रकट करते हैं। जैसे भ्रू से कोका की बक्रता भृकुटि से कटाक्ष की चंचलता भौंहों से स्वाभाविक प्रसन्नता, ऋजुता का हृदय में अनुभव होता है'[1]। शब्द प्रयोग में पंत ने अपनी अपूर्व दक्षता का परिचय दिया है। उनके छायावाद कालीन शब्दों की सजावट काव्य की प्रकृति के अनुकूल मांसल एवं सौन्दर्य के नाना उपादानों से अतिशय अलंकृत है। भू चेतना काल के काव्य गत आभिजात्य से मुक्त हो उन्होंने ठेठ ग्रामीण शब्दावलियों का खुलकर प्रयोग किया है। अध्यात्म बोध से प्रभावित स्वर्णकाव्य दर्शनिक शब्दावलियों से सम्पन्न है। बिम्बों और प्रतीकों के विधान से भाव सम्प्रेषण को कला में, पंत जी छायावादी कवियों में अप्रतिम है। भाव की मांग के अनुरूप नये शब्दों को गढ़कर एवं देशज, विदेशी समस्त स्त्रोतों से शब्दों को ग्रहण कर उन्होंने हिन्दी शब्द सम्पदा को समृद्ध बनाया, शब्दों की अभिव्यंजनागत सीमाओं के विस्तार करके उन्होंने परवर्ती कवियों के लिए मार्ग भी प्रशस्त किया।

पंत जी की काव्य प्रतिभा का सहज विकास उनके प्रकृति काव्यों में ही हुआ। असमय में ही मातृ स्नेह से वंचित बालक पंत के मन में उदात्त भावनायें भर देने का श्रेय ममतामयी प्रकृति को ही है। रंग बिरंगे फूलों की मादक महक में चंचल लहरियों के उन्मत्त नर्तन में और अनंत तारावलियों के मौन निमन्त्रण में बालक पंत का मन उत्फुल्ल होता था। कौसानी और अल्मोड़ा के सुरम्य वातावरण ने पंत के भीतर सुप्त कवि प्रतिभा को जगा दिया। पंत जी स्वीकार करते हैं — कविता करने की प्रेरणा मुझे सब से पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी, मुझे याद है मैं छोटी एकान्त में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था, और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य

1- पल्लव - भूमिका - पृ० 16 - 17.

का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मैं आँखें मूँदकर लेटता था तो वह दृश्यपट चुपचाप मेरी आँखों के सामने घूमा करता था। अब मैं सोचता हूँ कि क्षितिज में सुदूर तक फैली एक के ऊपर एक उठी, ये हरित नील, धूमिल कूर्मांचल की छायांकित पर्वतश्रेणियाँ जो अपने शिखरों पर रजतमुकुट हिमाचल को धारण किये है और अपनी ऊँचाई से आकाश की अवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाये है, किसी भी मनुष्य को अपने महान नीरव सम्मोहन के आश्चर्य में डुबाकर कुछ काल के लिए भुला सकती है और यह शायद पर्वत प्रांत के वातावरण ही का प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर आश्चर्य की भावना पर्वत ही की तरह निश्चल रूप से अवस्थित है।' -1

पंत जी के काव्य विकास के प्रत्येक चरण में प्रकृति उनके साथ थी। बचपन में उनको खेल खिलाने वाली माँ यौवन में उनके साथ प्रेमालाप करनेवाली सहचरी और प्रौढावस्था में जीवन के गूढ़ से गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित कर देनेवाली अमोघ शक्ति के रूप में पंत काव्य में प्रकृति के दर्शन मिलते हैं। पंत के मनोविकास के साथ-साथ प्रकृति सम्बन्धी उनका दृष्टिकोण भी बदलता रहा। अपने काव्य विकास के प्रारम्भ काल में प्रकृति का अपार रूप वैभव छोड़कर बाला के बालजाल में लोचन उलझाने की पुरसत तक पंत जी को नहीं मिलती। वही पंत जी बाद में प्रकृति के ही उपकरणों से 'भावी पत्नी के प्रति' में अपनी भावी पत्नी का साज श्रृंगार करते हैं। स्वर्णकाव्यों में प्रकृति पंत जी की दार्शनिक गुत्थियाँ सुलझाने के माध्यम के रूप में प्रकट होती है। दार्शनिक प्रबुद्धता से सम्पन्न पंत जी का प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण, वस्तुपरक या भावपरक न रहकर विचार परक बनता है। प्रकृति के स्थूल व्यापारों से हटकर उसके सूक्ष्म क्रिया कलापों में पंत जी की दृष्टि केन्द्रित होती है।

पंत जी की आँखें उनकी अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा विशेष रूप से सजग

1- आधुनिक कवि - पर्यालोचन - पृ० 1-2

है। प्रकृति की नाना दृश्यावलियों का फोटोग्राफिक चित्र कविता में उतार देने की अपूर्व क्षमता पंत जी में है। प्रकृति की प्रत्येक अदा का रूपांकन कर वे रहते हैं। अपने सहस्र दृग सुमन फाड़ दर्पण से फैले विशाल ताल में, निज महाकार देखनेवाला मेखलाकार पर्वत, उच्चाकांक्षाओं से ऊपर उठने वाले तरु-वृन्द, सर सर मद से नस नस उत्तेजित कर बहनेवाली सरितायें सब पंत जी की लेखनी से निसृत हो हमारी आँखों के सामने मूर्त हो उठते हैं। पंत जी ने प्रकृति के कोमल कठोर दोनों पक्षों को अपनी लेखनी के माध्यम से सजीव किया है।

सिर्फ पंत जी ही नहीं अन्य छायावादी कवि भी प्रकृति के चुम्बकीय आकर्षण से मुक्त नहीं है। लेकिन प्रकृति के प्रति 'मां सहचरी प्राण' की भावना मात्र पंत जी में है। प्रसाद में प्रकृति मानवीय भावनाओं को व्यंजित करने का माध्यम मात्र है। अम्बर पनघट में तारा घट डुबानेवाली उषा नागरी का चित्र प्रसाद ने पूर्ण मनोयोग से खींचा है। लेकिन प्रसाद में यह विभावरी के बीत जाने का संकेत मात्र है। उस दृश्य का स्वयंसिद्ध कोई महत्व नहीं है। निराला ने भी मानवीय भावनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को पृष्ठभूमि में खड़ा किया है। 'वन बेला', 'राम की शक्ति पूजा' आदि कवितायें इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। 'है अमा-निशा, उगलता गगन घन अन्धकार खो रहा दिशा का ज्ञान स्तब्ध है पवन चार।' प्रकृति का यह दृश्य राम की छिन्न भिन्न मनोवृत्ति का ही प्रतिबिम्ब है। पंत जी में आंखों को जो आतशय सजगता है वह एक हद तक महादेवी में भी है। वे चित्रकार भी हैं। 'यामा' में उनकी कविताओं के साथ-साथ चित्र भी हैं। तो भी प्रकृति के रूपांकन में जो उत्सुकता पंत में है, वह महादेवी में भी नहीं दीख पड़ती। प्रकृति के प्रति आत्म समर्पण एवं प्रकृति से आत्मोपलब्धि की भावना छाया-वादी कवियों में अकेले पंत जी की पूंजी है। प्रसाद जी भारतीय संस्कृति के आलोड़न विलोड़न में व्यस्त रहे। निराला जी को 'एक निज भाई का दुःख

मिटाने की चिन्ता थी, महादेवी तो अज्ञात प्रियतम के प्रति विरह निवेदन करती रही। प्रकृति के प्रति समर्पित होने को पुरस्कार पंत जी को ही मिली। प्रकृति को निश्छल आत्मीयता से अभिभूत होना मातृ स्नेह से वंचित पंत जी के लिए स्वाभाविक भी था।

निरन्तर परिवर्तन शील पंत काव्य मे एकमात्र अपरिवर्तनीय तत्व प्रकृति है। पंत जी की आत्मा उनके प्रकृति काव्य मे है। प्रकृति से इतर काव्यों में उन्होंने युगीन काव्य प्रवृत्तियों का पारशीलन भी किया है। पंत को 'मार्क्सवादी', 'प्रगतिवादी' प्रयोगवादी आदि ठहराकर, उनकी कविता मे अपनी पूर्वनिर्धारित धारणाओं को ढूंढने वाले आलोचक इसीलिए धोखों मे पड़ते है। पंत जी की कविता को अपनी इच्छा के अनुरूप न पाकर वे उन पर मीन-मेख भी करते है। वास्तव में पंत जी के कृतित्व का सही मूल्यांकन उनके प्रकृति काव्यों के आधार पर ही होना चाहिए। पंत जी का सच्चा कवित्व उनके प्रकृति काव्य मे ही सुरक्षित है और वहीं कविता के रूप और भाव की सक्षमता तथा समृद्धि भी निहित है। उनकी आत्मा के वास्तविक दर्शन प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं मे ही होते है। पंत का सर्वोत्तम काव्य प्रकृति काव्य है।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि निरन्तर काव्य साधना मे रत रहने वाले पंत जी ने जो कुछ लिखा वह हिन्दी के लिए गौरव की वस्तु है। आज भी उनका काव्य स्त्रोत अजस्र रूप मे प्रवहमान है। पंत की साधना मे कहीं भी शैथिल्य नहीं, पाठकों को आह्लाद से अभिभूत करनेवाली उनकी काव्य रचनाओं का महत्व अक्षुण्ण है। उनकी कल्पना की अतुलनीय विभूति, सांस्कृतिक दृष्टि, गहन पाण्डित्य, अपरिमित भाषाधिकार, सूक्ष्म सौन्दर्य बोध और विशाल मनोदृष्टि आदि बातें उनके कवि व्यक्तित्व को समृद्ध बनाती है। ऐसे सिद्ध कवि को पाकर हिन्दी साहित्य वास्तव मे धन्य है।

सन्दर्भ - ग्रंथों की सूची

कविता - संग्रह

1-	अतिमा	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1960
2-	आधुनिक कवि भाग - दो	सुमित्रानन्दन पंत	गोपाल चन्द्र सिंह सचिव, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1964
3-	आस्था	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973
4-	उत्तरा	सुमित्रानन्दन पंत	भारतीय भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1954
5-	कला और बूढ़ा चाँद	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1960
6-	किरण वीणा	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1967
7-	खादी के फूल	पंत- बच्चन	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1949
8-	गंधवीथी	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973
9-	गुंजन	सुमित्रानन्दन पंत	भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद । दशम संस्करण । 1953
10-	माध्या	सुमित्रानन्दन पंत	भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद । चतुर्थ संस्करण 1950
11-	चक्रवाल	रामधारी सिंह दिनकर	उदयाचल, आर्यकुमार रोड, पटना, प्रथम संस्करण 1956
12-	चिदंबरा	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1966
13-	ज्योत्सना	सुमित्रानन्दन पंत	गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ,
14-	पल्लव	सुमित्रानन्दन पंत	भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, पांचवां संस्करण 1947
15-	पल्लविनी	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,
16-	पुरुषोत्तम राम	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1967

17-	पौ फटने के पहले	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1967
18-	मुक्ति यज्ञ	सुमित्रानन्दन पंत	श्री ओंकार प्रकाश, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1965
19-	युगांत	सुमित्रानन्दन पंत	भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, द्वितीय संस्करण 1936
20-	युगपथ	सुमित्रानन्दन पंत	भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग। 1949
21-	युगवाणी	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1959
22-	रजतशिखर	सुमित्रानन्दन पंत	भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग।
23-	उपाम्बरा	प्र0 सं0 सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1960
24-	लोकायतन	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण। 1964
25-	वाणी	सुमित्रानन्दन पंत	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, द्वितीय संस्करण। 1963
26-	वीणा - ग्रंथि	सुमित्रानन्दन पंत	भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1945
27-	शंखध्वनि	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1971
28-	शशि की तरी	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1971
29-	शिल्पी	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1951
30-	समाधिता	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973
31-	सोवर्ण	सुमित्रानन्दन पंत	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1963
32-	स्वर्णकिरण	सुमित्रानन्दन पंत	भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण। 1956

33.	स्वर्णधूलि	सुमित्रानन्दन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली । द्वितीय संस्करण ।	1956
34.	स्वर्णिम रथ चक्र	सुमित्रानन्दन पंत	लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद ।	1968
35.	हरी बांसुरी सुनहरी टेर	सुमित्रानन्दन पंत	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली ।	1963

आलोचनात्मक ग्रंथ

हिन्दी

1-	अर्धनारीश्वर	रामधारी सिंह दिनकर	उदयाचल, पटना
2-	आधुनिक काव्यधारा	डा० केसरीनारायण शुक्ल	नन्दकिशोर एण्ड सन्स, चौक वाराणसी, 1961
3-	आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्त्रोत	वही	वही, वही
4-	आधुनिक काव्य रचना और विचार	आ० नन्ददुलारे वाजपेयी	साधी प्रकाशन, सागर, 1962
5-	आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना	कुमारी शकुन्तला शर्मा	सरस्वती मन्दिर, बनारस, प्र० सं०, 1952
6-	आधुनिक हिन्दी प्रगीत काव्य	डा० गणेश खोर	अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं० 1965
7-	आधुनिक भारत वर्ष का इतिहास (भाग-2)	सरकार तथा दत्त	नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
8-	आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा	डा० विश्वंभरनाथ उपाध्याय	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली प्र० सं० 1962
9-	आधुनिक हिन्दी कविता का मूल्यांकन	इन्द्रनाथ मदान	हिन्दीभवन, इलाहाबाद, 1962
10-	आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका	डा० रामभूनाथ पाण्डेय	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, प्र० सं० 1964
11-	आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार विधान	डा० जगदीश नारायण त्रिपाठी	अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं० 1962
12-	आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य	डा० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल	नेशनल पब्लिशिंग हाउस प्र० सं० 1958
13-	आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त	डा० सुरेश चन्द्र गुप्त	हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली ।

14-	आधुनिक हिन्दी काव्य	डा० कुमार विमल	अर्चना प्रकाशन, बीहार, प्रथम संस्करण 1964
15-	आधुनिक हिन्दी काव्य	डा० राजेन्द्र प्रसाद मिश्र	गंगा, कानपुर, 1966
16-	आधुनिक हिन्दी काव्य भाषा	डा० रामकुमार सिंह	गंगा, कानपुर, 1965
17-	आधुनिक हिन्दी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ	डा० नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 1962
18-	आधुनिक हिन्दी काव्य में प्रतीकवाद	डा० चन्द्रकला	मंगल प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण 1966
19-	आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प	डा० मौल अवस्थी	हिन्दी परिषद प्रकाशन प्रयाग, प्र० सं० 1962
20-	आधुनिक हिन्दी साहित्य	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	हिन्दी परिषद, द्वि० सं० 1954
21-	कवि निराला	नन्ददुलारे वाजपेयी	वाणी वितान प्रकाशन वाराणसी, प० सं० 1965
22-	काव्य बिंब और छायावाद	डा० सुरेन्द्र माथुर	ज्ञान भारती प्रकाशन - सी-8, माडल टाउन, दिल्ली, प्र० सं० 1969
23-	काव्य बिंब	डा० नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-7, प्र० सं० 1967
24-	काव्य में सौम्य सन्त	बच्चन	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, दिल्लीय संस्करण, 1962
25-	काव्य कला तथा अन्य निबन्ध	जयशंकर प्रसाद	भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद ।
26-	चिन्तामणि (पहला भाग)	आ० रामचन्द्र शुक्ल	इंडियन प्रेस, प्रयाग, 1963
27-	छायावाद	नामवर सिंह	सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं० 1955
28-	छायावाद	रवीन्द्र भ्रमर	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र० संस्करण, 1971

29- छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन	डा0 कुमार विमल	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
30- छायावाद काव्य तथा दर्शन	डा0 हरनारायण सिंह	ग्रंथम, रामबाग, प्र0 संस्करण, 1964 (कानपुर)
31- छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि	सुषमा पाल	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1971
32- छायावाद की प्रासंगिकता	रमेशचन्द्र शाह	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1973
33- छायावाद के गौरव चिन्ह	प्रो0 क्षेम	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1962
34- छायावाद पुनर्मूल्यांकन	सुमित्रानन्दन पंत	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र0 सं0 1965
35- छायावाद युग	शम्भूनाथ सिंह	सरस्वती मन्दिर, वाराणसी 1952
36- छायावाद : विश्लेषण और मूल्यांकन	श्री दीनानाथ शरण	नवयुग ग्रंथागार, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1958
37- छायावाद: स्वरूप और व्याख्या	राजेश्वर दयाल सक्सेना	अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर
38- ज्योतिविहग	शान्ति प्रिय द्विवेदी	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण,
39- त्रयी	जानकी वल्लभ शास्त्री	लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970
40- द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य	डा0 रामसकल राय शर्मा	अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर प्रथम संस्करण, 1966
41- निराला-काव्य और व्यक्तित्व	धनन्जय वर्मा	विद्या प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली, द्वितीय सं0 1965
42- पंत का काव्य दर्शन	प्रतापसिंह चौहान	मयूख प्रकाशन, कानपुर, 1963
43- पंत का काव्य	प्रेमलता बाफना	साहित्य सदन, देहरादून, 196
44- पंत जी का नूतन काव्य और दर्शन	विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	साहित्य रत्न भण्डार, आगरा प्रथम संस्करण।

45- पंत - प्रसाद और मैथिलीशरण	रामधारी सिंह दिनकर	उदयाचल प्रकाश, पटना, द्वितीय संस्करण, 1965
46- पांच कहानियाँ	पंत	भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1956
47- प्रकृति और काव्य (संस्कृत - हिन्दी साहित्य)	डा० रघुवंश	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1963
48- महाकवि पंत	सत्यकाम वर्मा	भारतीय प्रकाश, अशोक नगर, नई दिल्ली - 15
49- युगकवि पंत की काव्य साधना	विनयकुमार शर्मा	हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली, प्र० सं० 1962
50- शिल्प और दर्शन	पंत	रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद, प्र० संस्करण 1961
51- संस्कृति के चार अध्याय	रामधारी सिंह	उदयाचल प्रकाशन, पटना, तृतीय संस्करण 1958
52- संक्षिप्त काँग्रेस का इतिहास	पट्टाभि सीता रामय्या	सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्र० सं० 1958
53- साकल्य	शांतिप्रिय द्विवेदी	हिन्दी प्रचार पुस्तकालय, वाराणसी 1955
54- साठवर्ष - रेखांकन	पंत	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1960
55- सुमित्रानंदन पंत	डा० नगेन्द्र	साहित्य रत्न भण्डार, आगरा, अष्टम सं० 1958
56- सुमित्रानन्दन पंत	विश्वंभर मानव	किताब महल, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, 1962
57- सुमित्रानन्दन पंत	डा० रामरतन भटनागर	यूनिवर्सिटी प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1964
58- सुमित्रानन्दन पंत काव्य कला और जीवन दर्शन	शचीरानी गुर्टू	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, द्वितीय सं० 1957

59-	सुमित्रानन्दन पंत जीवन और साहित्य	शान्ति जोशी	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1969
60-	सुमित्रानन्दन पंत, आधुनिक हिन्दी कविता में परंपरा और नवीनता	डॉ० चतिशील	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण, 1969
61-	हमारे साहित्य निर्माता	शांति प्रिय द्विवेदी	हिन्दी प्रकाशन पुस्तकालय, वाराणसी, प्र० सं० 1962
62-	हार	सुमित्रानन्दन पंत	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1960
63-	हिन्दी कविता में युगान्तर	डा० सुधीन्द्र	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली 1957
64-	हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव	डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा	पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, 1953
65-	हिन्दी साहित्य: एक आधुनिक परिदृश्य	अज्ञेय	राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1967
66-	हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल	श्री जयकिशन प्रसाद	अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर
67-	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, च० संस्करण।
68-	हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (दशम भाग)	प्रधान संपादक डा० नगेन्द्र	नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1972
69-	हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी	नन्ददुलारे वाजपेयी	लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद
70-	हिन्दी साहित्य दर्पण	व्याख्याकार - डा० सत्यव्रत सिंह	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1962

अंग्रेजी

1.	A History of English Literature	Edward Albert	George G. Harrap & Co. (P) Ltd. London. Fourth Edition, 1971
2.	Discovery of India	Jawahar Lal Nehru	Asia Publishing House, Madras.
3.	Romantic Conflict	Allan Rodway	Chalto and Windus, London, 1963
4.	The Poetic Image	C. Day Lewis	Jonathan Cape, Thirty Bed Ford Square, London, 1964